"आगमचक्खू साहू"

पात्र भक्ति एवं आर्यिका चर्या

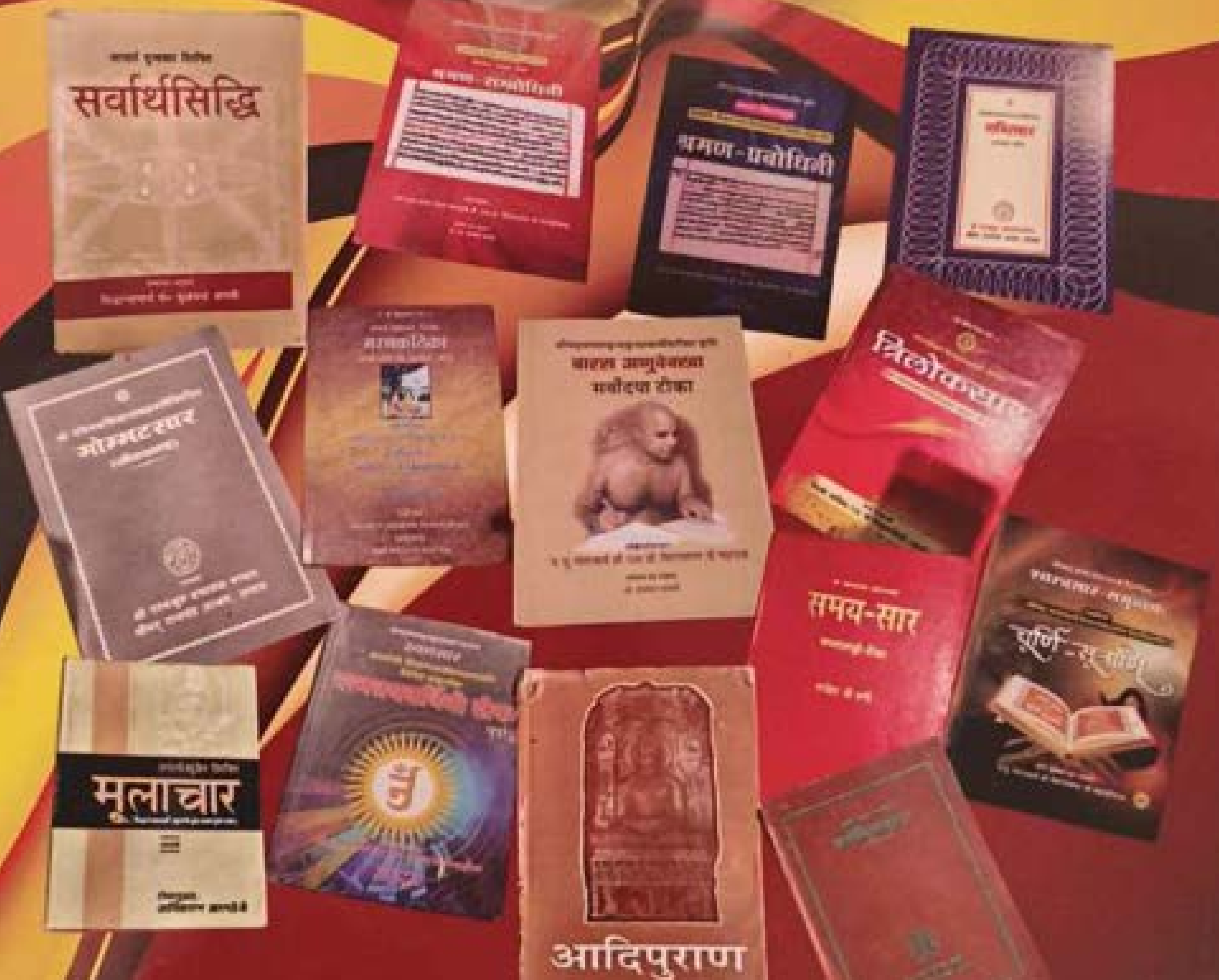

प.पू. गणाचार्य डॉ. विरागसागरजी महामुनिराज

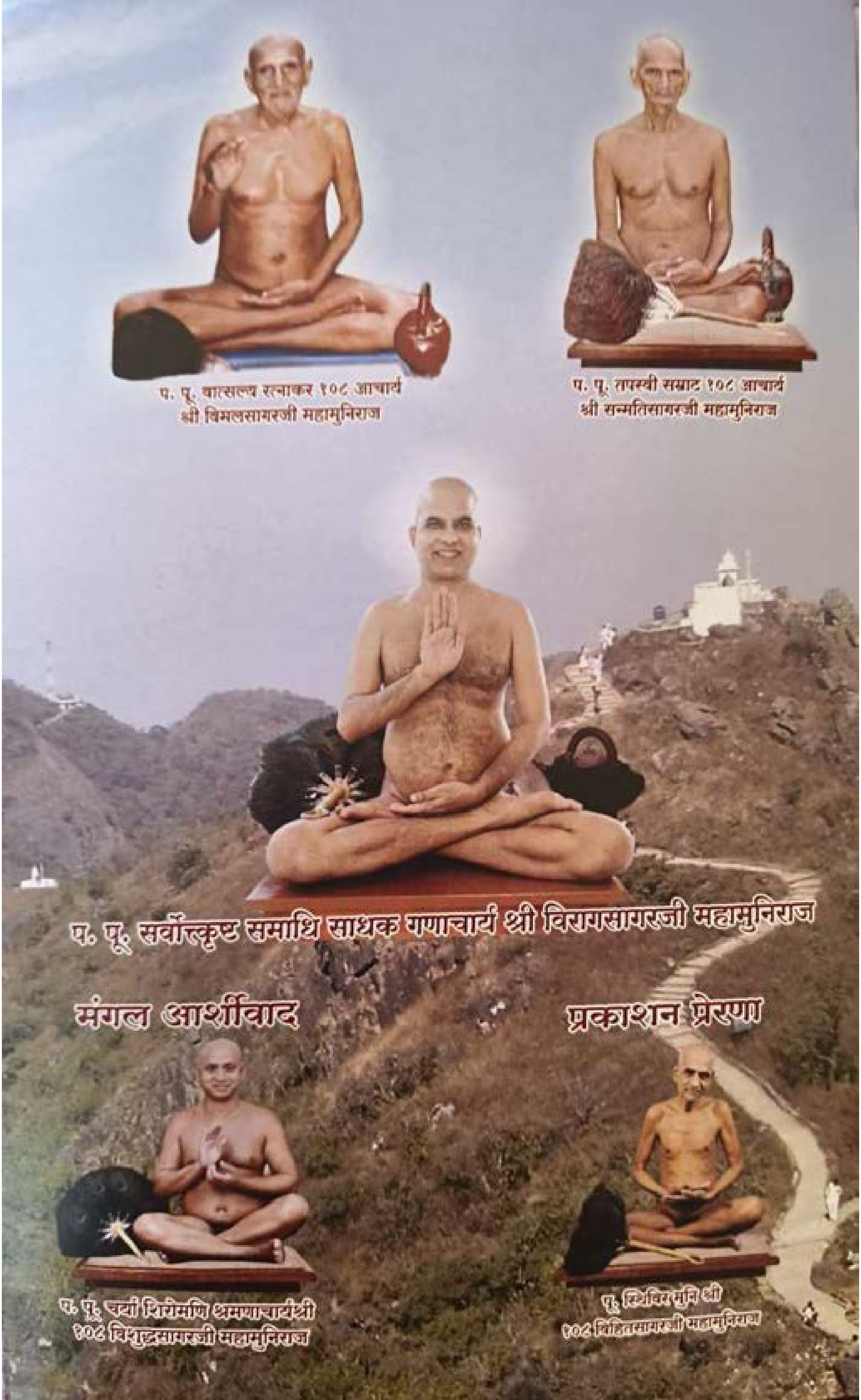
प. पू. वात्सल्य रत्नाकर १०८ आचार्य
श्री विमलसागरजी महामुनिराज
प. पू. तपस्वी सम्राट १०८ आचार्य
श्री सन्मतिसागरजी महामुनिराज
प. पू. सर्वोत्कृष्ट समाधि साधक गणाचार्य श्री विरागसागरजी महामुनिराज
मंगल आर्शीवाद
प्रकाशन प्रेरणा
प. पू. चर्या शिरोमणि श्रमणाचार्य श्री
१०८ विशुद्धसागरजी महामुनिराज
पू. स्थविर मुनि श्री
१०८ विहितसागरजी महामुनिराज

"आगमचक्खू साहू"

पात्र भक्ति एवं आर्यिका - चर्या

-: कृतिकार :-

विश्वहितैषी, राष्ट्रसंत, युगप्रमुख श्रमणाचार्य, सूरीगच्छाचार्य

गणाचार्य श्री 108 डॉ. विरागसागरजी महामुनिराज

-: प्रकाशक :-

श्री सम्यग्ज्ञान दिगंबर जैन विराग विद्यापीठ

जैन कीर्तिस्तंभ, बस स्टैंड रोड, भिंड (म.प्र.)

प्रसंग : परम पूज्य राष्ट्रसंत, गणाचार्य श्री 108 विराग सागर जी महामुनिराज के 34वें आचार्य पदारोहण के अवसर पर

कृति : आगमचक्खु साहू

कृतिकार : परम पूज्य युगप्रमुख श्रमणाचार्य, राष्ट्रसंत, गणाचार्य
श्री 108 डॉ. विरागसागरजी महामुनिराज

संस्करण : प्रथम - 3000 प्रतियाँ, सन् 1995, ललितपुर (उ.प्र.)
द्वितीय - 1000 प्रतियाँ (प्रेरणा : प.पू. आ. श्री विभव सागर जी)
तृतीय - 1000 प्रतियाँ
(प्रेरणा : पू.आ. श्री विनम्रसागरजी विरागाभिनंदन अभिनंदन ग्रंथान्तर्गत)
चतुर्थ - 1000 प्रतियाँ, सन् 2025, नलखेडा (म.प्र.)

प्रतियाँ : 1000

पुण्यार्जक : श्री अशोककुमार - श्रीमती आशा जैन - आकांशा जैन, इन्दौर (म.प्र.)
श्री अरविन्दकुमार - श्रीमती पुष्पा जैन - अनिल, सुमन, सुनीता, भारती - जि. विदिशा
श्री नेमीचंद्र जैन - श्रीमती मालती जैन, सुरखी (सागर)

मूल्य : 100.00

प्राप्ति स्थान : 1. श्री सम्यग्ज्ञान दिगम्बर जैन विराग विद्यापीठ,
कीर्ति स्तंभ, भिण्ड (म.प्र.)
संपर्क सूत्र- संजीव जैन शिक्षक - मो. 9826287046
2. श्री विरागोदय तीर्थ क्षेत्र
पथरिया, जिला दमोह (म.प्र.)
संपर्क सूत्र- कपिल जैन - मो. 9893753223

मुद्रक : श्री पारस प्रिन्टर्स
लॉ गार्डन, अहमदाबाद - मो. 9924053623, 9879524858

समर्पण

जिनवाणी के चारों अनुयोगों पर जिनकी अटूट श्रद्धा है
जो सदैव उन्हें प्रामाणिक मानते हैं।

आगमोऽतर्क गोचरः

जिनकी धारणा में पूर्णतः समाया है। जो प्राचीन आचार्यों द्वारा लिखित
जिनवाणी के शब्द-शब्द को अहोभाव से स्वीकारते हैं।
जो जीवन्त आगम चक्खु साहू हैं । जो अपनी आचार्य परम्परा को आदर्श
मानते हैं आगम विरूद्ध कथन व आचरण में भीरू हैं ऐसे परमवंदनीय
पूज्यनीय दिगम्बर जैनाचार्य श्री 108 **विद्यासागर जी महाराज** के
चरणों में भक्तित्रय पूर्वक नमोस्तु करता हुआ उनके कर कमलों में
आगम चक्खु साहू के दो लेख **'पात्र भक्ति और आर्यिका चर्या'**
कृति यहाँ से ही सादर समर्पित करता हूँ
यदि इसमें कुछ भी आगम विरुद्धता आयी हो तो
वे मुझ जिज्ञासु को अवश्य ही बोध दें।
ॐ नमः

5/2/2/2547

(प. पू. गणाचार्य विरागसागर जी महामुनिराज)
श्री आदिनाथ दि. जैन चैत्यालय मंदिर भिण्ड (म.प्र.)

प्रस्तावना

अथाह जैनागम की गहराईओं को पाना अथवा सम्पूर्ण असीमित शास्त्रों को पढ़ना व समझना बहुत-बहुत कठिन है। पर ये सत्य है कि आचार्यों की महती अनुकम्पा हम सभी पर रही है कि जिन्होंने हमारे लिये आगम, अध्यात्म एवं सिद्धान्तों के माध्यम से लौकिक एवं पारमार्थिक हर छोटी बड़ी बातों को समझाने का प्रयास किया है तथा लेखन करके कालान्तर तक उसे जीवंत रखा है। उन्हें पता था कि आने वाला कल केवल सत्य प्रधान कम, किन्तु तर्क प्रधान अधिक होगा।

व्यक्ति सत्य की सिद्धि कम, किन्तु अपने पक्ष को सत्य बनाने का अधिक प्रयास करेगा। तरह-तरह के तर्कों से लोगों को गुमराह करेगें। जिसके प्रभाव में आकर व्यक्ति आगम तथा प्राचीन आचार्यों व उनकी परम्परा पर भी संदेह करेगा उसे झुठलाने का तथा उसे अमान्य कर अपनी मान्यता को ही सत्य एवं प्रमाणित करेगा । **'राइट इज माइट'** (Right is Might) नहीं, **'माइट इज राइट'** (Might is Right) का पक्षकार होगा और अपनी प्रसिद्धि पाने के लिये, इतिहास बनाने के लिये, क्षणिक सम्मान या प्रतिष्ठा पाने के लिये वह सब कुछ करने के लिए तैयार होगा, जो आगम में तीर्थंकरों की वाणी को आचार्यों ने लिखा है उसे भी संघ, पंथ या परम्परा के नाम पर झुठलायेगा। केवल 'हम' और 'हमारे' ही सत्य हैं धर्म केवल इसी सीमा में निहित है बाकी सब असत्य और अधर्म है ऐसा कह **णमो लोए सव्व साहूणं** को इसी सीमा में रखेगें, तीन कम नौ करोड़ मुनियों की गुणस्थान परक संख्या को तो नहीं पूर्ण कर पायेगें पर जो हमारी मान्यता से जुड़ेगा बस उसी का नाम सत्य की लिस्ट में लिखा जायेगा शेष सभी कुलिंगी मिथ्यादृष्टि के रूप में गिने जायेंगे।

अरे ! हे महामानव! कुछ तो सोचो, क्या आज तक जितने भी प्राचीन आचार्य हुए वे सब तुम्हारे विचारों के अनुसार ही थे ? क्या जो मान्यताएँ आज तुमने प्रगट की हैं वैसी और किसी ने भी प्रगट की थी ? क्या वे सब असत्य थे? अज्ञानी थे? कुछ सोचो और सही मार्गदर्शक बनो । निज विचारों से आगम अधिक महत्त्वपूर्ण है। अपने विचार प्रमाणिक नहीं, किन्तु आगम प्रमाणिक है।

प्रत्येक व्यक्ति के विचार अलग-अलग होते हैं कहा भी है कि 'मैनी मेन मैनी माइंड्स (Many men many minds)' 'मुंडे मुंडे मतिर्भिन्ना कुण्डे कुण्डे जलं पयः' अर्थात् जितने प्रकार के मनुष्य होते है उतने प्रकार के उनके विचार होते हैं। इसलिये वैचारिक मत बहुत हो सकते हैं। वे ही मत लोगों का समर्थन पाकर सम्प्रदाय/पंथ या

परम्परा बन जाते हैं। यही सोचकर परम पूज्य आचार्य श्री धरसेन महाराज के मन में जिनवाणी लेखन के भाव प्रस्तुत हुए कि विभिन्न विचारों, भेदों के समाधान का केवल एक ही उपाय है वह है जिनवाणी/ जिनागम।

स्वतंत्र विचार छद्मस्थ विचार है किन्तु जिनवाणी केवल ज्ञानियों के वचन हैं। छद्मस्थ ज्ञान क्षायोपशमिक हैं जो प्रत्येक प्राणियों के अलग-अलग होता है। इसलिये उनके विचार भी अलग-अलग होते हैं किन्तु केवलज्ञानी सत्य को सत्य जानते हैं इसलिये उनके विचार एक होते हैं सभी छद्मस्थ औदयिक भाव की अपेक्षा केवलज्ञान न होने से अज्ञानी हैं इसलिये एक अज्ञानी के अनंत मत (विचार) हैं किन्तु अनंत केवलज्ञानियों का एक ही मत होता है क्योंकि सत्य एक ही होता है अनेक नहीं। इसलिये यदि हम अपने-अपने विचारों को आगमानुसार बनायेंगे तो हम सब में एकता आयेगी, सौहार्द्रता आयेगी, वात्सल्य जागेगा और हम सच्चे मायने में जिनवाणी या जिनधर्म की प्रभावना कर सकेंगे। स्वतंत्र विचारों में भेद खड़े होंगे, मतभेद होंगे और जिन-जिन मतों को साम-दाम- दण्ड- भेद की नीति से लोगों का समर्थन मिलेगा वो मत सम्प्रदाय या परम्परा बन जायेगी जिनसे परस्पर कलह होगी । हम सब खण्ड-खण्ड में बँट जायेंगे। इसलिये कभी भी विचारों का समर्थन नहीं, किन्तु आगम का समर्थन होना चाहिये, जिनवाणी का समर्थन होना चाहिये। जिनवाणी से जो वाक्य मिलें उन्हें प्रमाणिक समझें जो न मिलें उसे प्रमाणिक न करें।

यद्यपि मै अल्पज्ञानी हूँ फिर भी मैंने यथाशक्ति आगम को खोजने का एक लघु प्रयास किया है और पाया है कि पूर्वाचार्यों की आचार पद्धतियाँ या परम्परायें सच्ची थीं, हैं और रहेंगी क्योंकि वे आगमिक हैं प्रामाणिक हैं यदि कोई उसकी प्रामाणिकता के विषय में पूछेगा तो निश्चित ही हमारी 'आगमचक्खु साहू', पुस्तक में ग्रंथ विस्तार के भय से केवल दो आलेख लिखे 'पात्र भक्ति एवं आर्यिका चर्या, पुस्तक कारगिल होगी, प्रामाणिक होगी, क्योंकि इसमें उन सब बातों का केवल तर्क से नहीं, किन्तु आगम प्रमाणों से समर्थन किया गया है क्योंकि जिन बातों का केवल तर्क ही दिया जाता है, आगम प्रमाण नहीं, वे बातें प्रामाणिक नहीं होती हैं और जो बातें आगम से प्रामाणिक होती हैं उन पर कोई तर्क नहीं चलता क्योंकि **आगमोऽतर्क गोचरः**, आगम तर्क का विषय नहीं है अपितु, प्रमाण का विषय है इसलिये **'आगम वाक्य प्रमाणं'** आगम के वाक्य प्रामाणिक होते हैं श्रद्धानीय होते हैं तथा अनुकरणीय एवं आचरणीय होते हैं। मैंने केवल उसी पर जोर दिया है कि युक्ति के अनुसार आगम नहीं, किन्तु आगमानुसार युक्ति प्रामाणिक होती है। यद्यपि मैं छद्मस्थ हूँ जो भी अभी तक आगम प्रमाण मिले, मैंने उन्हें यथास्थान यथावत् दिये हैं और भी यदि मिलेंगे तो उन्हें भी दूँगा। यदि मेरे विचारों से प्रतिकूल अथवा अन्य परम्परा के भी समर्थक आगम वचन मिलेंगे तो मैं उन्हें भी ससम्मान प्रमाणिक मानूँगा और इस पुस्तक के अगले

संस्करण में जोड़ूँगा। यद्यपि 'आगम चक्खु साहू' पुस्तक का प्रथम प्रकाशन 1994 में हुआ था इसके बाद भी उसका प्रकाशन अन्य संस्करणों के रूप में एक साथ चारों लेखों के रूप में अलग होता रहा है। समय-समय पर मैंने प्रतिपादित विषय से भिन्न विचारधारा वालों से आगमिक प्रमाण को माँगा किन्तु कहीं से भी स्पष्ट रूप से एक भी प्रमाण नहीं मिला, जिसमें लिखा हो कि

१. आर्यिकाओं की नवधा भक्ति नहीं होना चाहिये।

२. पाद प्रक्षालन या पूजन नहीं होना चाहिये।

३. केवल सप्तधा-सात ही भक्ति होना चाहिये।

४. उनकी भक्ति नरक गति का कारण है।

५. मिथ्यात्व का कारण है।

६. अशुद्धि में आर्यिकाओं को पिच्छि नहीं रखना चाहिये।

७. उस अवस्था में वे बिना पिच्छि के सात कदम से भी अधिक चल सकती हैं या बिना पिच्छि के रह सकती हैं।

८. ऐलक, क्षुल्लक या क्षुल्लिकाओं के पाद प्रक्षालन नहीं होना चाहिये, उसमें मिथ्यात्व का दोष आता है।

९. अर्घ्य नहीं चढ़ाना चाहिये इसमें मिथ्यात्व का दोष आता है।

१०. अथवा जिन-जिन शास्त्रों में उनका विधान है वे शास्त्र मिथ्या हैं या उनके लेखक आचार्य मिथ्यादृष्टि हैं।

११. अथवा जो ऐसा करता है वह नरकगामी है।

यदि ऐसा कहीं आगम प्रमाण मिले, या कोई दे तो मैं उसे जरूर सहज स्वीकार करूँगा और यदि ऐसा कोई प्राचीन आगम प्रमाण नहीं है तो केवल तर्क, कुतर्कों से मैं अपने आदरणीय जिन वचनों को या फिर जैनाचार्यों के वचनों को देखकर उसे झुठलाने का दुःसाहस नहीं करूँगा। आगम में यदि दो प्रकार से भी प्रमाण मिलेंगे तो मैं उन्हें भी तब तक स्वीकार करूँगा जब तक किसी केवली के द्वारा वह निर्णीत नहीं हो जाये कि कौन सा सत्य है ? कौन सा असत्य है ? क्योंकि वे निर्ग्रन्थ आचार्य वीतरागी तथा पाप भीरू आचार्य थे। उन्होंने जहाँ जैसा गुरु मुख से सुना उसे यथावत स्वीकार किया तथा आचरण में लाये। लेकिन कभी भी किसी को बलात (जबरजस्ती) अपनी मान्यता से जोड़ने के लिए कोई लोभ या लालच नहीं दिया, ना ही किसी को भय दिखाकर उन्हें आर्यिका पूजा न करने का नियम दिलाया कि तुम हमारे अनुसार चलोगे तभी तुम्हारे चौके में आयेंगे, आहार करेंगे अन्यथा नहीं, नियम लो कि हम वस्त्रधारी आर्यिकाओं की नवधा भक्ति नहीं

करेंगे, सप्तधा भक्ति करेंगे चाहे वे पड़गें या न पड़गें अथवा उपवास करें आदि। कोई उन्हें न पड़गाये न आहार दे, हम उन संघों या साधुओं से भी नहीं मिलेंगे, न दर्शन-वंदन करेंगे आदि। प्राचीन सभी आचार्य या आचार्य संघ पाप भीरू थे। किसी ने ऐसे दुःसाहसी कार्य नहीं किये जिनमें वात्सल्यधारियों में प.पू. आचार्य शान्तिसागर जी दक्षिण तथा प.पू. आचार्य शान्तिसागर जी छाणी का सन् 1952 में ब्यावर में एक साथ दो परम्परा के आचार्यों का चातुर्मास सानंद सम्पन्न हुआ। कभी किसी ने परस्पर किसी भी परम्परा पर अंगुली नहीं उठाई, यह एक इतिहास है हमारे प्राचीन आचार्यों का। परम पूज्य आचार्य गुरुदेव श्री विमल सागर जी और आचार्य सुमति सागर जी महाराज के एक साथ चातुर्मास हुए। दोनों की अलग-अलग परम्परा थी, फिर भी एक ही मंच पर एक साथ बैठते थे, परस्पर नमोस्तु-प्रति नमोस्तु करते थे। अतः विचार भेद, मत भेद, भले ही हों पर मन भेद न हो, तो मुझे विश्वास है कि भविष्य में हम अपनी समाज को एक ही धागे में पिरोकर अखण्ड बनाये रखेंगे। अन्यथा आज का एक ब्रह्मचारी नई पद्धति सोचता है और विधान या प्रवचनों में समाज पर लागू कर और भी नये-नये मतभेद पैदा कर देता है और हम उन मतों में उलझकर धर्म को भूल जाते हैं केवल मतों को ही पकड़े रहते और उसे ही धर्म मान लेते हैं। हमें इस भूल को सुधारना होगा तभी हम धर्म को सच्चे मायने में ऊँचा उठा सकेंगे, धर्म प्रभावना कर सकेंगे अन्यथा धर्म की नहीं, किन्तु धर्म के नाम पर अपनी ही प्रभावना को व्यक्ति धर्म प्रभावना मानता रहेगा और संसार में परिभ्रमण करता रहेगा।

इस पुस्तक में मैंने जो भी यत्किंचित प्रयत्न और प्रयास किया है वह सब जिनागम का तथा जैनाचार्यों का है मेरा कुछ नहीं है फिर भी त्रुटियाँ रह गईं हों तो 'सोधयन्तु तणु सुत्तधरेण, सुधी सुधार पढ़े सदा तथा अन्त में मुझे भी आगम प्रमाणों से अवगत कराते रहें।

अन्त में उन तमाम पूज्य आचार्यों व गणिनी आर्यिकाओं के प्रति भी मैं कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ जिन्होंने मुझे परामर्श- प्रोत्साहन तथा अभिमत भेजे।

नमः

– गणाचार्य विरागसागर

12/1/2/2546

परम पूज्य गणाचार्य 108 श्री विरागसागरजी महामुनिराज की महत्त्वपूर्ण जीवन झांकियाँ

पूर्व नाम : अरविन्द जैन (टिन्नू)

पिता का नाम : श्रीमान् कपूरचंद जी जैन
(समाधिस्थ मुनि विश्ववंद्य सागर जी)

माता का नाम : श्रीमती श्यामा देवी जैन
(समाधिस्थ आर्यिका विशांत श्री माता जी)

जन्म : 2 मई, 1963, गुरुवार, पथरिया (म.प्र.), वैशाख सुदी 9 वि.सं. 2020

भाई-बहिन : 3 भाई - श्री विजय कुमार, श्री सुरेन्द्र कुमार, बा ब्र. श्री नरेन्द्र भैया
2 बहनें - श्रीमती मीना जैन, श्रीमती विमला जैन

लौकिक शिक्षा : शासकीय प्राथमिक शाला, पथरिया, कक्षा-पाँचवी
इण्टर (उत्तर मध्यमा), श्री शांति निकेतन दिगम्बर जैन विद्यालय, कटनी

क्षुल्लक दीक्षा : 20.02.1980 बुधवार (बुढ़ार, शहडोल म.प्र.)
(फाल्गुन शुक्ला - 5), विक्रम संवत् 2036

क्षुल्लक दीक्षा गुरु : परम पूज्य तपस्वी सम्राट आचार्य श्री 108 सन्मति सागर जी महाराज

क्षुल्लक दीक्षा नाम : पूज्य क्षुल्लक श्री 105 पूर्ण सागर जी

मुनि दीक्षा : 09.12.1983 शुक्रवार औरंगाबाद
(मगसिर सुदी 5 विक्रम संवत् 2040)

मुनि दीक्षा गुरु : परम पूज्य वात्सल्य रत्नाकर आचार्य श्री विमलसागर जी महाराज

मुनि दीक्षा नाम : परम पूज्य मुनि श्री 108 विराग सागर जी महाराज

आचार्य पद : 8.11.92, रविवार, द्रोणगिरी (म.प्र.) कार्तिक शुक्ला 13. वि.सं. 2049

पग विहार : 14 प्रान्तों में लगभग 1 लाख किलोमीटर

समाधि : 4-7-2024, (आषाढ कृ.13/14) गुरुवार
(देवमूर्ति, जालना, महाराष्ट्र)

साधक	श्रमणाचार्य	उपाध्याय	स्थिविर	गणधर	प्रवर्तक	श्रमण	गणिनी	श्रमणी	ऐलक	क्षुल्लक	क्षुल्लिका	श्रावक	श्राविका	योग
दीक्षाएं	9	7	1	1	1	85	5	81	4	25	29	अनेकों	अनेकों	248
प्रशिष्य	1					133	-	83	5	36	37	अनेकों	अनेकों	278
समाधियां						56	2	38	-	6	7	16	23	148

साधना : 4 करोड़ 15 लाख से अधिक जाप, लगभग 37 व्रत पूर्ण (उपवास या नीरस द्वारा) चारित्र शुद्धि व्रत (1234 उपवास) साधनारत, अष्टमी एवं चतुदर्शी को नीरस एवं मौन, दही, तेल, सभी हरी पत्ती व फली (मटर के अलावा) एवं लगभग 26 अन्य सामग्रियों का आजीवन त्याग। वाहन, हीटर, कूलर, पंखा, ए.सी. तथा नेलकटर आदि का त्याग। अनियत विहार एवं आतापन योग की साधना, 36 घण्टे की अविचल साधना।

धर्म प्रभावना : वृहत् यति सम्मेलन एवं युग प्रतिक्रमण (जयपुर एवं झाँसी) अनेक तीर्थों का जीर्णोद्धार, अनेक सिद्धान्त वाचनाएँ, लगभग 102 पंचकल्याणक एवं गजरथ, 250 विधान, स्वयं डॉक्ट्रेट उपाधि से विभूषित एवं अनेक लौकिक डिग्री प्राप्त डॉक्टर, सी.ए., इंजीनियर, वकील, एम.बी.ए., एम.काम. तथा ग्रेजुएट लोगों को दीक्षा, दिल्ली लाल किला पर 25 दीक्षाएँ तथा आपकी डाक टिकट का विमोचन।

साहित्यिक सृजन : लगभग 2000 वर्ष प्राचीन ग्रंथों पर सहस्राधिक पृष्ठीय सर्वोदया, रत्नत्रयवर्धिनी टीकाएँ, पाहुडद्वय पर श्रमण प्रबोधिनी एवं श्रमण संबोधिनी टीकाएँ लिखीं।

- शास्त्रसार समुच्चय पर लगभग 3000 संस्कृत चूर्णि सूत्रों का सृजन
- जलबिन्दु महाकाव्य, प्राकृत, संस्कृत भाषा में नवीन भक्तियों एवं 18 लिपियों का सृजन
- आगम चक्खु साहू, सम्यग्दर्शन, शंका समाधान जैसे शोधपूर्ण साहित्य सहित लगभग 150 कृतियों का सृजन

समाज एवं राष्ट्रहित : बी.एड. कॉलेज, बीना, सम्यग्ज्ञान विराग विद्यापीठ-भिण्ड, पन्ना, ब्रजपुर आदि में स्कूल। अहिंसा, व्यसन मुक्ति, शाकाहार, बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ एवं स्वच्छता अभियान द्वारा लगभग 40 लाख लोगों को प्रभावित । न्यायालयों, जेलों, स्कूलों, कॉलेजों एवं अनेक सार्वजनिक स्थानों पर प्रवचन । दर्शनार्थ पधारे अनेक राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, राज्यपाल, मुख्यमंत्री, सांसद, विधायक, अनेक मंत्री, हाईकोर्ट चीफ जस्टिस, इन्कमटैक्स एवं जी.एस.टी. के अधिकारी, क्रिकेटर, गायक, कवि एवं प्रबुद्ध वर्ग ।

उपाधियाँ : डॉक्ट्रेट मानद, बुंदेलखण्ड के प्रथमाचार्य, निस्पृही संत, उपसर्ग विजेता, युग प्रतिक्रमण प्रवर्तक, सूरीगच्छाचार्य, दीक्षा सिद्धहस्त आदि 68 से अधिक उपाधियों से अलंकृत।

सावधान

पढ़ने के पहले आप अपनी पात्रता देख लें कि
क्या आप आगम ग्रन्थों पर विश्वास रखते हैं ?
आचार्य वाक्य आपको प्रमाणित हैं?
कोई हटाग्रहता तो नहीं है ?
क्या आप वास्तविकता समझना चाहते हैं?
यदि हाँ, तो आपके लिए पुस्तक का प्रवेश द्वार खुला है।
अन्यथा.... नहीं।

पुंसा सत्यमपि प्रोक्तं प्रपद्यन्ते न बालिशाः ।
यतस्ततो न वक्तव्यं तन्मध्ये हितमिच्छता ।।

अर्थ- पुरुष यदि सत्य बात भी कहता है तो भी मूर्खजन उसे नहीं मानते हैं इसलिए विचारशील मनुष्य को अपने हित की इच्छा से उनके मध्य सत्य बात भी नहीं कहना चाहिए।

धर्म प. 4/30

परम पूज्य आचार्य श्री सन्मति सागर महामुनिराज का आशीर्वाद

'आप्त वचनादि निबन्धनमर्थज्ञानमागम:' अर्थात् सर्वज्ञ के वचनादि ज्ञान को आगम कहते हैं। इसे सिद्धांत शास्त्र, तत्वार्थ शासन आदि नामों से कहा जा सकता है। स्मृति के बल से धरसेन आचार्य के ज्ञान के बाद गुरु परंपरा से मौखिक ज्ञान आया। पुष्पदंत भूतबली ने इसे प्राप्त किया और लिपिबद्ध किया। क्योंकि स्मरण शक्ति क्षीण हो गई थी। तब से लिपिबद्ध करने का क्रम जारी रहा, अधिक महान आत्माएँ इससे लाभान्वित नहीं हो सकीं। उत्थान और पतन जारी रहा। आरातीय आचार्य ने अपनी प्रतिभा से महान लोगों का मार्गदर्शन किया । उसका गहना / मुद्रण का तरीका इसी दृष्टिकोण से अपनाया गया था, ताकि सभी भव्य प्राणी यथासंभव ज्ञान प्राप्त कर सकें।

अज्ञानांधकार से निकालकर सन्मार्ग, मुक्तिमार्ग पद की ओर लगाने वाले तीर्थंकर भगवान महावीर के अनुयायी, अहिंसा के पुजारी, प्रशान्तमूर्ति, परमाराध्य आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज द्वारा वंदित दक्षिण भारत के वयोवृद्ध दिगम्बर संत आदर्श तपस्वी, अप्रतिम उपसर्ग विजेता महामुनि, चारित्र चक्रवर्ती, मुनिकुंजर, समाधि सम्राट, धर्म प्रवर्तक, दिगम्बराचार्य 108 श्री आदिसागर जी महाराज अंकलीकर जी कहते थे कि मनुष्य भव का सार बाह्य और आभ्यंतर के भेद से दो प्रकार का है। उसके छह छह भेद हैं अंतरंग तप में स्वाध्याय उत्कृष्ट तप है। वाचन से तथा प्रश्नोत्तर से, वस्तु के स्वाभाविक ज्ञान से, चिन्तन से, बार-बार याद करने से और तत्वोपदेश से है। यह तप शुद्धात्म स्वरूप बनने का सरल उपाय है। जो साधु समता परिणामों से परमात्मा के गुणों को पृथक्- पृथक् विचारता है और फिर उन गुणों को समूह रूप कर परमात्मा को गुणगुणी में अभेद करके चिंतन करता है। तत्पश्चात् किसी अन्य की शरण से रहित होकर परमात्मा में लीन होता है वह मुक्ति को प्राप्त कर लेता है।

आगम चक्खु साहू की श्रृंखला में आचार्य विरागसागर महाराज हैं। जिन्होंने इस पुस्तक को जन्म दिया है जिसमें आगम के विरूद्ध जन्म ले रही मिथ्या मान्यताओं का समाधान है। मूलतः उदाहरण स्वरूप क्षुल्लक-क्षुल्लिकाओं का पाद प्रक्षालन एवं अर्घ समर्पण तथा ऐलक का, आर्यिका का, पाद प्रक्षालन एवं पूजा नवधा भक्ति है लोप सा हो रहा है। जो अभी तक देखने सुनने में नहीं आ रहा था उसको अर्वाचीन आचार्य परम्परा एवं वर्तमान आचार्य आर्यिका संघ परम्परा के अनुसार संकलित किया गया है । इतना ही नहीं मासिक धर्म ऋतुमान अवस्था में पिच्छि रहित नहीं रहना चाहिये,

आगम प्रमाण दिये जिससे भव्य आत्मायें निर्भ्रान्त होकर आर्ष परम्परा अनुसार प्रवृत्ति करके मोक्ष मार्ग प्रशस्त करेंगी। इस पुस्तक से ज्ञान होता है कि आचार्य विराग सागर जी महाराज आगम के ज्ञाता दृष्टा हैं। परम्परा का ज्ञान भी अछूता नहीं रहा है उनकी लेखनी अकाट्य है।

दिल्ली

वर्षायोग 1995

यद्युक्त्या घटते वाक्यं साधुभिर्यच्च बुध्यते ।
तद् ब्रूहि भद्रानिः शङ्को ग्रहिष्यामो विचारतः।

अर्थ- हे भद्र! जो वचन युक्ति से संगत तथा जिसे साधुजन योग्य मानते हैं उसे तुम निःशंक होकर बोलो । हम लोग उसे विचार पूर्वक ग्रहण करेंगे ।

ध. पु. 4/38

ध्येय

प.पू. गणाचार्य श्री विरागसागर जी महामुनिराज

विद के बिना
बोध न
होश न
तभी होता
कोसना
अपनी इच्छा
सत्य उपेक्षा
आगम और इतिहास
फिर प्राचीन परंपरायें
व्यर्थ न
अनर्थ न
यदि हो!!
तो फिर क्यों,
उसका आगम
रोक थाम
क्यों नहीं विराम?
पूर्वाचार्यों ने लिया / किया
शताब्दि पर शताब्दि
आचार्यों की लेखनी
शिल्पियों ने जिसे
जीवित / सुरक्षित रखी।
तो क्यों न हम
उस आर्ष पथ को
अपनायें
अपने को बढ़ायें
और जग को प्रकाश दें।
उसे भी उस ओर बढ़ायें
पथ यदि टूटे तो
उसे बनायें । न मिटायें कभी
सम्यक श्रद्धा के दीप जलायें।
जग को न भ्रमायें
समाज व संघों में
प्रेम और वात्सल्यता के
पावन पवित्र सूत्र
मात्र चर्चा में नहीं
चर्या में साकार करें
अवतारें, तारें और तरें
आपसी मतभेद मिटायें
न मिटा पायें तो
आगे न बढ़ायें
हाँ, यदि बढ़ायें ही तो
कम से कम
सत्य को न ठुकरायें
न झुठलायें
तभी आपका परिचय
स्वर्णिम अन्यथा कालिम
अक्षरों से,
इतिहास के पृष्ठों को
गढ़ने और अनागत को पढ़ने
मिलेगा ।
जिसकी वेदना, भविष्य के पूर्व
हमें होगी ।।
माँ जिनवाणी के सुत
यदि उसे ही कुचलेंगे तो
हम चुप न रहेंगे

एक कल्पना के साकार-दर्शन
कहेंगे और कहते रहेंगे
अथवा उन पर दया करेंगे
शक्तिशः बोध देंगे
ज्योत लेंगे और फिर
प्रेम से गले लगा लेंगे
यदि त्रुटि होगी तो सुधार लेंगे
हाँ, आगम को तोड़ेंगे नही
अपने अहं के लिए मोड़ेंगे नही
किन्तु स्वयं मुड़ेंगे।
ये मेरा लघु प्रयास आगम प्रकाश
भ्रान्तियों का हास ही नहीं
किन्तु विनाश कर
सत् प्रकाश करेगा
आसन्न प्रसन्नता से भरेगा
पर धार्मिक जनों को ।।
आवश्यकता ने
लेखको अविष्कृत किया
परिष्कृत किया
सुगमता/सरसता के लिए
एक नयापन
वार्ता मय सृजन
पर हैं स्वयं के प्रश्न
आगम के समाधान ।
मध्य में कोई अन्य न था
अन्यथा न कर पाता कभी अपनी बात
सुनो भ्रात !
मात्र हार्दिक
पा प्रमुदित है मेरा 'विराग' मन
अन्तर्मन.........................

ॐ नमः
वर्षायोग
क्षेत्रपालजी, ललितपुर
2/2/7/2521

पुरोवाक्

जब-जब भी आगम को मात्र आगम की दृष्टि से देखा गया है तब-तब ही श्रमण संस्कृति में शिथिलाचार के दमन और यथार्थता के चमन की भोर हुई है। आचार्य कुन्दकुन्द भगवान की आगम चक्खु साहू सूक्ति का आचरण में प्रादुर्भाव हुआ है। साधु की दृष्टि सदैव समीचीन ही होती है और होना चाहिए। उस समीचीनता का प्रेरणा स्रोत मात्र आगम है। आगम नेत्रों से देखने वाले श्रमण स्वल्पबुद्धि का माध्यम लेकर अनर्थक तर्क अथवा स्वेच्छित चिन्तन के द्वारा न तो आगम को परिवर्तित करने का दुस्साहस करते हैं और न ही आचरण में कभी अवतरित करने का अनुचित प्रयास करते हैं। आगम की आधारशिला लेकर सत्श्रमण अपने श्रमणत्व की रक्षा के लिए गंभीरता, निष्ठा, सत्यता, भद्रता, स्पष्टता, परिपक्वता एवं दृढ़ता जैसे अनेकों शस्त्रों से हमेशा सुसज्जित रहते हैं। आगमाचरण के लिए प्रतिबद्ध साधु नित्य प्रति जीवन श्रुत प्रमाणों के अन्वेषण में प्रयासरत रहते हैं और मात्र आगम के सशक्त / अकाट्य वचनों को सहजता / सरलता के साथ बिना किसी हिचक अथवा संकोच के जीवन में चरितार्थ करने में ही अपना कर्त्तव्य (कल्याण) समझते हैं।

संसारी छद्मस्थ प्राणी संसारावस्था में कुशलतापूर्ण व्यवहार के आश्रय से ही निश्चय की ओर कदम बढ़ाते हैं।

अकुशल प्रवृत्ति प्रमादः।।

अकुशल प्रवृत्ति का नाम प्रमाद है लेकिन उक्त सूक्ति सज्जनता की श्रेणी से पृथक् है क्योंकि सज्जन (साधु), न केवल अप्रमादी होते हैं बल्कि संसार में रहकर संसार से ऊपर उठने की कुशलता में भी पूर्ण दक्ष होते हैं। उनकी बाह्य प्रवृत्ति, उनका व्यवहारिक जीवन, उनकी दैनिक चर्या और तो क्या चलना, उठना, बैठना, बोलना, खाना, पीना, समाचार आदि इन सभी द्रव्य क्रियाओं में वे पारंगत होते हैं। लोक व्यवहार को कैसे निभाना चाहिए। इसका हुनर उनमें कूट-कूटकर भरा होता है। लेकिन सभी बातें निर्भर हैं अंतरंग परिणामों पर 'Face in the index of the hart' (चेहरा हृदय की विषय सूचि उद्घाटित करता है) हृदय की वात्सल्यता मुख पर उभर कर आती है और अंतरंग के भाव बाहरी चेष्टाओं में प्रकट हो जाते हैं।

मानव जीवन आदर्शता का चरमोत्कर्ष है। मनुष्य भव की प्राप्ति ही अपने आप में आदर्श जीवन का द्योतक है/पूरक है। साधु में आदर्शता के गुण स्वयमेव ही

परिलक्षित होते है। लोक व्यवहार की कुशलता मात्र आदर्श गुण पर ही निर्भर करती है। पिता का आदर्श पुत्र को, गुरु का आदर्श शिष्य को और भगवान का आदर्श भक्त को न केवल श्रद्धानीय है अपितु ग्राह्य भी है पतित को पावन, कंकर को शंकर और मलीन को कुलीन बनाने मात्र में आदर्श ही कार्यकारी है।

मुलाकात का भी अपना एक आदर्श होता है व्यक्ति की पहचान उसके प्रथम मिलन से ही प्रारंभ होती है और प्रथम मिलन का प्रभाव न केवल प्रथम अपितु अंतिम ही होता है।

'First impration is the last impration' प्रथम मिलन की औपचारिकता दो हृदयों में सामीप्य अथवा अलगाव का भी काम कर सकती है।

साधुओं का मिलन बाहरी औपचारिकताओं की पूर्ति मात्र नहीं, बल्कि आत्मीय सहधर्मी समभाव सापेक्षता की अभूतपूर्व घटना होती है। सम्यग्दृष्टि के वात्सल्य अंग की पहचान का अपूर्व अवसर साधुओं का आगमानुसार मिलन तो है ही साथ ही दर्शन-चारित्र से स्खलित होने वाले बाल/असक्त प्राणियों के स्थितिकरण अर्थात् सम्यग्दर्शन की सेवा का बहुदुर्लभ क्षण भी प्रदान करता है। जिसमें उपगूहनत्व स्वयं अन्तर्भूत हो जाता है।

प्रस्तुत कृति स्वाचरण में निखार लाकर पुनर्स्थापना करने के लिए एक श्रमण-सखी बने ऐसी भावना है। कृति में उल्लेखित प्रत्येक वर्ण, जिन वर्ण है। पूर्वाचार्यों द्वारा गुथित श्रुत-वचनों की नकल मात्र प्रस्तुत कृति में है लेकिन उस नकल में जिस खोजपूर्ण अकल ने परम पुरुषार्थ रूपी मंथन के द्वारा जो नवनीत निकाला है वह सम्पूर्ण वर्तमान श्रमण संस्कृति को एक जोड़ बनाने तथा यथार्थ पथानुगमन करने का दिव्य संदेश देने में पूर्ण सक्षम है। सवाल यह है कि महत्वाकांक्षा की मैराथन दौड़ में भाग लेने वाले लौकिक जन इस चुनौती को कहाँ तक स्वीकार करेंगे अथवा कर भी पायेंगे या नही...?

II

अपर पद में स्थित आत्मकल्याण की उत्कृष्ट भावना से ओत-प्रोत आर्यिका दीक्षाधारी एवं उपचरित महाव्रती माताजी, लोक व्यवहार को कैसे निभायें ? अपनी चर्या में पदानुकूल श्रद्धा-विनय-भक्ति का निरीक्षण/परीक्षण कैसे करें? पद पर स्थित रहते हुए अशुचि विषयक समस्या का निर्विकल्पतापूर्वक सावद्य रहित समाधान कैसे करें? उक्त अत्यंत गंभीर सन्दर्भ है जिनका हल वर्तमान आचार्यों के लिए कड़क किन्तु अत्योपयोगी अनिवार्यता है। स्वचिंतन से उक्त समस्या का

निदान संदिग्धास्पद हो सकता है अतः मात्र आगम का सहारा ही कार्यकारी है। आतिथ्य सत्कार की परंपरा अनादि-निधन है। भारतीय संस्कृति है। आर्य परंपरा की अमिट मिशाल है जो कि पूर्वाचार्यों की करुणा-पूरित दृष्टि स्वरूप वर्तमान में यथावत् उपलब्ध है। यदि पूर्वजों की उक्त परंपरा को बिना फेरबदल के अनुकरण न किया गया तो भविष्य अतिथियों से रिक्त होने की संभावना है। दाता द्रव्य के समय अहम् बुद्धि से रहित तभी हो सकता है जबकि कृति में प्रस्तुत की गई पदानुकूल समीचीन विधि का ज्यों का त्यों अभिपालन करें। आगमिक तथ्यों में कुतर्क तो होते ही नहीं हैं लेकिन तर्क की भी कहीं संभावना नहीं होती क्योंकि आगम समस्त तर्कों का समाधान करने के लिए ही लिखा गया है। जिनधर्म निरासक्ति की शिक्षा देता है लेकिन उनमें भावों की ही प्रधानता है। यथा द्रव्य स्त्री को तो नहीं लेकिन भाव स्त्री को मोक्ष होना भी बताया है। भावों के द्वारा मोक्ष तक पहुँचा जा सकता है। उसमें द्रव्य का हस्तक्षेप अपनी सीमा तक ही है। उत्कृष्ट विशुद्ध परिणामों से सहित होकर मुनिव्रतानुसार (28 मूल गुण) द्रव्य भाव रूप आचरण में अनुरक्त आर्यिका, ऐलक-क्षुल्लकजी से अधिक परिग्रह रखने के बाद भी उनके द्वारा पूज्य इसलिए हैं क्योंकि भाव होते हुए भी स्त्रीत्व की मर्यादा के उल्लंघन से बचने का आगम ने आदेश दिया है और निरासक्ति पूर्वक साटिका को ग्रहण करने की स्वीकृति प्रदान की है यह उनकी वर्तमान पर्याय की चरम सीमा है परंतु ऐलक क्षुल्लकजी निर्ग्रन्थत्व को भी प्राप्त कर सकते हैं। इसके लिए वे स्वतन्त्र है लेकिन निर्ग्रन्थ नहीं हो पा रहे हैं अतः कुछ कमी तो है विशुद्धता में, वरना निस्सीमता से यह दूरी क्यों? और आगम की आज्ञा का उल्लंघन क्यों?

पूज्य की यथानुकूल पूजन के आगमिक तथ्यों में भ्रांति का कारण क्या अपने चंचल मन की उपज है अथवा आचार्य परंपरा में विकृति उत्पन्न करके स्वयं की नये युग का श्रीगणेश करने की हवामहलीय कल्पना है... शंका उत्पन्न करती है। शुद्धिकरण में स्वयं की बुद्धि लगाकर जिनवाणी की उपेक्षा करना कहाँ तक उचित है? प्रसंग आने पर स्पष्टीकरण न करना अथवा उक्त समाधान के इच्छुकों की मौन रह कर अवहेलना करना स्वयं के पृथक् अस्तित्व-स्थापना की भावना का खण्डन नही करती। श्रावक या साधु में कुशलता का अभाव होने पर स्वक्रिया में अकुशलता लाना अथवा व्रत पालन के मनमाने उपायों को गढ़कर प्रमादपूर्ण जीवन की अनुमोदना करना स्वयं का प्रायश्चित गम्य दोष है। क्या हम परिवर्तन की राह अपनायेंगे अथवा अहम् बुद्धि से दूर हटकर आगम को साकार करने का प्रयास करेंगे... प्रश्न है?

III

पाँचवी संख्या हमेशा ही चार से बड़ी होती है अव्रती सम्यग्दृष्टि से देशव्रती के समान अधिक गुणों वाला सदैव पूज्य है लघुगुण वालों के द्वारा । पूजा के उपाय अनेक हो सकते हैं लेकिन मोक्षमार्ग में प्रवृत्त रत्नत्रय से पवित्र देशव्रतियों की परंपरागत रीति से शास्त्रोक्त अर्चन / पूजन हमारी आगम निष्ठा का प्रतीक है। कृति में आगम के प्रमाणों को ससन्दर्भ उल्लेखित करने का हेतु मात्र प्राचीन परंपरा की सुरक्षा अथवा द्रव्य पूजा के विधान द्वारा अपने मत की दुराग्रहपूर्ण पुष्टि नही है अपितु आर्ष मर्यादा को सुरक्षित रखते हुए मोक्ष मार्ग पर उद्यत हुए वीर महापुरुषों को संबल तथा गुणों की पूज्यता, उपयोगिता एवं ग्राह्यता का आगमोक्त विधिपरक सन्मार्ग निरूपित किया गया है। आगमिक परंपरा में परिवर्तन करना आगम की अविनय तो है ही साथ ही संकीर्ण विचारधारा की भी द्योतक है। गुण पूज्य हैं और गुणों की वर्द्धमानता होने पर पूजा के विधानों में भी वर्द्धमानता आती है/आना चाहिए। तप, साधना में निरत रहकर कर्मों की सदैव निर्जरा करने वाले, विश्व में यश कीर्ति अद्भुत विस्तरण करने वाले एवं पतितों को पावनता की श्रेणी में लाकर खड़ा करने वाले महान् आचार्य जिनवाणी की ओर से अपनी दृष्टि फेरें यह बात गले नही उतरती। अतः स्पष्टीकरण की भावना अतिरेक ले रही है....क्या है?

श्रुत सागर में प्रवेश पाना एवं अपने मनो मस्तिष्क में उसे समाहित करना असंभव नहीं, तो सरल भी नहीं है। जिन श्रुत की सहजता को दृष्टिंगत रखते हुए पूर्वाचार्यों ने उसके चार विभाग किये हैं। साधु उपयोग की स्थिरता मात्र के लिए ही श्रुताभ्यास नहीं करते वरन् उनका जीवन ही श्रुतमय बने ऐसी भावना रहती है अतः वे प्रत्येक अनुयोग को समीचीन दृष्टि से देखते और मानते हैं। खेद होता है, जबकि प्रथमानुयोग रूपी प्रथम विभाग की यह कहकर अवहेलना कर दी जाती है कि- अरे उसमें तो किस्से कहानी है। लेकिन क्या यह आगम नही है? शंका है। जिस अनुयोग को समन्तभद्र महाराज ने बोधि-समाधि का निधान कहा है, उसकी उपेक्षा करके क्या हम कभी सम्यग्ज्ञान अथवा निर्विकल्प समाधि प्राप्त कर पायेंगे...? विचारणीय है। प्रथमानुयोग मात्र एक ऐसा अनुयोग है जिसमें शेष तीनों अनुयोग सहज ही समाहित हैं और हम किसी एक ही अनुयोग को पकड़कर अथवा छोड़कर रत्नत्रय को पूर्ण नही मान सकते। हमारी श्रद्धा एवं आचरण के दोषों का सुष्ठुरूपेण निराकरण, द्वादशांग को सर्वांग से ग्रहण करने में ही संभव है।

जैन धर्म अनादिकालीन है अर्थात् एक साधारण दृष्टि से भी जिन धर्म के प्रादुर्भाव का इतिहास योजना या अंदाज लगा पाना असंभव है क्योंकि यह शाश्वत धर्म है। फिर भी सम्प्रति में यदि हम आदि पुरुष ऋषभदेव से भी प्रारंभ करें तो आगम कहता है कि स्वयं आदिप्रभु ने भी यज्ञोपवीत धारण किया था। फिर जिनसेनाचार्य जैसे महन्तों ने तो विशेष सम्बल देकर यज्ञोपवीत की पुष्टि की है। हम किसी भी प्रकार से यज्ञोपवीत का निषेध करने का प्रयास करेंगे तो हर बार ही आगम के तथ्यों का तथा आचार्यों के आदेश का उल्लंघन करेंगे...क्या यह उचित है ?

षट्खण्डागम जैसे महान ग्रन्थों की टीका लिखने वाले प्रसिद्ध जैनाचार्य श्री जिनसेन महाराज को भी हम परंपरागत आचार्यों की श्रेणी से जुदा नहीं कर सकते वरना उनका करुणा दृष्टि से किया गया उपकार निरर्थक तो होगा ही साथ ही हम भी अपने सम्यक्त्व गुण की सुरक्षा नहीं कर पायेंगे। जो हमें फूल देकर गये उन्हें नागफनी के शूल भेंट करना अथवा जिस पत्तल से हमें भोजन मिलता है उसी में छिद्र करने से क्या कभी फिर दुबारा हम इतना पुण्योपार्जन कर पायेंगे जिससे कि वही अथवा वैसी ही पुष्पवाटिका अथवा व्यञ्जनोपूरित पत्तल हमें पुनः मिल जायेगी... चिन्तन में लायें।

सत्य को कहने और सत्याचरण करने में एक महनीय साहस की आवश्यकता पड़ती है। **बोलाचीच कड़ी बोलाचाचि भात, जेउनिया तृप्ति कोण झाला?** खाली हाथ व्यक्ति पंगत में कहे कि **कड़ी लीजिये साहब कड़ी। भात भी लीजिये** पर कहने वाले के हाथ खाली हों बोलने मात्र से खाने वालों का पेट थोड़े ही भर जायेगा। स्वयं को आगमनिष्ठ कहने या कहलवाने मात्र से आगम का अवतार नहीं होगा। आगम को कण्ठस्थ नहीं, हृदयस्थ करें और दृष्टि तथा सृष्टि तद्रूप ढालने का वीरोचित प्रयास करें... आवश्यक है।

कृति में एक नहीं, अनेकों प्रमाण यज्ञोपवीत संस्कार की पुष्टि करते हैं लेकिन निषेध का विधान न तो तत्कालीन आचार्यों ने किया है, न ही वर्तमान के ही कोई भी आचार्य / साधु स्पष्टतः निषेध करते हैं लेकिन फिर भी हम अपने दुराग्रह के कारण इसे आचरण में लाने का प्रयास नहीं कर पा रहे हैं... सोचनीय है। आगम को तोड़ मरोड़कर अथवा कुमार्गग्रस्त मनचले महत्वाकांक्षी व्यक्तियों की लेखनी से उद्धत आगम विरोधी कथनों को पढ़कर, न केवल हम भ्रमित हो रहे हैं बल्कि आर्ष परंपरा का उल्लंघन करने के लिए भी प्रयासरत हैं यह कहाँ तक उचित है? यज्ञोपवीत संस्कार की परंपरा तो हमारे प्राचीन इतिहास में वर्णित है लेकिन निषेध का इतिहास बनाने की कल्पना कहीं हमारे खुरापाती मन की उपज तो नहीं है... जरा विचारें।

अन्तिम

प्रारंभ से लेकर अंत तक श्रमण का जीवन आगम की वैशाखियों पर ही टिका होता है, उनके बगैर वह पंगु है। आगम रूपी नेत्रों से ही वह देख-भाल कर चलता है साधु के जीवन में यदि आगम न हो तो वह अंधे की संज्ञा पा जायेगा अथवा साधुता से पृथक्/रहित कहलायेगा। प्रश्न केवल आगमोक्त आचरण का ही नही, बल्कि हमारी असमीचीन दृष्टि का भी है। सत्य महाव्रत के धारी होकर भी यदि हम प्रथम तो सत्य को पहचान ही नही पा रहे है और दूसरे उसे जानने का प्रयास नही कर रहे हैं, तीसरे यदि जान भी लिया है तो मानने में या तो संकोच / शर्म महसूस कर रहे हैं अथवा पूर्वाग्रह में फँसकर अपने आपको दृष्टिहीन बना रहे है... ऐसा क्यों?

परोपकार की शिरोमणि परंपरा में हमारी भागीदारी स्वार्थान्ध क्यों है? हम आचार्य परम्परा में अनावश्यक परिवर्तन लाकर अपने शिष्यत्व पर कलंक क्यों लगा रहे है? या कोई ऐसा उपाय भी हम सोच रहे हैं जो कभी हम सभी को एक ही धर्म वृक्ष की छाया तले इकट्ठा कर सकेगा? क्या हमने अपने लक्ष्य के रास्ते में दूसरों की कीमत आँकने का भी कभी भाव बनाया है? या केवल अपने मात्र को ही सम्यग्दृष्टि मानकर अन्य सहधर्मियों की उपेक्षा और उन्हें मिथ्यादृष्टि घोषित करने में ही व्यस्त रहे है हम ?

निःस्वार्थ भाव से लिखी गई रचना निःस्वार्थ भाव से स्वीकार की जाए या नही, परंतु लेखक की शुद्ध भावना और आगम के माध्यम से श्रमण संघ के सभी सुगंधित फूलों को एक माला में पिरो देना पुरुषार्थ प्रणम्य है। यह सराहनीय है. स्मरणीय है। करुणोत्पूरित गुरुदेव विश्वजन आराध्य /श्रमण जन आराध्य /संस्कृति जन आराध्य जो न केवल दोहराकर बल्कि शाश्वत कर्मों के महान गुणों का प्रदर्शन करके सत् श्रुत-ध्वनि को प्रतिध्वनित करते हैं । उनके चरण सदैव नम्र रहते हैं ! कलातीत कृत्यों के महत् उपकारों की न केवल पुनरावृत्ति वरन् तदाचरण करके सत्-श्रुत-ध्वनि गुंजायमान करने वाले करुणोत्पूरित गुरुदेव संस्कृति जन आराध्य प.पू. युग सर्वोत्कृष्ट समाधि साधक गणाचार्य श्री विरागसागर जी महामुनिराज हैं उनके श्री चरणों में नित शत-शत नमन...

•••

प्रारंभ से लेकर अंत तक श्रमण का जीवन आगम की वैशाखियों पर ही टिका होता है, उनके बगैर वह पंगु है। आगम रूपी नेत्रों से ही वह देख-भाल कर चलता है साधु के जीवन में यदि आगम न हो तो वह अंधे की संज्ञा पा जायेगा अथवा साधुता से पृथक्/रहित कहलायेगा। प्रश्न केवल आगमोक्त आचरण का ही नहीं, बल्कि हमारी असमीचीन दृष्टि का भी है। सत्य महाव्रत के धारी होकर भी यदि हम प्रथम तो सत्य को पहचान ही नहीं पा रहे हैं और दूसरे उसे जानने का प्रयास नहीं कर रहे हैं, तीसरे यदि जान भी लिया है तो मानने में या तो संकोच / शर्म महसूस कर रहे हैं अथवा पूर्वाग्रह में फँसकर अपने आपको दृष्टिहीन बना रहे है... ऐसा क्यों?

परोपकार की शिरोमणि परंपरा में हमारी भागीदारी स्वार्थान्ध क्यों है? हम आचार्य परम्परा में अनावश्यक परिवर्तन लाकर अपने शिष्यत्व पर कलंक क्यों लगा रहे है? या कोई ऐसा उपाय भी हम सोच रहे हैं जो कभी हम सभी को एक ही धर्म वृक्ष की छाया तले इकट्ठा कर सकेगा? क्या हमने अपने लक्ष्य के रास्ते में दूसरों की कीमत आँकने का भी कभी भाव बनाया है? या केवल अपने मात्र को ही सम्यग्दृष्टि मानकर अन्य सहधर्मियों की उपेक्षा और उन्हें मिथ्यादृष्टि घोषित करने में ही व्यस्त रहे है हम ?

निःस्वार्थ भाव से लिखी गई रचना निःस्वार्थ भाव से स्वीकार की जाए या नहीं, परंतु लेखक की शुद्ध भावना और आगम के माध्यम से श्रमण संघ के सभी सुगंधित फूलों को एक माला में पिरो देना पुरुषार्थ प्रणम्य है। यह सराहनीय है. स्मरणीय है। करुणोत्पूरित गुरुदेव विश्वजन आराध्य /श्रमण जन आराध्य /संस्कृति जन आराध्य जो न केवल दोहराकर बल्कि शाश्वत कर्मों के महान गुणों का प्रदर्शन करके सत् श्रुत-ध्वनि को प्रतिध्वनित करते हैं। उनके चरण सदैव नम्र रहते हैं! कलातीत कृत्यों के महत् उपकारों की न केवल पुनरावृत्ति वरन् तदाचरण करके सत्-श्रुत-ध्वनि गुंजायमान करने वाले करुणोत्पूरित गुरुदेव संस्कृति जन आराध्य प.पू. युग सर्वोत्कृष्ट समाधि साधक गणाचार्य श्री विरागसागर जी महामुनिराज हैं उनके श्री चरणों में नित शत-शत नमन...

•••

युग सर्वोत्कृष्ट समाधि साधक
प.पू. गणाचार्य श्री विरागसागर जी गुरुदेव

अंतिम उपदेश

जीवन क्षणभंगुर है। पता नहीं, किस के जीवन का कब समापन हो जाये? इसलिए शास्त्रों में, आचार्यों ने कहा - साधुगण पूर्व से ही तैयार रहते हैं। अभी तक इतना विशाल संघ लगभग-लगभग 500-550 शिष्य-प्रशिष्य हैं, और जिनशासन की धर्म ध्वजा फहराते रहे हैं। इसलिए किसी न किसी योग्य शिष्य के लिए ये जिम्मेदारी सौंपकर के हल्का हो जाना चाहिए। यही जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा है, तीर्थंकर भगवान की आज्ञा है। आगम की आज्ञा है।

हमारे संघ में प्रभावक और कुशल श्रमणाचार्य विशुद्धसागर जी महाराज हैं, और वे इस जिम्मेदारी को पालन करने में सक्षम और समर्थ हैं। चूँकि, इतने विशाल संघ में हर किस्म के साधक होते हैं। आचार्यगण बड़ी गम्भीरता से, धैर्य से उन सबका पालन करते हैं। हम चाहते हैं कि विशुद्धसागर जी महाराज! वो अपनी निःस्वार्थ भावना से, साधुओं में बिना राग-द्वेष के, प्रेम, वात्सल्य के साथ सभी का यथोचित ध्यान रखें। चर्या सभी की श्रेष्ठ हो, क्योंकि शिथिलता के संस्कार एक बार आ जाते हैं तो उनका चेंज करना बड़ा कठिन होता है।

तीसरी, वे इन सब बातों का ध्यान रखें। महाराजों में हमारे सारे महाराज हैं। विवर्धनसागर जी महाराज हैं, विनिश्चय, विहर्ष, विभव आदि-आदि। विहर्षसागर जी महाराज हैं। सदैव-सदैव जिन्होंने कन्धे-से-कन्धे मिला करके चले हैं। सहयोगी रहे हैं। भविष्य में भी उनका सबका सहयोग अनवरत बना रहे। सात आचार्य हैं, आठ व सात उपाध्याय हैं, गणधर हैं, स्थविर हैं, प्रवर्तक हैं, गणिनी माता जी लोग हैं। वो अपने-अपने संघो का अच्छी तरह से पालन करें। अपन लोग सहयोगी बनें। ऐसा मेरा आपके लिए एक उपदेश है, संकेत है, आदेश है। साधु जीवन का धैर्य से, गंभीरता से पालन करना और कराना यह आचार्यों का उत्तम दायित्व होता है। इसलिए आज मेरे मन में आया - समय के पूर्व, कल का क्या भरोसा? आज बोल पा रहे। कल बोल पाये या न बोल पायें। आज ध्यान है, कल ध्यान रख पाये, न रख पाये। इसलिए एक पूर्व संकेत सभी साधु, सभी शिष्य, प्रशिष्यगण पालन करें।

परम पूज्य आचार्य गुरुदेव विमलसागर जी महाराज और अपने संघ की जो पद्धतियाँ हैं, जो परम्पराएँ हैं उनका भलीभाँति, बिना इनमें समझौता किये पालन करते रहें। और सभी को पालन कराते रहें। मेरी भावना है सभी में चर्या में एकीकरण रहे, एकता रहे। और भरोसा है - सभी योग्य शिष्य हैं और वे निश्चित इस विषय में सोचेंगे और उसका पालन करेंगे। जैन धर्म की ध्वजा फहराते रहेंगे। इतने दिनों में मेरे से जाने में, अन्जानता में, प्रमाद में, राग-द्वेष में, मोह के वशीभूत होकर के कहीं कोई त्रुटि हो तो सभी लोग मुझे क्षमा करें। और मैं भी सभी लोगों के लिए, सभी साधुओं के लिए क्षमा प्रदान करता हूँ। अभी वसुनंदी का भी समाचार आया था - उन्होंने भी क्षमा याचना की पवित्र भावना रखी, उनके लिए भी मेरा आशीर्वाद है। सभी प्रेम, वात्सल्य से रहें और धर्म की प्रभावना करते रहें।

यही मेरा आशीर्वाद...

- अंतिम श्रोता - अरुण कोटडिया, अहमदाबाद

नोट : यह संदेश समाधि के एक दिन पूर्व 3/7/2024 को दोपहर 3.30 से 4.00 के मध्य दिया।

जालना (महा.) में हुई श्रेष्ठ समाधि का चित्रणपरक आलेख

युग प्रतिक्रमण प्रवर्तक प.पू. गणाचार्य श्री विरागसागर जी महामुनिराज

प.पू. भारत गौरव, राष्ट्रसंत, युग प्रतिक्रमण प्रवर्तक, गणाचार्य श्री 108 विरागसागर जी महामुनिराज ने अपने 45 वर्षों की तप, त्याग, चिंतन, मनन, गहन अध्ययन की चिरकालीन अथक संयम, साधना, के अनन्तर 4 जुलाई 2024 को अपने अंतस के सभी संकल्प-विकल्पों, राग-द्वेष परिणाम तथा अपने उत्तराधिकारी के चयन की घोषणा के साथ अपने पद का त्याग कर सभी के प्रति क्षमा भाव की अभिव्यक्ति के साथ सल्लेखनापूर्वक समाधि को धारण किया।

एक श्रेष्ठ साधक समाधिमरण की भावनाओं के साथ संयम के पथ पर अग्रसित होता है उन भावनाओं को / उस लक्ष्य को प्राप्त कर वर्तमान में एक श्रेष्ठ साधना के प्रस्तोता प.पू. गुरुदेव रहे जिनका नाम समाधिमरण के श्रेष्ठ उदाहरण के रूप में स्वर्णाक्षरो में अंकित रहेगा।

प.पू. गुरुदेव सदैव दूसरों की समाधि साधना में सहायक रहते थे। यही कारण है कि प.पू. गुरुदेव के निर्यापकाचार्यत्व में 148 मुमुक्षुओं ने सल्लेखनापूर्वक समाधिमरण को प्राप्त किया। ऐसा प्रतीत होता है कि प.पू. गुरुदेव की सदैव यही पुनीत-पवित्र भावनाओं से उन्होंने समाधिमरण के श्रेष्ठ सोपान को प्रदान किया।

प.पू. गुरुदेव ने सन् 2023 का अतिशय क्षेत्र श्रेयांसगिरि में प्रभावनापूर्वक चातुर्मास करने के उपरांत क्रमशः अतिशय क्षेत्र श्रेयांसगिरि, सिद्धक्षेत्र नैनागिरि जी, द्रोणगिरी जी, अतिशय क्षेत्र श्री विरागोदय चीर्थ पथरिया, शाहगढ, चंदला (म.प्र.) में पंचकल्याणक करवाये, जदनन्तर वर्धा, रामटेक जी, पुलगाँव, चांदुर रेलवे, सिद्धक्षेत्र मुक्तागिरी जी, अंजन गाँव, गाँधीग्राम, अकोला में धर्म संस्कारों की वर्षा करते हुए कारंजा (लाड) पहुँचे। यहाँ 2 दीक्षायें प्रदान की, वहाँ से तीर्थ क्षेत्र शिरपुर की वंदना करते हुए औरंगाबाद (महा.) की ओर विहार जारी था। प.पू. गुरुदेव ससंघ (32 पिच्छी) का 2 जुलाई 2024 का आहार जालना से लगभग 6 कि.मी. पूर्व अक्षय मंगल कार्यालय देवमूर्ति की वसुन्धरा पर हुआ । प्रतिदिन की भाँति सायंकाल में लगभग 4.30 पर संघ

ने विहार किया तो लगभग 50-100 कदम ही बढ़े होगें कि प.पू. गुरुदेव को अचानक बैचेनी महसूस होने लगी तो प.पू. गुरुदेव वहाँ पर अल्प समय के लिए बैठ गये। डॉ.ने परामर्श दिया कि गुरुदेव श्री आज विहार न करें। तब सभी संघ पुनः अक्षय मंगल कार्यालय में आ गया। उस समय अस्वस्थता में भी प.पू. गुरुदेव ने अपनी सायंकालीन प्रतिक्रमण, सामायिक, स्वाध्याय, तथा रात्रिक स्वाध्याय, प्रतिक्रमण, सामायिक, प्रातःकालीन स्तोत्र पाठ आदि क्रियाओं का पूर्णरूपेण ध्यान रखा।

प्रातःकाल की बेला में प.पू. गुरुदेव ने अभिषेक शांतिधारा देखी, तदनंतर आहार में केवल लिक्विड आहार ही ग्रहण किया। आहार के उपरांत ईर्यापथ भक्ति, दोपहर की सामायिक, स्वाध्याय की क्रियाएँ प्रतिदिन की भाँति यथावत रही। दोपहर 3 बजे के लगभग पू. गुरुदेव ने अरूण कोटडिया जी अहमदाबाद को एक छोटी क्लिप तैयार करने को कहा। तथा हमें (स्थिविर मुनि श्री विहितसागर जी व मुनि विवर्धन सागर) को 10 मिनिट के लिए कमरे के बाहर जाने को कहा ।

सायंकाल में प.पू. गुरुदेव ने यथासमय प्रतिक्रमण, सामायिक, स्वाध्याय किया। प.पू. गुरुदेव ने रात्रि में प्रत्येक घंटे में लगभग 15-20 मिनिट चिंतन, मनन, जाप किया।

रात्रि में 2 बजे पुनः प.पू. गुरुदेव उठे तथा लगभग 20 मिनिट तक चिंतन, मनन, जाप करते रहे तदनंतर गुरुदेव ने खड़े होकर चारों दिशाओं में दिग्वंदना की। दिग्वंदना के पश्चात् प.पू. गुरुदेव बैठ गए, बैठते ही प.पू. गुरुदेव को पुनः बैचेनी महसूस होने लगी उस समय प.पू. गुरुदेव की भाव भंगिमा को देखकर यह महसूस होने लगा कि प.पू. गुरुदेव का ज्यादा समय शेष नहीं है।

तब उनको णमोकार महामंत्र का पाठ सुनाया व चारों प्रकार के आहार त्यागपूर्वक यम सल्लेखना के साथ प.पू. गुरुदेव ने 4 जुलाई की रात्रि 2.24 बजे इस नश्वर देह का त्यागकर अपने जीवन की रत्नत्रय आराधना-साधना को सफल किया।

संघ के सभी साधक दिन-रात प.पू. गुरुदेव की यथाशक्ति सेवा वैय्यावृति में तत्पर रहे! प.पू. गुरुदेव एक ऐसे साधक रहे जिन्होंने डॉ. के विशेष इलाज के आग्रह को ठुकराकर 'प्राण जाय, पर प्रण (संयम) न जाय' कि सूक्ति को सार्थक किया। सुबह अरूण कोटडिया जी से जानकारी ली तो एक दिन पूर्व की वीडियो क्लिप देखकर अति

हर्ष हुआ कि प.पू. गुरुदेव को अपनी जीवन के अवसान का पूर्व से ही आभास हो गया था, तथा प.पू. गुरुदेव ने अपने उत्तराधिकारी हेतु श्रमणाचार्य श्री विशुद्धसागर जी का चयन कर अपने आचार्य पद का त्याग करते हुए 'सभी को क्षमा - सभी से क्षमा' के सूत्र धारण कर अपने अंतस् के सभी संकल्प-विकल्पों का त्याग कर दिया था।

प.पू. गुरुदेव की समाधि के उपरांत एक साधक ने अपनी विनयांजलि में कहा कि गणाचार्य श्री की समाधि के पूर्व मेरे पास समाचार आया था कि मेरी उन साधक से चर्चा करा दें।

उपरोक्त विषय में मैं स्पष्ट करना चाहता हूँ कि प.पू. गुरुदेव ने अपनी समाधि के पूर्व इस प्रकार की कोई भी भावना नहीं रखी, न ही किसी को फोन आदि कराया। प.पू. आचार्य भगवन दो दिवसीय इस अवधि में निरंतर ध्यान-साधना-चिंतन में ही लीन रहें।

प.पू. गुरुदेव ने सल्लेखनापूर्वक समाधि का ऐसा उदाहरण प्रस्तुत किया जिसने जन-जन के हृदय में एक अविस्मरणीय छाप अंकित कर दी। ऐसे उत्कृष्ट समाधि साधक प.पू. भारत गौरव, राष्ट्रसंत, गणाचार्य श्री विरागसागर जी महामुनिराज को त्रयभक्तिपूर्वक बारम्बार नमोऽस्तु, नमोऽस्तु, नमोऽस्तु।

गुरु चरणानुरागी

- स्थिविर श्रमण मुनि विहितसागर

- गणधर श्रमण मुनि विवर्धनसागर

- प्रवर्तक श्रमण मुनि विश्वनायकसागर

कृति में प्रयुक्त संदर्भित ग्रन्थ

1.	पाँचवी ईस्वी पूर्व	प्रतिक्रमण प्रकाशन - अनेकान्त विद्वत परिषद् लोहारिया	आ. गौतम गणधर
2.	ईस्वी पूर्व	क्रियासार प्रकाशन - संदीप शाह, जयपुर	आ. भद्रबाहु
3.	प्रथम शताब्दि	भगवती आराधना प्रकाशन - दिगंबर जैन समाज, कोलकाता	श्री आचार्य शिवकोटि
4.	द्वितीय शताब्दि	प्रवचनसार प्रकाशन- परमश्रुत प्रभावक मंडल, सोलापुर	श्री कुन्दकुन्दाचार्य
5.	द्वितीय शताब्दि	अष्ट पाहुड चारित्र, मोक्ष (सूत्र, बोध, दर्शन) प्रकाशन - अनेकान्त सिद्धांत परिषद, लोहारिया	श्री कुन्दकुन्दाचार्य
6.	द्वितीय शताब्दि	मूलाचार प्रकाशन - भारतीय ज्ञान पीठ, दिल्ली	श्री वट्टकेराचार्य
7.	द्वितीय शताब्दि	तत्वार्थ सूत्र प्रकाशन-सरल ग्रंथ माला, जबलपुर उमास्वामी	गृद्धपिच्छाचार्य श्री
8.	द्वितीय शताब्दि	रत्नकरण्डक श्रावकाचार प्रकाशन मुनिसंघ सेवा समिति सागर	श्री समंतभद्राचार्य
9.	द्वितीय शताब्दि	कातिकियानुप्रेक्षा प्रकाशन - परमश्रुत प्रभावक मण्डल, आगरा	श्री कुमार कातिकिय
10.	द्वितीय शताब्दि	रयणसार प्रकाशन - भारत के अनेकांत विद्वान	श्री कुन्दकुन्दाचार्य
11.	द्वितीय शताब्दि	तिलोयपण्णत्ति प्रकाशन-प्रकाशन विभाग, श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा	आ. यतिवृषभ
12.	चतुर्थ शताब्दि	प्राकृत पउमचरिउ प्रकाशन-	श्री विमल सूरी
13.	पाँचवी शताब्दि	सर्वार्थसिद्धि प्रकाशन-भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली	श्री देवनन्दी/पूज्यपाद
14.	पाँचमी शताब्दि	समाधि भक्ति	श्री देवनन्दी/पूज्यपाद
15.	छठवीं शताब्दि	परमात्म प्रकाश प्रकाशन-परमश्रुत प्रभावक मण्डल आगरा	श्री योगेन्दु देव

16.	सातवी शताब्दि	राजवार्तिक प्रकाशन-भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली	श्री भट्टकलंक देव
17.	सातवी शताब्दि	पद्मपुराण प्रकाशन-भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली	श्री रविषेणाचार्य
18.	सातवी शताब्दि	वरांगचरित्र प्रकाशन-भारतीय अनेकांत विद्वत परिषद, लोहारिया	आ. जटासिंहनंदि
19.	आठवी शताब्दि	हरिवंश पुराण प्रकाशन-भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली	श्री जिनसेनाचार्य (प्रथम)
20.	आठवी शताब्दि	धवला टीका प्रकाशन-जीवराज ग्रंथमाला, सोलापुर	श्री वीरसेनाचार्य
21.	नौवी शताब्दी	आदिपुराण प्रकाशन-भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली	श्री जिनसेन (तृतीय)
22.	नवमी शताब्दि	उत्तर पुराण प्रकाशन-भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली	श्री गुणभद्र (प्रथम)
23.	दसवी शताब्दि	पुरुषार्थ सिध्युपाय प्रकाशन-भारतवर्षीय अनेकांत विद्वत परिषद्, सोनागिर	श्री अमृतचन्द्राचार्य
24.	दसवी शताब्दि	इन्द्रनन्दि नीतिसार समुच्चय प्रकाशन-भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत परिषद्, सोनागिर	श्री इन्द्र नन्दि
25.	दसवीं शताब्दि	प्राकृत भाव संग्रह प्रकाशन-जीवराज ग्रंथमाला, सोलापुर	श्री देवसेन
26.	दसवीं शताब्दि	तत्वसार प्रकाशन-मूलचंद किशनदास कपाड़िया मालिक दिगम्बर जैन पुस्तकालय, सूरत	श्री देवसेन
27.	दसवीं शताब्दि	अभिषेक पाठ प्रकाशन-भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली	श्री अभयनंदी
28.	दसवीं शताब्दि	यशस्तिलक चम्पू प्रकाशन-भारतवर्षीय अनेकांत विद्वत परिषद्, लोहारिया	श्री सोमदेव
29.	दसवीं शताब्दि	आचारसार प्रकाशन-सप्तगजरथ महोत्सव समिति, अशोकनगर	श्री वीरनन्दि आचार्य
30.	दसवीं शताब्दि	चारित्रसार प्रकाशन-श्री दिगम्बर जैन समाज, सीकर	श्री चामुंडराय

30.	दसवी शताब्दि	गोम्मटसार जीवकाण्ड प्रकाशन-परमश्रुत प्रभावक मंडल, आगास	श्री सिद्धांत चक्रवर्ती नेमिचंद्राचार्य
31.	दसवी शताब्दि	शांतिपुराण प्रकाशन-जीवराज ग्रंथमाला, सोलापुर	श्री महाकवि असग
32.	दसवी शताब्दि	चन्द्रप्रभु चरित्र प्रकाशन-भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत परिषद्, लोहारिया	श्री वीरनन्दि आचार्य
33.	ग्यारहवी शताब्दी	प्रतिष्ठा तिलक प्रकाशन-	श्री ब्रह्मदेव
34.	ग्यारहवी शताब्दी	वसुनन्दी श्रावकाचार प्रकाशन -भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत परिषद्, लोहारिया	श्री वसुनन्दि आचार्य
35.	ग्यारहवीं शताब्दी	प्रवचनसार टीका प्रकाशन-परमश्रुत प्रभावक मण्डल, आगास	श्री जयसेनाचार्य
36.		यशोधर चरित्र प्रकाशन-श्री आचार्य शिवसागर, दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला (श्री महावीर जी राजस्थान)	आ. वादिराज
37.	बारहवीं शताब्दि	धर्मामृत प्रकाशन-आचार्य देशभूषण चातुर्मास समिति, दिल्ली	श्री नयसेनाचार्य
38.	बारहवीं शताब्दि	प्रद्युम्न चरित्र प्रकाशन-जैन पुस्तक भवन, कलकत्ता	श्री सिंहनन्दि आचार्य
39.	बारहवीं शताब्दी	सागार धर्मामृत प्रकाशन भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद्, सोनागिर, दतिया	पं. आशाधरजी
40.	बारहवीं शताब्दि	क्रियाकलाप प्रकाशन-पन्नालाल सोनी शास्त्री, आगास	श्री प्रभाचंद्राचार्य (षष्ठ)
41.	तेरहवीं शताब्दी	पुण्याश्रव कथाकोष प्रकाशन-जीवराज ग्रंथमाला, सोलापुर	श्री रामचन्द्र मुमुक्षु
42.	तेरहवीं शताब्दि	प्रतिष्ठा सारोध्धार प्रकाशन-	श्री पं. आशाधरजी
43.	तेरहवीं शताब्दि	संस्कृत भाव संग्रह प्रकाशन-अनेकान्त विद्वत् परिषद्, लोहारिया	श्री वामदेव

44.	पन्द्रहवीं शताब्दी	प्रश्नोत्तर श्रावकाचार प्रकाशन-भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद्, लोहारिया	श्री सकलकीर्ति
45.	पंद्रहवीं शताब्दि	प्रद्युम्न चरित्र प्रकाशन-जैन पुस्तक भवन, कलकत्ता	श्री सोमकीर्ति
46.	पंद्रहवीं शताब्दी	धर्मसंग्रह श्रावकाचार प्रकाशन-जीवराज ग्रंथमाला, सोलापुर	श्री मेघावी
47.	पंद्रहवीं शताब्दि	चन्द्रप्रभु चरित्र टीका प्रकाशन-अनेकान्त विद्वत् परिषद्, लोहारिया	श्री मुनिचन्द्र
48.	पंद्रहवीं शताब्दि	सुदर्शन चरित्र प्रकाशन-भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत परिषद्	भट्टारक विद्यानंदि
49.	पंद्रहवीं शताब्दी	पुराणसंग्रह प्रकाशन-अयोध्या प्रकाशक मोयलीय मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ दुर्गकुण्ड रोड, बनारस	आ. दामनन्दि
50.	सोलहवीं शताब्दी	पंचाध्यायी प्रकाशन-जीवराज ग्रंथमाला, सोलापुर	पं. राजमल
51.	सत्रहवीं शताब्दि	समयसार नाटक प्रकाशन-वीतराग सत्साहित्य प्रसारक, भावनगर	पं. बनारसीदास
52.	अठारहवीं शताब्दि	छहढाला प्रकाशन-सरलग्रन्थ भण्डार, जबलपुर	पं. दौलतरामजी
53.	अठारहवीं शताब्दि	क्रियाकोष प्रकाशन-	पं. किशनदास
54.	उन्नीसवीं शताब्दि	महावीर पूजा प्रकाशन-सरल ग्रन्थ भण्डार, जबलपुर	पं. वृन्दावन
55.	बीसवीं सदी	यज्ञोपवीत संस्कारविधि (सुधर्म श्रावकाचार)	श्री आचार्य सुधर्मसागर
56.	बीसवीं शताब्दि	श्रावक धर्म प्रदीप प्रकाशन-श्री दिगम्बर जैन समाज, कटनी	आचार्य कुन्थुसागर
57.	बीसवीं शताब्दि	श्रमण संघ संहिता प्रकाशन-श्री दिगम्बर जैन समाज, बड़ौत	श्री ऐलाचार्य कनकनंदी

जिनका सही इतिहास प्राप्त नहीं हो सका

1. ताड़पत्रीय ग्रंथ 2. महाकलंक संहिता 3. दानशासन 4. प्रायश्चित् चूलिका 5. प्रायश्चित् संग्रह 6. मंत्र लक्षण शास्त्र 7. प्रायश्चित् सूत्र

* * *

अनुक्रमणिका

विषय — पृष्ठ संख्या

- समर्पण .... (i)
- प्रस्तावना - गणाचार्य विरागसागर जी........ (ii)
- प.पू. गणाचार्य श्री विरागसागर जी - जीवन झाकियाँ .... (vi)
- आशीर्वाद - आचार्य श्री सन्मतिसागर जी .... (ix)
- ध्येय - गणाचार्य श्री विरागसागरजी .... (xi)
- पुरोवाक .... (xiii)
- अंतिम .... (xviii)
- अंतिम उपदेश - गणाचार्य श्री विरागसागरजी........ (xix)
- जालना (महा.) में हुई श्रेष्ठ समाधि .... (xxi)
- कृति में प्रयुक्त (संदर्भित ग्रंथ)........ (xxiv)
- अनुक्रमणिका .... (xxviii)

पात्र भक्ति एवं आर्यिका चर्या

1. साधु मुद्रा 31-32
    1. मुद्रा ही जिनमुद्रा है 31
    2. मुद्रा ही सर्वत्र मान्य होती है 31
    3. भगवान ऋषभदेव की मुद्रा चार गुण युक्त होती है 32
    4. मुनि लिंग (मुद्रा) के चार भेद 32
    5. आर्यिकाएँ भी पिच्छि धारण करती हैं 32

2. मयूर पिच्छि 33-40
    1. मयूर पिच्छि के पाँच गुण 33
    2. पिच्छि के 5 लक्षण 33
    3. पिच्छि दया का अंग है 34
    4. पिच्छि की उपयोगिता 34
    5. मयूर स्वयं पंख छोड़ती है 35
    6. पिच्छिका दान महिमा 36
    7. उपकरण दाता मोक्षमार्गी 36
    8. शास्त्रदान की महिमा 36
    9. किन्हें पिच्छि आवश्यक नहीं होती है 37
    10. उपकरण का स्वरुप 37
    11. साधक एक ही पिच्छि कमण्डल रखें 37
    12. परिग्रह निषेध 38
    13. निष्पिच्छ माथुर संघ 38
    14. निःपिच्छि परम्परा जैनाभास है 39
    15. जैनाभास निष्पिच्छ संघ 39
    16. बिना पिच्छि के गमन करने का प्रायश्चित 40

3. पात्र भक्ति 41-75

1. सतपात्र के भेद 44
2. सत्पात्रों की नवधा भक्ति के प्रमाण 44
3. नवधा भक्ति का उल्लंघन करने से हानि 46
4. क्षुल्लकों के पाद प्रक्षालन व अर्घ के आगम प्रमाण 46
5. एक-एक व्रत के धारी सम्यग्दृष्टि भी पूज्य हैं 53

4. अभिवंदना..76-77

5. चतुर्विध संघ..78-86

1. चतुर्विध संघ तीर्थंकरों के साथ भी रहता था 81
2. मुनिसंघ के साथ आर्यिकाएँ 82
3. आर्यिकाएँ मुनि के लिए नमस्कार करें 82
4. आर्यिकाओं द्वारा नमस्कार करने पर मुनि क्या कहें 83
5. आर्यिकाएँ भी विनय की पात्रा हैं 83
6. आर्यिका वंदनीय है 84
7. आर्यिकाएँ भी पूजा योग्य हैं 85
8. आर्यिकाओं के देह की पूजा 86

6. आर्यिका-प्रव्रज्या निषेध-विधि..87-99

1. प्रव्रज्या 88
2. स्त्रियों के निर्ग्रन्थ प्रव्रज्या (नग्न दीक्षा) निषेध 92
3. स्त्रियों में निर्ग्रन्थता नहीं होती 92
4. आर्यिकाओं की प्रव्रज्या आदि के निषेध का मुख्य कारण 93
5. स्त्रियों के सावरण प्रव्रज्या 94
6. आर्यिकाओं के एक साड़ी होती है 96
7. आर्यिका प्रव्रज्या के प्रमाण 98
8. आर्यिका दीक्षा के प्रमाण 99

7 आर्यिका दीक्षा प्रदाता..100-117

1. तीर्थंकरों से आर्यिका दीक्षा 100
2. केवली से दीक्षा के प्रमाण 102
3. आचार्यों को आर्यिका दीक्षा का उपदेश 103
4. आर्यिका दीक्षादायक आचार्य का लक्षण 104
5. आचार्यों द्वारा आर्यिका दीक्षा 104
6. मुनियों द्वारा आर्यिका दीक्षा 106
7. गणिनी आर्यिकाओं से आर्यिका दीक्षा 107
8. आर्यिकाओं द्वारा आर्यिका दीक्षा 109
9. आर्यिकाओं के उपचार से महाव्रत 114

8. आर्यिकाओं के मूलगुण 118-132
1. आर्यिकाओं को संयम निषेध-विधि 119
2. आर्यिकाओं के कर्मों की निर्जरा निषेध-विधि 120
3. आर्यिकाओं के ध्यान निषेध-विधि 122
4. आर्यिकाओं को तद्भव से निर्वाण (मोक्ष) का निषेध 124
5. आर्यिकाएँ उन्मार्गी नहीं, मोक्षमार्गी हैं 128
6. आर्यिकाओं को क्षायिक सम्यग्दर्शन- 129
7. आर्यिकाओं को ग्यारह अंग का ज्ञान 130
8. आर्यिकाओं की समाचार विधि मुनियों वत् 130
9. समाचार के भेद 131
10. मुनियों व आर्यिकाओं की समाचार विधि समान हैं 132
9. आर्यिका - नवधा भक्ति........................ 133-143
1. विधि - नवधा भक्ति 134
10. अशुद्धि (अशौच) के परिपेक्ष्य में - शंका समाधान 144-165
1. आहार विषयक शंका - समाधान 144
2. मौन विषयक शंका - समाधान 144
3. वसतिका विषयक शंका - समाधान 145
4. अशौच के समय भी आर्यिका, आर्यिका है 145
5. शुद्धि के बाद प्रायश्चित लें 146
6. अशौच के समय तीसरा वस्त्र न लें 147
7. यदि तीसरा वस्त्र लें तो प्रायश्चित 147
8. पिच्छी छोड़ने या न छोड़ने विषयक शंका-समाधान 150
9. आर्यिकाओं को अशुद्धि के समय पिच्छी छोड़ने का आगमिक विधान नहीं है 156
10. बिना पिच्छि के चलने का प्रायश्चित 156
11. आर्यिकाओं को पिच्छि रखने का प्रमाण 156
स्त्रियों के अशौच विषयक विज्ञान की मान्यताएँ........................ 166-169
परिशिष्ट 170-194
आगम और आचार्य परम्परा के सन्दर्भ में निम्नलिखित बिन्दुओं का समाधान . . 170
वर्तमान शताब्दि के दिगम्बर जैनाचार्य संघ 175
आर्यिकाओं की एवं ऐलक-क्षुल्लक की नवधाभक्ति कब? कितनी? और कैसे? . . 182
संदर्भ सूची 195-196
साहित्य सूची........................ 197-202

1

साधु मुद्रा

1. मुनि मुद्रा ही जिनमुद्रा है -

दढसंजम मुद्दाए, इंदिय मुद्दा कसाय दढ मुद्दा ।

मुद्दा इह णाणाए, जिणमुद्दा एरिसा भणिया ।।

(बोध पाहुड गाथा 19)

जो संयम की दृढमुद्रा से सहित है जिसमें इन्द्रियों का मुद्रण संकोच सहित है ऐसी मुनि मुद्रा ही जिनमुद्रा है। जिनशासन में यही जिनमुद्रा कही गई है।

अत्यन्त हीन वस्तु भी राजमुद्रा से युक्त की तरह मान्य होती है। क्योंकि मुद्रा सभी जगह मान्य होती है। मुद्राहीन मान्य नहीं होती, ऐसा शास्त्रों में निर्णय है -

2. मुद्रा ही सर्वत्र मान्य होती है -

मुद्रा सर्वत्र मान्यास्यान्निर्मुद्रो नैव मन्यते ।

राज मुद्रा धरोत्यन्तं हीनवच्छास्त्र निर्णयः।।

(इन्द्रनन्दि नीतिसार श्लोक 77)

सभी जगह मुद्रा ही मान्य होती है, मुद्रा रहित का सम्मान नहीं होता। जिस प्रकार राजमुद्रा को धारण करने वाला अत्यन्त हीन मनुष्य भी मान्य होता है, शास्त्र का यही निर्णय है।

3. भगवान ऋषभदेव की मुद्रा चार गुण युक्त होती है -

अचैलत्वं च-लुञ्चित्वं व्युदसृष्टांगं स पिच्छकं।

(पुराणसार संग्रह सर्ग 3 श्लोक 34)

1. वस्त्ररहित नग्न मुद्रा 2. केशलुंच करना 3. श्रृंगाररहित 4. जीव रक्षार्थ मयूर पिच्छि को धारण करना।

4. मुनि लिंग (मुद्रा) के चार भेद -

अच्चेलक्कं लोचो वोसट्टसरीरदाय पडिलिहिणं ।

एसो हु लिंग कप्पो चदुव्विहो होदि उस्सग्गे ।।

(भगवती आराधना गाथा 80)

अचेलकत्व, केशलोंच, शरीर संस्कार त्याग और पिच्छि ये चार लिंग के भेद जानने चाहिये।

5. आर्यिकाएँ भी पिच्छि धारण करती हैं -

यथा-आचार्य भद्रबाहु कृत क्रियासार (गाथा नं. 78) में लिखा है कि-

अज्जाणु होदि पिच्छि करा

अर्थात् आर्यिकाएँ भी अपने हाथ में पिच्छि धारण करती हैं ।

* * *

2

मयूर पिच्छि

मयूर पंख से निर्मित पिच्छि ही प्रशंसनीय है क्योंकि उसी में पाँच गुण संभव हैं, अन्य में नहीं।

पिच्छि का दूसरा नाम प्रतिलेखन भी है।

1. मयूर पिच्छि के पाँच गुण-

रयसेयाणमगहणं मद्दव सुकमालदा लघुत्तं च ।
जत्थेदे पंच गुणा तं पडिलिहणं पसंसंति ।।

(भगवती आराधना गाथा 98)

अर्थात् जो मयूर पिच्छि रज/धूल, पसीना ग्रहण नहीं करती है, जो मृदु होती है, सुकुमार और वजन में हल्की होती है, ऐसे पाँच गुणों से युक्त प्रतिलेखनी/पिच्छि प्रशंसनीय है।

2. पिच्छि के 5 लक्षण-

छत्रार्थं चामरार्थं च, रक्षार्थं सर्व देहिनाम्।
यंत्र मंत्र प्रसिद्धयर्थ, पंचैते पिच्छि लक्षणम् ।।

(मंत्र लक्षण शास्त्र)

अर्थ – (छत्रार्थं) छाया के लिये। जीवों से रक्षा के लिए (चामरार्थं) हवा के लिये। जीवों को उड़ाने के लिये (सर्व देहिनाम् रक्षार्थं) सभी जीवों की रक्षा के लिये (यंत्र प्रसिद्धयर्थं) यंत्र की सिद्धि के लिये (मंत्र प्रसिद्धयर्थं) मंत्र की प्रसिद्धि के लिये जिसका उपयोग किया जाता है इस प्रकार के पाँच लक्षण वाली पिच्छि होती है।

3. पिच्छि दया का अंग है–

सन्ति मयूर पिच्छेऽत्र, प्रतिलेखन मूर्जितम्।
तं प्रशंसन्ति तीर्थेशा, दयायै योगिनां परम् ।।

(मूलाचार प्रदीप श्लोक 2522)

दया के लिये योगी मुनियों के हाथ में मयूर पिच्छि होती है, जिससे वे जीवों की रक्षा करते हैं। तीर्थंकरदेव उसकी प्रशंसा करते हैं।

4. पिच्छि की उपयोगिता –

इरियादाण णिक्खेवे विवेग ठाणे णिसीयणेसयणे ।
उण्वत्तण परिवत्तण, पसारणा उंटणा मरसे ।।
पडिलेहणेण पडिलेहिज्जइ चिण्हं च होइ सगपक्खे ।
विस्सासियं च लिंग संजद पडिरुवदा चेव ।।

(भगवती आराधना गाथा 96-97)

जब पिच्छिधारी मुनि – आर्यिका बैठते हैं, खड़े होते हैं, सोते हैं, अपने हाथ-पैर पसारते हैं, संकोचते हैं। जब वे उत्तान शयन करते हैं, करवट बदलते हैं तब वे अपना शरीर पिच्छिका से परिमार्जन करते हैं।

पिच्छिका से ही जीवदया पाली जाती है। पिच्छिका लोगों में यति विषयक विश्वास उत्पन्न करने का चिन्ह है तथा पिच्छिका धारण करने से वे मुनिराज प्राचीन मुनियों के प्रतिनिधि स्वरूप हैं, ऐसा सिद्ध होता है।

उच्चारं पस्सवणं णिसिसुत्तो उट्ठिदो हु काऊण ।
अप्पडिलिहिय सुवंतो जीव वहं कुणदि णियदं तु ।।
ठाणे चंकमणादाणे णिक्खेवे सयण आसण पयत्ते ।
पडिलेहणेण पडिलेहिज्जह लिंगं च होइ संपक्खे ।।

(मूलाराधना गाथा 914, 916)

रात में सोते से उठकर मल-मूत्र, श्लेष्मा (कफ) क्षेपण करके फिर सो गये साधु पिच्छि के बिना जीव हिंसा अवश्य करता है।

कायोत्सर्ग में, गमन में, कमण्डलु आदि के उठाने में, पुस्तक आदि के रखने में, शयन में, झूठन के साफ करने में पिच्छि से ही प्रतिलेखन किया जाता है और ऐसे मुनि संयमी हैं। इस प्रकार संयम के पक्ष का यह पिच्छि चिन्ह है।

5. मयूर स्वयं पंख छोड़ता है -

मत्वेति कार्तिके मासि, कार्य सप्रतिलेखनम् ।
स्वयं पतित पिच्छानां, लिंग चिन्हं च योगिभिः।।

(मूलाचार प्रदीप श्लोक 2526)

पिच्छि मयूर पंख से निर्मित होती है। कार्तिक माह में मयूर (पर) अपने बड़े-बड़े पंख वजनदार होने के कारण अथवा उनके कारण चलने में कठिनाई होती है, खुजली भी होती है तब तक बादलों का होना, गरजना आदि बंद हो जाने के कारण मयूर (नर) अपने विशाल पंख को शनैः-शनैः स्वतः अपनी चोंच से निकालने लगता है। पड़े हुए उन पंखों को वन में रहने वाले दिगम्बर मुनिजन उठा लेते थे और उनसे पिच्छि बना लेते थे।

अथवा वन में विचरण करने वाले भील उन पंखों को एकत्रित कर राजाओं, श्रेष्ठियों को भेंट करते थे अथवा बेच देते थे। जिन्हें ग्रहण कर धार्मिक राजा व श्रेष्ठीजन उनसे पिच्छि बनाकर आचार्य संघों में दीक्षा के समय नवदीक्षित अथवा पूर्व दीक्षित मुनि, आर्यिकाओं को भेंट करते थे और वे अपनी पुरानी जीर्ण-शीर्ण पिच्छि परिवर्तन करते थे। यही कारण है कि आचार्य अमितगति महाराज ने उपकरण दान में पिच्छि दान का भी वर्णन करते हुए उसकी महिमा का भी वर्णन किया है।

6. पिच्छिका दान महिमा -

मयूर वर्हदानेन सुपुत्रश्चिरं जीवितः।
दानात्कमण्डलोः पात्रे निर्मलाङ्ग शुचिव्रतः।।

(अमितगति श्रावकाचार श्लोक)

अर्थात् जो श्रावक, मुनि, आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक, क्षुल्लिकाओं को मयूर पंख की पिच्छि प्रदान करता है वह अपने पुत्रों के साथ चिरकाल तक सुख से जीता है और जीवित रहता है तथा कमण्डल दान करने से निर्मल शरीर के निर्दोष व्रतों को धारण करता है।

7. उपकरण दाता मोक्षमार्गी -

हियमियमण्णं पाणं णिरवज्जोसहिं णिराउलं ठाणं।
सयणासण मुवयरणं जाणिच्चा देदि मोक्ख मग्गरदो ।।

(रयणसार गाथा 24)

(तखत, पाटा, चटाई) उपकरण (पिच्छि, कमण्डल, शास्त्र) को जानकर जो देता है। वह श्रावक मोक्षमार्गी है।

शास्त्रदान भी ज्ञानोपकरण है। उसके दान का फल बतलाते हुए अमितगति श्रावकाचार में कहा है -

8. शास्त्रदान की महिमा -

लभ्यते केवलज्ञानं यतो विश्वाव भासकम् ।
अपरज्ञानलाभेषु कीदृशी तस्य वर्णना ।।

(अमितगति श्रावकाचार श्लोक 11/47)

अर्थात् शास्त्रदान से समस्त विश्व का प्रकाशक केवलज्ञान प्राप्त होता है। ज्ञान दान के लाभ से व्यक्ति तीनों लोकों में उत्तम व पूज्य होता हुआ क्रमशः मोक्ष को प्राप्त करता है।

9. किन्हें पिच्छि आवश्यक नहीं होती हैं -

उपेक्षा (परिहार विशुद्धि) संयमीजनों को पिच्छि की कोई आवश्यकता नहीं होती क्योंकि उनसे जीव की विराधना नहीं होती है। यथा-

उपेक्षासंयमिनां न पुस्तककमण्डलुप्रभृतयः, अतस्ते

परमजिनमुनयः एकान्ततो निस्पृहाः, अत एव बाह्योपकरण निर्मुक्ताः।

(नियमसार तात्पर्य वृत्ति गाथा 64)

उपेक्षा संयमधारी के पुस्तक, कमण्डल आदि नहीं होते हैं । वे परम जिन मुनि नियम से (पिच्छि आदि से) निस्पृह होते हैं (क्योंकि उनसे सूक्ष्म या बादर जीवों की हिंसा नहीं होती है) अतः वे बाह्य उपकरण से रहित होते हैं किन्तु शेष सभी मुनि, आर्यिकाएँ पिच्छिधारी होते हैं।

10. उपकरण का स्वरूप -

अप्पडि कुट्टं उवधिं अपत्थ णिज्जं असंजद जणेहिं ।

मुच्छादि जणणरहिदं गेण्हदु समणो जदि वि अप्पं ।।

(प्रवचनसार गाथा 223)

उपकरण- निश्चय व्यवहार मोक्षमार्ग सहकारि कारणत्वेना-प्रतिषिद्ध मुपधि मुपकरणरूपोपधिं अप्रार्थनीयं निर्विकारात्मोपलब्धिलक्षण भावसंयम -रहितस्या संयतजनस्यान-भिलषणीयम् ।।

(प्रवचनसार/तात्पर्य वृत्ति. 223)

अर्थात् निश्चय व्यवहार मोक्षमार्ग के सहकारी कारण रूप से अप्रतिषिद्ध (जो निषिद्ध नहीं है जैसे पिच्छि कमण्डल आदि) उपकरण रूप उपाधि है वह भाव संयम रहित असंयत जनों द्वारा प्रार्थना या अभिलाषा की जाने योग्य नहीं होना चाहिए।

11. साधक एक ही पिच्छि कमण्डल रखें -

उपधिमति पिच्छान्तरं कमण्डल्वान्तरं वा

तदानी संयम सिद्धौ न करणमिति संयम साधनं न भवति ।

अर्थात् वे इस उपधि में एक ही पिच्छि और एक ही कमण्डल रखते हैं क्योंकि उसमें ही उसकी संयम, साधना होती है। दूसरी पिच्छि या दूसरा कमण्डल उनकी संयम, साधना में कारण नहीं।

12. परिग्रह निषेध -

जे जिण लिंगु धरेवि मुणि इट्ठ परिग्गह लेंति ।
छद्दि करे विणु ते जि जिय सा पुणु छद्दि गिलंति।।

(परमात्म प्रकाश 2/91)

अर्थात् जो मुनि जिन लिंग धारण करके भी इच्छित परिग्रह धारण करते हैं वे जीव वमन कर उसे पुनः ग्रहण करते हैं, निगलते हैं, खाते हैं ।

13. निष्पिच्छ माथुर संघ

तत्तो दुसएतीदे म राए माहुराण गुरुणाहो।
णामेण रामसेणो णिप्पिच्छं वण्णियं तेण ।।

सम्मत्त पयडि मिच्छित्तं कहियं जं जिणिंद बिंबेसु।
अप्पपर णिट्ठिएसु य ममत्व बुद्धि ए परिवसणं ।।

एसो मम होउ गुरु अवरो णत्थित्ति चित्त परियरणं ।
सग्गुरु कुलाहि माणो इयरेसु वि भंगकरणं च।।

(दर्शन सार श्लोक 40-42)

इस (काष्ठा संघ) के 200 वर्ष पश्चात् अर्थात् वि.स. 953 में मथुरा नगरी में माथुर संघ का प्रथम गुरु रामसेन हुआ। उसने निष्पिच्छिक रहने का उपदेश दिया। उसने पिच्छि का सर्वथा निषेध कर दिया। उसने अपने और पराये प्रतिष्ठित किये हुए जिनबिम्बों की ममत्व बुद्धि द्वारा न्यूनाधिक भाव से पूजा-वंदना करने का अर्थात् अपने द्वारा प्रतिष्ठित जिनबिम्ब पूज्य हैं, अन्य के द्वारा प्रतिष्ठित जिनबिम्ब पूज्य नहीं है। मेरे यही गुरु हैं, दूसरे नहीं। इस प्रकार के भाव रखने का उपदेश दिया। अपने गुरुकुल (संघ) का अभिमान करने और दूसरे गुरुकुलों का अपमान/मान भंग करने रूप मिथ्यात्व का उपदेश दिया।

अत: चाहे कोई मुनि हो या आर्यिका किन्तु उन्हें किसी भी समय निष्पिच्छि नही रहना चाहिए।

निष्पिच्छि परम्परा दिगम्बर परम्परा नहीं है। यथा-

14. नि:पिच्छि परम्परा जैनाभास है -

जो सवणो गहु पिच्छं, गिण्हदि णिंदेदि मूढ चारित्तो ।
सो सवण संघ वज्झो, अवंद णिज्जो सदा होदि।।

(क्रियासार-आचार्य भद्रबाहु गाथा 79)

जो श्रमण-साधु पिच्छि को ग्रहण नहीं करता है अपितु निन्दा करता है, वह मूढ़ चारित्र श्रमण संघ से बाह्य है तथा सदा अवंदनीय- वंदना-प्रतिवंदना के अयोग्य है।

णिप्पिच्छे णत्थि णिव्वाणं (मूला. 10/9/7 टिप्पण)

निष्पिच्छ साधु को निर्वाण (मोक्ष) नहीं होता है।

15. जैनाभास निष्पिच्छ संघ -

गोपुच्छकः श्वेतभासा, द्राविडो यापनीयकः।
निष्पिच्छश्चेति पंचैते, जैनाभासः प्रकीर्तिता ।।10।।

(नीतिसार श्लोक 10)

अर्थात गाय के बछड़े की पूँछ के बाल की पिच्छि धारण करने वाले श्वेताम्बर, द्रविड़, यापनीय, पिच्छि रहित-पिच्छि को स्वीकार न करने वाले इस प्रकार इन्द्रनंदि आचार्य ने पाँच प्रकार के जैनाभास- जैनधर्म के अपराधी माना है। इसी से आचार्य प्रवर भद्रबाहु ने ऐसे यतियों के लिए अवन्दनीय वन्दना के अयोग्य स्वीकार किया।

16. बिना पिच्छि के गमन करने का प्रायश्चित -

सप्तपादेषु निःपिच्छिः, कायोत्सर्गेण शुद्धयति ।
गव्यूतिगमने शुद्धि, मुपवासं समश्नुते ।।

(चारित्र सार श्लोक 40)

बिना पिच्छि सात पाद गमन करने का प्रायश्चित एक कायोत्सर्ग है, इससे अधिक गव्यूति (दो कोश) प्रमाण गमन करने पर एक उपवास का प्रायश्चित कहा गया है।

* * *

3

पात्र भक्ति

उत्तम पात्र विषयक भक्ति आदि के विषय में किसी भी प्रकार का विचार भेद नहीं है अतः इनके विषय में विशेष रूप से कुछ नहीं कहना चाहूँगा यदि विचार यह है तो आर्यिका तथा ऐलक क्षुल्लक के विषय में अतः इसी विषय की प्रधानता से वर्णन किया है।

इच्छाकार करने के योग्य ऐलक-क्षुल्लक आदि :-

सूत्र पाहुड (गा. 13) में कहा है कि -

अवसेसा जे लिंगी दंसण णाणेण सम्म संजुत्ता।
चेलेण य परिगहिया ते भणिया इच्छणिज्जाय ।।

अर्थात अवशेष जो लिंगी हैं, सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान से सहित हैं तथा वस्त्र के धारी हैं, ऐसे ऐलक क्षुल्लक-क्षुल्लिका इच्छाकार करने योग्य हैं ।

प्रश्न - अवशेष लिंगी से ऐलक, क्षुल्लक-क्षुल्लिका ही इच्छाकार करने योग्य हैं, ऐसा आप कैसे कहते हैं?

समाधान - आप इस गाथा की टीका देखें। वहाँ लिखा है कि-

टीका - अवशेषा ये लिङ्गिनः क्षुल्लकगुरवः। दर्शनज्ञानेन सम्यक् संयुक्ताः। वस्त्रैकधराः सकौपीनश्च, वस्त्रमपि सीवित न भवति, किं तर्हि ? खण्डवस्त्रं धरन्ति ते वस्त्र परिगृहीताः। ते भणिता इच्छाकारयोग्या नमस्कारयोग्याः।

(सूत्र पाहुड टीका गाथा 13)

अर्थात - अवशेष लिंगी क्षुल्लक गुरु हैं। दर्शन-ज्ञान से जो अच्छी तरह संयुक्त हैं। एक वस्त्रधारी (ऐलक) हैं तथा लंगोटी सहित दो वस्त्रधारी हैं वे क्षुल्लक हैं। वस्त्र भी (उनका) सिला हुआ नहीं होता है तो कैसा होता है- खण्ड (बिना सिला) वस्त्र को धारण करते हैं। वे इच्छाकार के योग्य हैं, नमस्कार करने के योग्य हैं।

ऐलक-क्षुल्लक को इच्छाकार/इच्छामि :-

प्रश्न - अवशेष लिंगी ऐलक, क्षुल्लक, क्षुल्लिका होती है ऐसा टीकाकार भले ही कहते हों, पर आचार्य कुन्दकुन्द ने नहीं कहा ?

समाधान - आप गलत बोल रहे हो। कुन्दकुन्द साहित्य को पहले अच्छी तरह से पढ़ो, फिर कुछ कहो।

सूत्रपाहुड की गाथा 14 में कहा है कि-

> इच्छायार महत्थं सुत्तठिओ जो हु छंडए कम्मं ।
> ठाणेट्ठि यसम्मत्तं परलोय सुहंकरो होई।।

अर्थात् - जो इच्छाकार के महान अर्थ को जानता है, सूत्र आगम में स्थित होता हुआ, आगम को जानता हुआ गृहस्थ के आरम्भ के कार्यों को छोड़ता है और श्रावक के ग्यारहवें स्थान में सम्यक्त्वपूर्वक स्थित है, वह परलोक में सुख को प्राप्त करने वाला होता है।

प्रश्न - इच्छाकार शब्द का क्या अर्थ है ?

समाधान - निजात्मन् यो इच्छति सो इच्छाकार इच्छामि।

अर्थात् जो अपनी आत्मा को जानने की इच्छा करता है यह इच्छाकार या इच्छामि का अर्थ हुआ यानि जिस प्रकार आप अपनी शुद्धात्मा प्राप्ति की इच्छा रखते हैं वैसी मेरी भी इच्छा है कि मुझे भी अपनी शुद्धात्मा की प्राप्ति हो। जो इस अर्थ को नहीं जानता है वह समस्त धर्मकार्यों को करता हुआ भी मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता।

सूत्रपाहुड की गाथा 15 में कहा है कि-

> अह पुण अप्पा णिच्छदि धम्माइं करेदि णिरवसेसाइं ।
> तहवि ण पावदि सिद्धिं संसारत्थो पुणो भणिदो ।।

अर्थात् जो आत्मा की इच्छा नहीं करता, आत्मा की प्राप्ति की इच्छा नहीं करता, वह समस्त धर्म कार्यों को करता है तो भी उसकी मुक्ति नहीं होती है।

तात्पर्य यह है, कि इच्छाकार शब्द के अर्थ को जानने वाला तथा तदनुरूप भावना भाने वाले ऐलक-क्षुल्लक-क्षुल्लिका ही इच्छाकार या इच्छामि करने के योग्य होते हैं।

सूत्रपाहुड गाथा 14 की टीका में कहा है कि-

इच्छा शब्देन नमः उच्यते। कारशब्दस्तु अधःस्थः क्रियते तेन नमस्कार इति भवति। क्षुल्लकानां वन्दनम्। सुत्तट्ठिओ..... स्वर्ग सौख्यं साधयति-षोडशसुस्वर्गेष्वन्यतमस्वर्गे उत्पद्यते ततश्च्युत्वा निर्ग्रन्थो भूत्वा मोक्षं गच्छति।

अर्थात् 'इच्छा' शब्द से नमः ऐसा कहा जाता है तथा 'कार' शब्द से नीचे झुकना किया जाता है। इससे इच्छाकार का अर्थ नमस्कार होता है। क्षुल्लकों की वंदना होता है। जो इच्छाकार के उपरोक्त सभी अर्थों को जानते हैं वे ही स्वर्ग सुख को प्राप्त करते हैं। (तथा समाधि मरणकर) सोलह स्वर्गों में से किसी एक स्वर्ग को प्राप्त कर (तथा अपनी आयु पूर्ण कर) वहाँ से च्युत होकर और निर्ग्रन्थ होकर मोक्ष प्राप्त करते हैं।

इच्छाकारोऽभ्युपगमो हर्ष स्वेच्छया प्रवर्तनं

(मूलाचार/आचारवृत्ति टीका I. गा. 126)

स्वीकार करना इनमें हर्षभाव होना, इनमें स्वेच्छा से प्रवृत्ति करना ही इच्छाकार है।

इच्छाकार से स्वेच्छा/सहज हर्ष की प्रवृत्ति है।

इच्छाकारो वन्दना प्रणाम करोति

(मूलाचार आचार वृत्ति टीका गाथा 601)

इच्छाकार, वंदना और प्रणाम करना चाहिए, ये तीनों पर्यायवाची हैं।

इस प्रकार ऐलक, क्षुल्लक आदि अवस्था में भी एकदेश मोक्षमार्ग है और परम्परा से मोक्ष का कारण है।

1. सत्पात्र के भेद -

पुरुषार्थ सिद्धयुपाय में कहा है कि-

पात्रं त्रिभेदमुक्तं संयोगो मोक्ष कारण गुणानां ।
अविरत सम्यग्दृष्टि विरता विरतश्च सकल विरतश्च ।।

(पुरुषार्थ सिद्ध्युयाय श्लोक 171)

अर्थात् मोक्षमार्ग में कारणभूत गुण सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र हैं तो इनके संयोग से पात्र के तीन भेद हो जाते हैं।

उत्तम पात्र – सकल विरत - मुनि

मध्यम पात्र – आर्यिका, देशव्रती ऐलक, क्षुल्लक एवं व्रती

प्रश्न– तो क्या क्षुल्लक भी सत्पात्र हैं ?

उत्तर– हाँ ऐलक, क्षुल्लक, क्षुल्लिका भी सत्पात्र हैं।

जघन्य पात्र – अविरत सम्यग्दृष्टि - अव्रती श्रावक

2. सत्पात्रों की नवधा भक्ति के प्रमाण :-

प्रश्न – उक्त पात्रों की नवधा भक्ति का प्रमाण क्या किसी ग्रंथ में आया है ?

उत्तर - हाँ !

देखें प्रथम शताब्दी के आचार्य श्री कार्तिकियस्वामी कार्तिकियानुप्रेक्षा ग्रंथ के धर्मानुप्रेक्षा अधिकार में कहते हैं-

तिविहे पत्तम्हि सया सद्धाइ-गुणेहिं संजुदो णाणी।
दाणं जो देदि सयं णव-दाण-विहीहि संजुत्तो ।।360।।

सिक्खाववयं च तदियं तस्स हवे सव्व-सोक्खसिद्धियरं।
दाणं चउव्विहं पि य सव्वे दाणाण सारयरं । 369।।

अर्थात् श्रद्धा आदि गुणों से युक्त जो ज्ञानी श्रावक सदा तीन प्रकार के पात्रों को दान की नौ विधियों के साथ स्वयं दान देता है, उसके तीसरा शिक्षाव्रत होता है। यह चार प्रकार का दान सब दानों में श्रेष्ठ है और सब सुखों का तथा सिद्धियों का करने वाला है।

ऐसा ही ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी के आचार्य श्री वसुनन्दि स्वामी ने भी वसुनंदि श्रावकाचार में कहा है-

असणं पाणं खाइयं साइयमितिद चउविहो वराहारो ।
पुव्वुत्त-णव-विहाणेहिं तिविह-पत्तस्स दायव्वो ।।1234।।

अर्थात् अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य ये चार प्रकार का श्रेष्ठ आहार पूर्वोक्त **नवधा भक्ति से तीन प्रकार के पात्रों** को देना चाहिए।

आचार्य शुभचंद्र स्वामी टीका में कहते हैं-

त्रिविधे पात्रे त्रिविधेषु पात्रेषु महाव्रत-सम्यक्त्व-विराजित-मुत्तमं पात्रम्, श्रावकव्रत-सम्यक्त्व-पवित्रं मध्यम-पात्रम्, सम्यक्त्वैकेन निर्मलीकृतं जघन्य पात्रम्, इति त्रिविध-पात्रेभ्यः दानं ददाति ।

अर्थात् उत्तम-मध्यम-जघन्य तीन प्रकार के पात्रों में जो महाव्रत और सम्यक्त्व से सुशोभित हो वह उत्तमपात्र है। जो देशव्रत और सम्यक्त्व से सुशोभित हो वह मध्यम पात्र है और जो केवल सम्यग्दृष्टि हो वह जघन्य पात्र है। पात्र बुद्धि से दान देने के योग्य ये तीन ही प्रकार के पात्र होते हैं।

आचार्य शुभचंद्र स्वामी इस गाथा की टीका के अंत में कहते हैं-

इतिम सप्तदातृगुणै-र्नवविध-पुण्योपार्जन-विधिभिश्च कृत्वा त्रिविध-पात्रेभ्यः अशन-पान खाद्य-स्वाद्यं चतुर्विधं दानं दातव्य-मित्यर्थः ।

इस तरह दाता को सात गुणों के साथ पुण्य का उपार्जन करने वाली नौ विधिपूर्वक चार प्रकार का दान तीन प्रकार के पात्रों को देना चाहिए ऐसा अर्थ है।

दानशासन ग्रंथ के पृष्ठ 99 में कहा है कि-

नवोपचार विधिनां पात्रदानं विधीयते।
जघन्य मध्यमोत्कृष्ट पात्र त्रिविध मिष्यते ।।

(दानशासन ग्रंथ के पृष्ठ 99)

अर्थात् जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट पात्र कहे गये हैं, उन्हें नवधा भक्तिपूर्वक दान देना चाहिये।

सर्वेषामेव पात्राणां, जिनाचरण संभ्रता ।
नवोपचार विधिना दाने देयं यथाक्रमम् ।।

(सुधर्म श्रावकाचार)

श्री जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा का पालन करने वाले तीनों प्रकार के पात्रों को यथायोग्य दान नवधा भक्ति से देना चाहिये।

3. नवधा भक्ति का उल्लंघन करने से हानि :-

प्रश्न – यदि नवधा भक्ति का उल्लंघन किया जाए तो क्या हानि है?

उत्तर – श्रमण संघ संहिता में कहा है-

नवधा विधिना दानं देयं त्रिविध पात्राय ।
विधि मुत्क्रम्यते देयेऽत्र बहुपुण्य हानिस्यात् ।।

(श्रमण संघ संहिता-पृष्ठ 240)

अर्थात तीनों पात्रों को नवधा विधि (भक्ति) से दान दिया जाता है जो इस विधि का उल्लंघन करता है उसके बहुत पुण्य की हानि होती है।

4. क्षुल्लकों के पाद प्रक्षालन व अर्घ के आगम प्रमाण

ऐलक-क्षुल्लक भी मध्यम सत्पात्र हैं। उनके प्रति भी नवधा भक्ति की जाती है। आचार्य कल्प श्री विवेकसागर जी (आचार्यश्री ज्ञानसागर जी के शिष्य तथा आचार्यश्री विद्यासागर जी के गुरुभाई, श्रमणी आर्यिका विज्ञानमति माताजी के गुरु) के सदुपदेश से पाँचवे चातुर्मास के अवसर पर प्रकाशित श्री चामुण्डाराय विरचित चारित्रसार धर्मप्रकाश की हिन्दी टीका पृ. 95 में क्षुल्लक के पाद प्रक्षालन करना चाहिये ऐसा लिखा है। यथा -

1. क्षुल्लक भोजन के समय उनास रूप संतोष के साथ निकले तब यह प्रतिज्ञा करें कि मैं किस-किस मोहल्ले में आहारार्थ घूमूँगा व कई घर से थोड़ा-थोड़ा भोजन लेकर जीमूँगा या एक ही घर में जो मिलेगा सो ले लूँगा। ऐसा विचार कर श्रावक के घर के द्वार-आँगन तक जावे, जहाँ तक सब जा सकते हैं।

यदि देखते ही श्रावक उन्हें पड़गाह ले और आहार-पानी शुद्ध है ऐसा कहे तो श्रावक के साथ घर के भीतर चला जावे। यदि श्रावक पड़गाहने में सन्मुख न हो तो कायोत्सर्ग करके 'धर्मलाभ' कहे। यदि इतने में पड़गाह ले तो घर में चला जावे। नहीं तो लौटकर दूसरे चौके में इसी भाँति करें। यदि पड़गाह ले और पग धुलाये, चौके में भक्ति सहित ले जाये और बैठाये तो संतोष सहित आहार कर ले।

(चारित्रसार चारित्र धर्मप्रकाश श्लो. 77,78)

जिनधर्मो की नवधा भक्ति ही ते परीक्षण होय है
जाके नवधा भक्ति नाहीं ताके हृदय में धर्म हूँ नाहीं
धर्म रहित के मुनिश्वर भोजन हूँ नाहीं करें हैं
अन्य हूँ धर्मात्मा पात्र गृहस्थादिक है, ते हूँ
आदर बिना लोभी होय धर्म का निरादर
कराय दान वृत्ति ते भोजनादिक कदाचित् नाहीं ग्रहण करे हैं ।।

(रत्नकरण्ड श्रावकाचार वचनिका पं. सदासुखदास वृत्ति पृ. 115)

यद्दानं नवधा भक्ति पूर्वक दीयते तदैव ग्राह्यं भवति क्षुल्लकस्य नान्यथा।

(श्रावक धर्म प्रदीप श्लो. 227 टीका)

जो दान नवधा भक्ति पूर्वक दिया जाता है, वह ही क्षुल्लक जी को ग्राह्य होता है। नवधा भक्ति के बिना नहीं।

धर्मप्रकाश टीका टीकाकार पं. जगन्मोहन लाल शास्त्री कृत

प्रश्न– ऐलक, क्षुल्लक आदि मध्यम पात्र के पाद-प्रक्षालन का क्या कहीं आगम में वर्णन है ?

उत्तर – हाँ, देखें प्रद्युम्न चरित्र

1. श्रीकृष्ण ने नारद के पाद प्रक्षालन किये और अर्घ चढ़ाया।

(प्रद्युम्न चरित्र-सर्ग 3 श्लोक 10-12)

2. कुण्डलपुर के राजा भीष्म ने तथा रानी श्रीमती ने नारद के पाद प्रक्षालन किये।

(प्रद्युम्न चरित्र-सर्ग 3 श्लोक 81-87)

3. प्रद्युम्न चरित्र में और भी कहा है कि-

विदेह क्षेत्र में चक्रवर्ती पद्मनाभि ने नारद को हथेली में ले भगवान सीमन्धर स्वामी से पूछा कि ये मनुष्य जैसा कीड़ा कौन है ?

उत्तर में भगवान ने कहा कि ये जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्रस्थ देशव्रत के धारी मोक्षमार्गी नारद हैं।

विजयार्द्ध के मेघकूट नरेश काल संवर ने भक्तिपूर्वक नारद के पाद प्रक्षालन कर अर्घ चढ़ाया।

(प्रद्युम्न चरित्र-सर्ग 8 श्लोक 396-405)

अर्घ का अर्थ पूजायोग्य द्रव्य :-

प्रश्न – अर्घ से सम्मान में अर्थ लेना चाहिये न कि पूजा संबंधी सामग्री।

उत्तर – अर्घ पूजायोग्यं द्रव्यं अर्थात् पूजा योग्यद्रव्य को अर्घ कहते हैं।

प्रश्न – क्या क्षुलकों की अर्घ से पूजा शब्द का कोई भी प्रमाण है ?

उत्तर – हाँ ! चढ़ाया जा सकता है देखो चंद्रप्रभ चरित सर्ग 6 श्लोक 77-78 में कहा है कि-

अथ स प्रियधर्म नाम थेयं परमाणुव्रत पालन प्रसक्तम्।
यति चिन्ह घरं सभान्तरस्थः सहसा क्षुल्लक मागतं ददर्श ।।
प्रतिपत्तिभिरर्घपूर्विकाभिः स्वयमुत्थायतमग्रहीत्खागेन्द्रः ।
मतयो न खलू चित्तज्ञतायां मृगयन्ते महतां परोपदेशम ।।

(चंद्रप्रभ चरित्र-सर्ग 6 श्लोक 77-78)

दक्षिण विजयार्ध्द के आदित्य विशालानगर का राजा धरणीध्वज था। किसी एक दिन वहाँ उसने सभा में आते हुए क्षुलक ग्यारह प्रतिमाधारी उत्कृष्ट श्रावक के व्रतों के धारी के दर्शन किये। उनका नाम क्षुलकश्री प्रियधर्म था। उन्हें देखते ही धरणीध्वज राजा सिंहासन से उठकर खड़ा हो गया और फिर उसने क्षुल्लकजी का अर्घ्य आदि पूजा सामग्री लेकर स्वयं सत्कार किया। यथा-

अर्थात् यति चिन्ह को धारण करने वाले परम अणुव्रत के पालन करने वाले प्रियधर्म नामक क्षुलक के धरणीध्वज विद्याधर राजा ने अर्घ देकर उनकी पूजा की।

क्षु. सिद्धार्थ- त्रिसंध्याओं में मेरू की जिनेन्द्र प्रतिमाओं की वंदना करते थे तथा केशलुंच करते थे। अणुव्रती थे, सफेद वस्त्र धारी थे। पिच्छि बगल में धारण किये थे। घर-घर भिक्षा लेते थे। (पद्मपुराण, पर्व 100. श्लोक 34-38)

सीता ने सिद्धार्थ क्षुल्लक को हाथ जोड़कर इच्छाकार आदि के द्धारा पूजा की।

देव्या तयोश्चनया तथैव, चित्रीयमाणा सह-पौरवर्गेः।
अवेत्य तो स्वस्य च भागिने यौ स मारिदत्तो नृपतिर्जहर्ष ।।

(यशोधर चरित्र श्लोक 67)

उसी चण्डमारी देवी के द्धारा उन अभयरुचि क्षुलक तथा अभयमति क्षुल्लिका की पूजा देखकर जो नगरवासियों के साथ आश्चर्य कर रहा था। ऐसा वह मारिदत्त राजा उन दोनों को अपना भानेज जानकर हर्षित हुआ।

गोचराय तदालय प्रविष्टस्तया स्वयमेव यथाविधि प्रतिपन्न चेष्ट

(यशस्तिलक चम्पू आश्वास टीका 7/185)

(क्षुल्लकजी) आहार के लिए रेवती रानी के गृह पर आये। रानी ने स्वयं ही प्रतिग्रह आदि नवविधि के अनुसार उनका सम्मान किया।

नारायण श्रीकृष्ण ने क्षुलक व्रत के धारी नारद के पाद प्रक्षालन कर अर्घ चढ़ाया।

(प्रद्युम्न चरित्र आ. भीमसेन के शिष्य सोमकीर्ति कृत 1531 संवत्)

कुण्डलपुर के राजा भीष्म तथा रानी श्रीमती ने नारद के पाद प्रक्षालन किये।

भगवान सीमन्धर ने कहा- नारद देशव्रती तथा मोक्षमार्गी हैं।

विजयार्द्ध के मेघकूट नगर के राजा कालसंवर ने नारद को अर्घ चढ़ाया व पाद प्रक्षालन किये।

(प्रद्युम्न चरित्र सर्ग-8, श्लोक 403, पृ. 157)

महाराजा कालसंवर की पट्टरानी कनकमाला ने नारद को अर्घ चढ़ाया और पाद प्रक्षालन किये ।

(प्रद्युम्न चरित्र सर्ग-4, श्लोक 400-402, पृ. 157)

क्षु, गणेशप्रसादजी ने भी क्षुल्लकों का पाद प्रक्षालन स्वीकार किया है।

(मेरी जीवन गाथा, भाग 2, पृ. 167)

क्षुल्लकों के भी पूजा शब्द का प्रयोग आगम में है। यथा-

दर्शनेऽवस्थितौ वीरौ प्रापताभ्याम् च पूजितः।
आसनादि प्रदानेन गृहस्थ मुनिवेष भृत् ॥

(पद्मपुराण पर्व 102, श्लोक 3)

पौण्डरीकपुर में रामपुत्र अनंगलवण और मदनांकुश ने क्षुल्लक वेश धारण करने वाले नारद को उच्चासनादि दे पूजा की।

प्राचीन ग्रन्थों में क्षुल्लकों की नवधा भक्ति के प्रमाण

और भी देखें पद्मपुराण में कहा है कि

चक्रवर्ती यथार्थस्यो दमितारि..... द्राक्षी नारद मुनि..... प्रणम्या यातमर्चित्वा....

(पद्मपुराण पर्व 105 श्लोक 66)

अर्थात् दमितारी चक्रवर्ती ने नारद मुनि की पूजा की।

और भी कहा है कि-

महारानी कनकमाला ने नारद के पाद प्रक्षालन कर अर्घ चढ़ाया।

(प्रद्युम्न चरित्र सर्ग 8 पृ. 157)

चक्रवर्ती यथार्थस्यो दमितारिः सदः स्थितः।
नभसाऽवरन्तं दाग द्राक्षीन्नारदं मुनिम् ।।
स नाभ्येति भुवं यावत् तावदुत्थाय विष्टरात् ।
प्रणम्यातमर्चित्वा क्रमात्पीठेन्यवी विशत् ।।

(शांतिनाथ पुराण, सर्ग-1, श्लोक 91-92)

अपराजित राजा की सभा में एक विद्याधर ने कहा कि हे राजन् ! एक बार दमितारी चक्रवर्ती ने नारद मुनि की पूजा की थी।

अर्धप्रदेयमिति वर्तमान समये केषांचिदाचार्याणां पद्धति वर्तने। परम श्रद्धया संतुष्टे भक्तिवता ज्ञानवता च श्रावकेण धैर्य मालाम्ब्य उदार चित्तेन स्व शक्त्यानुसार यद्दानं नवधा भक्तिपूर्वकं दीयते तदैव ग्राह्यं भवति क्षुल्लकस्य नान्यथा ।

(श्रावक धर्म प्रदीप श्लोक 277 धर्मप्रकाश टीका.
पं. जगनमोहनलालजी)

अर्थात् अर्घ देना चाहिए ऐसी भी कुछ आचार्यों की पद्धति है परम श्रद्धा से संतुष्ट होकर भक्तिवान और ज्ञानवान श्रावक के द्धारा धैर्य का आलम्बन लेकर उदार चित्त से अपनी शक्ति के अनुसार जो दान नवधा भक्ति पूर्वक दिया जाता है वही क्षुल्लक को ग्राह्य होता है, अन्य को नहीं।

आप क्षुल्लक जी नाम के आगे पूज्य लिखते हैं। व्याकरण से पूज्य शब्द की इस प्रकार सिद्धि होगी। पूजा धातु पूजा, अर्चना, सम्मान के अर्थ में आती है।

अतः पूज् धातु में व्यय प्रत्यय करने पर पूज्य शब्द बनता है, जिसका सीधा अर्थ हुआ पूजा के योग्य हैं।

प्रश्न – क्या क्षुलक को भी मुनि कहा जा सकता है ?

उत्तर – उपरोक्त प्रमाणों से स्पष्ट है कि क्षुल्लक व्रत के धारी नारद के लिये मुनि व गृहस्थ मुनि कहा गया है।

प्रश्न – क्षुल्लक जी आदि को अर्घ चढ़ाना तो मिथ्यात्व है क्योंकि वे वस्त्रधारी हैं ?

उत्तर – ऐसा किसी शास्त्र प्रमाण से आप कह रहे हो या केवल अपने मन से, यदि शास्त्र प्रमाण हो तो दें ?

आचार्य ज्ञानसागर जी (आ. विद्यासागर जी के गुरु) आचार्य शिवसागर जी महाराज के संघस्थ थे। जब क्षुल्लक थे तब आपकी भी नवधा भक्ति होती थी।

पू. आचार्य ज्ञानसागर जी के संघ में क्षुल्लकश्री शीतलसागर जी (आ. महावीरकीर्ति जी के शिष्य) रहते थे। तब भी उनके (क्षुल्लक जी के) पाद प्रक्षालन होते थे तथा अर्घ चढ़ाया जाता था।

पू. आचार्यश्री ज्ञानसागर जी के शिष्यों में क्षुल्लकश्री स्वरूपानंद जी थे।

जब 1990 में प.पू. आचार्यश्री विरागसागर जी, प.पू. आचार्यश्री विद्यासागर जी से मिले थे, पथरिया के गजरथ पंचकल्याणक में तब आपके साथ क्षुल्लक स्याद्वादसागर जी, क्षुल्लक कुन्दकुन्दसागर जी, क्षुल्लक यशोधरसागर जी भी साथ में थे। उनके भी पाद प्रक्षालन तथा अर्घ चढ़ाये जाते थे।

परन्तु कभी भी प.पू. आचार्यश्री विद्यासागर जी ने किसी को भी मना नहीं किया कि उनके पाद प्रक्षालन नहीं करना चाहिये या अर्घ नहीं चढ़ाना चाहिये तो फिर उनके भक्त-शिष्यों में ये आग्रह क्यों आ रहा है ? क्यों वे समाज व संघों में फूट डाल रहे हैं ? क्या वे गुरु से भी बढ़कर हैं? उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिये।

जिस प्रकार आपको अपने संघ में प्रचलित पद्धति का गौरव है वैसे ही दूसरे संघों में प्रचलित पद्धति का उस संघ वालों को भी गौरव है। उनको भी ध्यान रखना चाहिये। समाज सदा से सभी संघों का यथायोग्य सम्मान करती आ रही है क्योंकि उनके यहाँ तो सभी संघ आते हैं। अतः उन्हें संघों में विभाजित नहीं करना चाहिये और न ही उन्हें ऐसा कहें कि आगम में कहीं भी प्रमाण नहीं है, दिग्भ्रमित नहीं करना चाहिये। समाज प्रायः भोली-भाली होती है। उसे नहीं मालूम कि आगम क्या है ? वह तो आज्ञा सम्यक्त्व में प्रधानता रखती है कि गुरु ने जैसा कह दिया, मान लेता है। उससे आगम प्रमाण माँगना उचित नहीं, उसे इतना ज्ञान नहीं है। हाँ, यदि प्रमाण चाहिये ही है तो उनसे लेना चाहिये जिनके संघ में उक्त मूलसंघ की परम्परा प्रचलित है। वे यदि आपसे प्रमाण माँगे कि ऐसा नहीं करना चाहिये, इसका भी आप प्रमाण दें तो उसे ज्यों का त्यों

आगम प्रमाण देना चाहिये और यदि दोनों के आगम प्रमाण मिल जायें तो फिर समाज को दोनों प्रमाण देखना चाहिये और उसी पद्धति से चलते हुए सभी के सम्मान की बात करनी चाहिये और यदि नहीं मिले तो फिर जिनके गुरु की जो आज्ञा है वे सभी समर्पित आज्ञा व अनुशासन के पालने वाले अपने-अपने गुरु की आज्ञा का पालन करेंगे ही। अतः उनकी इस पद्धति में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये और न ही उन्हें दिग्भ्रमित कर गुरु आज्ञा अनुशासन से विचलित करने का अनुचित प्रयास करना चाहिए। समाज में साधुसंघों में भी संघों की पद्धति को लेकर अनुचित चर्या कर वाद-विवाद कर झगड़े उत्पन्न नहीं करने चाहिये। जिस संघ की जो पद्धतियाँ हैं सभी को यथोचित् उसका सम्मान रखते हुए पारस्परिक सौहार्द्रता, हृदय की विशालता तथा वात्सल्यपूर्ण सामाजिक एकता का परिचय देना चाहिये।

5. एक-एक व्रत के धारी सम्यग्दृष्टिभी पूज्य हैं-

1. सीताजी इन्द्रों द्वारा पूज्य हुई -

श्री जानकी रामनृपस्य देवी, दग्धा न संधुक्षितवन्हिना च ।
देवेश पूज्या भवतिस्म शीलाच्छीलं ततोऽहं खलु पालयामि

(पुण्यास्रव कथाकोष 4-4,26 पृष्ठ-144)

महाराजा राम की पत्नी तथा जनक की पुत्री सीता शील के प्रभाव से भड़की हुई अग्नि में न जलकर इन्द्रों के द्वारा पूज्य हुई। इसलिये मैं उस शील का पालन करता हूँ।

(एवं स्त्री बाला मोहावृतापि शीलेन देवपूज्या जातन्यः किं न स्यादिति ।)

(पुण्यास्रव कथाकोष 4-4,26 पृष्ठ-152)

इस प्रकार चारित्र मोह से युक्त (अविरत सम्यग्दृष्टि) बाला, स्त्री सीता भी जब शील के प्रभाव से पूज्य हुई तब भला अन्य पुरुष क्या पूज्य नहीं होगा अर्थात् होगा ही होगा।

2. महारानी प्रभावती भी शील के प्रभाव से देव पूज्य हुई-

नारीषु रम्या त्रिदशस्य पूज्या, राज्ञी प्रभावत्यभिधा बभूव ।
त्रिलोक्य पूज्यामल शीलतो यत्, शीलं ततोऽहं खलु पालयामि ।।

(पुण्यास्रव कथाकोष 4-5,30 पृष्ठ-153)

स्त्रियों में रमणीय प्रभावती रानी शील के प्रभाव से देवों द्वारा पूजा को प्राप्त होकर तीनों लोकों में पूज्य हुई। इसलिये मैं उस शील का परिपालन करता हूँ।

तां पूज्यामास शीलवतीति घोषयित्वा स्वर्गलोक मियाय।

(पुण्यास्रव कथाकोष पृष्ठ-154)

स्वर्ग का देव उसकी (प्रभावती की) पूजा कर तथा यह शीलवती है ऐसी घोषणा कर स्वर्ग चला गया।

एवं सर्वावस्थापि स्त्री शीलेनोभय भव पूज्या-
बभूवान्यो भव्यः किं न स्यात् पूज्य इति।

(पुण्यास्रव कथाकोष पृष्ठ-155)

इस प्रकार सर्व अवस्था वाली भी प्रभावती जब शील के प्रभाव से दोनों लोकों में पूज्य हुई तब दूसरा भव्य जीव क्यों न पूज्य होगा? अर्थात् होगा ही।

देव ने जयकुमार व सुलोचना की पूजा की-

महा गंगोदकेन स्नापयित्वा स्वर्गलोकज वस्त्राभरणैस्ताव पू पुजत्।

(पुण्यास्रव कथाकोष पृष्ठ-138)

कुरुजांगल देशस्थ हस्तिनापुर नरेश महाराजा जयकुमार और सुलोचना की इन्द्र द्वारा प्रशंसा सुन रतिप्रभ देव ने उन्हें परीक्षा में उत्तीर्ण पा गंगा जल से अभिषेक कर स्वर्गीय वस्त्राभूषणों से पूजा की।

नीलीबाई यक्षियों द्वारा पूज्य हुई-

किं वर्ण्यते शीलफलं मयायन्, नीलीति नाम्ना वणिजो हि पुत्री।
शीलात्सुपूजां लभते स्म यक्ष्याः, शीलं ततोऽहं खलु पालयामि ।।

(पुण्यास्रव कथाकोष पृष्ठ-157)

जिस शील के प्रभाव से नीली नाम की वैश्य पुत्री यक्षी से उत्तम पूजा को प्राप्त हुई है, उस शील के फल का मैं क्या वर्णन कर सकता हूँ। एवं

यक्षी पूजिता नीली नृपादिभिरपि पूजिता।
ईषद्विवेकिनी स्त्री बालापि देव पूज्याजनि शीतादन्यः किं न स्यादिति।

(पुण्यास्रव कथाकोष पृष्ठ-159)

इस प्रकार उस यक्षी से पूजित यह नीली राजा आदि महापुरुषों द्वारा भी पूजित हुई। जब भला थोड़े विवेक से सहित व स्त्री, बाला भी शील के प्रभाव से देवों द्वारा पूज्य हुई तब दूसरा पूर्ण विवेकी भव्य जीव क्या उन देवादिकों से पूज्य न होगा ? अर्थात् अवश्य होगा।

भिल्लराज ने अपने साथियों के साथ अनंतमति के चरणों की पूजा की-

राजा सिंहरथ ने अनंतमति के चरणों में गिरकर अपने अपराधों की क्षमायाचना की और अपनी पट्टरानी सहित उसके चरणों की पूजा की।

(धर्मामृत/अनंतमति की कथा पृ. 62-69)

सेठ सुदर्शन की यक्ष द्वारा पूजा-

सुदर्शनं समभ्यर्च्य दिव्य वस्त्रादिकाञ्चनैः।
प्रभावं जिनधर्मस्य संप्रकाशाय ययौ सुखम्।।
सत्यं श्री मज्जिनेन्द्रोक्त धर्म कर्मणि तत्पराः।
शीलवन्तोऽत्र संसारे कैर्न पूज्याः सुरोत्तमैः।।

(सुदर्शन चरित्र अ. 7 श्लोक 143, 144)

स्वर्णमयी दिव्य वस्त्रादिक से सुदर्शन सेठ की पूजा कर (यक्षदेव) जिनधर्म के प्रभाव को भली-भाँति प्रकाशित कर सुखपूर्वक चला गया। सच बात है कि श्रीमज्जिनेन्द्र द्वारा कथित धर्म कार्य में तत्पर कौन शीलवन्त इस संसार में उत्तम देवों द्वारा पूजित/पूज्य नहीं है।

अणुव्रतों को धारण करने वाले भी देवों द्वारा अतिशय पूजा को प्राप्त हुए-

मातङ्गो धनदेवश्च, वारिषेणस्ततः परः।
नीली जयश्च सम्प्राप्ताः, पूजातिशय मुत्तमम्।।

(रत्नकरण्ड श्रावकाचार श्लोक 64)

चाण्डाल, धनदेव, वारिषेण, नीलीदेवी तथा जयकुमार ये अणुव्रतों में (क्रमशः) प्रसिद्धि को पाकर अतिशय पूजा को प्राप्त हुए।

तद्भव मोक्षगामी भरत ने भी देशव्रती श्रावकों की पूजा की-

इति तद्वचनात् सर्वान् सोऽभिनन्द्य दृढव्रतान्।
पूजयामास् लक्ष्मीमान्, दानमानादि सत्कृतैः ।।

(आदि पुराण, पर्व 38 श्लोक 20)

अर्थात् व्रती जनों के वचनों से प्रसन्न हुए उस श्रीमान् भरत राजा ने मानादि सत्कारों से अभिनन्दन कर उन दृढव्रती लोगों की पूजा की।

अन्य लोगों ने भी व्रतीजनों की पूजा की-

अथ ते कृत सन्मानः, चक्रिणा व्रतधारिणः।
भजन्तिस्म परं दार्ढ्यं, लोकश्चैना न पूजयत्।।

(आदि पुराण, पर्व 38 श्लोक 23)

अर्थात् चक्रवर्ती ने जिसका सम्मान किया है ऐसे व्रत धारण करने वाले वे व्रती लोग अपने-अपने व्रतों में और भी अधिक दृढ़ता को प्राप्त हो गये तथा ऐसा देख अन्य लोगों ने भी उनकी पूजा की।

जिनेन्द्र सेठ ने ब्रह्मचारी की पूजा की-

जिनेन्द्र भक्त सेठ ने सूर्य नामक चोर जो ब्रह्मचारी के भेष में था, उसे सम्यक् ब्रह्मचारी समझ उसकी पूजा की।

(धर्मामृत उपगूहन अंग कथा पृ. 110)

अविरत सम्यग्दृष्टि भी देवों द्वारा वन्दनीय है-

सम्मत्त गुण पहाणो, देविंद णरिंद वंदिओ होदि।
चत्तवओ वि य पावदि, सग्गसुहं उत्तमं विविहं ।।

(कातिकियानुप्रेक्षा गाथा 326)

अर्थात् सम्यक्त्व गुण है प्रमुख जिसमें वह व्रतों से रहित अविरत सम्यग्दृष्टि चक्रवर्तियों व देवेन्द्रों द्वारा वंदनीय होता है। वह मात्र सम्यग्दर्शन के प्रभाव से ही स्वर्ग सुख को प्राप्त कर लेता है।

सम्यग्दृष्टि को देव भी अर्घ देते हैं-

कल्लाण परंपरया, लहंति जीवा विसुद्ध सम्मत्तं।
सम्मदंसण रयणं अग्घेदि, सुरा सुरे लोए।।

(दर्शन पाहुड गाथा 33)

अर्थ - विशुद्ध सम्यग्दर्शन से युक्त जीव कल्याण परम्परा को प्राप्त होता है। सम्यग्दर्शन रूपी रत्न के लिये तो सुर-असुर लोक के देव भी अर्घ देते हैं।

अव्रती तीर्थंकरों की भी अष्टद्रव्य से पूजा-

सौधर्मेन्द्र ने प्रथम तीर्थंकर शिशु श्री आदिकुमार (वृषभदेव) का पाण्डुक शिला पर बड़े उत्साह से जन्माभिषेक किया, तदनंतर उनकी अष्ट द्रव्य से पूजा की। यथा-

गन्धैधूपैश्च दीपैश्च साक्षतैः कुसुमोदकैः।
मन्त्र पूतैः फलैः सार्धैः सुरेन्द्र विभु मीजरे।।

(महापुराण पर्व 13 श्लोक 1)

अर्थात् सौधर्मेन्द्र ने जन्मकल्याणक के समय प्रभु ऋषभदेव की जल, चंदन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल और अर्घ से बड़ी विभूति के साथ पूजा की थी।

तीर्थंकर ऋषभदेव के माता-पिता की भी बहुमूल्य द्रव्य से पूजा की थी-

ततस्तौ जगतां पूज्यो, पूजयामास वासवः।
विचित्रैर्भूषणैः स्रग्भिरे शुकैश्च महार्घकैः ।।

(महापुराण पर्व 14 श्लोक 7)

जन्मोत्सव के पश्चात् इन्द्र ने नाना प्रकार के आभूषणों, मालाओं और बहुमूल्य वस्तुओं से उन जगत् पूज्य माता-पिता की भी पूजा की थी। और भी देखें - सभी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा ग्रन्थ

* संस्कृत सिद्धचक्र विधान, * संस्कृत कल्पद्रुम विधान, * संस्कृत समवशरण विधान, * संस्कृत सम्यग्दर्शन पूजा, * प्रत्येक तीर्थकरों की पूजायें

भगवान की माता की पूजा -

मरु देव्यादि चतुर्विंशति जिन मातारः । अत्र आगच्छ-२ संवौषट् आह्वाननं । मरु देव्यादि चतुर्विंशति जिन मातारः । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं । मरु देव्यादि चतुर्विंशति जिन मातारः । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं ।

यासां गौतमगोत्रजः सकलविन नेमीश्वरः सुव्रतः।
शेषाः काश्यपगोत्रजा जिनवराः पुत्रा जगत्स्वामिनः।।

या धर्मस्थिती हेतवो जिनलसन् नोकर्मनोआगम द्रव्योतपादनतो जिनेन्द्रजननीः संभावयेऽर्घ्येण ताः।

ॐ मरुदेव्यादि चतुर्विंशतिमातृभ्यः पूर्णार्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

(प्रतिष्ठा तिलक पृ. 176)

गर्भावतरण कल्याण विधि-

विश्वेश्वरे ! विश्वजगत्सवित्रि! पूज्ये ! महादेवि महासति ! त्वाम्।
सुमंगलेऽर्घ्यै बहुमंगलार्थैः संभावयामो भव नः प्रसन्ना ।।
ॐ ह्रीं वृषभदेव जिनमरुदेवीमातः ! तुभ्यं पूर्णार्घ्यं समर्पयामि स्वाहा।

(प्रतिष्ठा तिलक पृ. 177-178)

जिनमातृ पूजन-

भर्त्रा सहैकासन सन्निविष्टं, संस्नाप्य यां तीर्थजलैः सुरेन्द्राः।
दिव्यै विभूषाम्बर माल्य मुख्यैः रानर्चुरेनां वयमर्चयामः।।

ॐ ह्रीं जगदम्बिके ! स्नान वस्त्राभरणाद्यर्चनं गृहाण गृहाण स्वाहा।

(प्रतिष्ठा तिलक पृ. 193)

मातेयं त्रिजगत्प्रभोजिनपते स्तज्जन्मकालो.....।
स्वारोप्य तानर्घ्यये ।।

जिनमातृजिनजन्मस्थान प्रशंसनाय तेभ्योऽर्घ्यदद्यात।

(प्रतिष्ठा तिलक पृ. 201)

जिन जननी को नमोस्तु-

चेतश्चमत्कारकरी जनानां महोदयाश्चाभ्युदयाः समस्ताः।
हस्तीकृताः शस्तजनैः प्रसादात्, तवैव लोकांब ! नमोऽस्तु तुभ्यं ।।

(प्रतिष्ठा तिलक पृ. 230)

रतिप्रभ देव ने अपनी स्त्री के साथ जयकुमार की पूजा की-

शक्रप्रशंसनादेत्य रतिप्रभसुरेण सः।
परीक्ष्य स्वस्त्रिया मेरावन्यदा पूजितो जयः।।

(हरिवंश पुराण पर्व 12 श्लोक 30)

किसी समय इन्द्र के द्वारा की हुई प्रशंसा से प्रेरित होकर रतिप्रभ नामक देव ने अपनी स्त्री के साथ सुमेरु पर्वत पर जयकुमार के शील की परीक्षा की और परीक्षा करने के बाद उसकी पूजा की।

गुणाधिक्य ही पूज्य होता है-

मान्यत्वमस्य सन्धत्ते, मानार्हत्वं सुभावितम्।
गुणाधिको हि मान्यः स्याद्, वन्द्यः पूज्यश्च सत्तमै ।।

(आदि पुराण पर्व 40 श्लोक 204)

अर्थात् भली-भाँति चिरकाल से सुभावित सम्मान के योग्य आचरण ही वृत्तियों को मान्यता प्रदान करता है क्योंकि गुणाधिक्य ही उत्तम पुरुषों द्वारा माननीय, वंदनीय एवं पूजनीय होता है।

राम के भाई ने राम व सीता की अर्घ द्वारा पूजा की-

समीपौ तावितौ दृष्ट्वा, गजादुत्तीर्य कैकयः।
पूजामर्घ शतै श्चक्रे तयोः स्नेहादि पूरितैः ।।

(पद्म पुराण पर्व 82 श्लोक 24)

अर्थात् राम, लक्ष्मण और सीता वनवास की अवधि पूर्ण कर विमानों द्वारा लौट रहे थे। उन्हें दूर से ही देखकर महागज पर आरूढ़ हो भरत नगर से बाहर निकला, उन्हें देख राम ने भी अपना पुष्पक विमान पृथ्वी पर उतार लिया और हर्षित हो आगे आये। तदनन्तर उन दोनों को समीप आता देख भरत भी हाथी से उतरा और उसने स्नेह से पूरित हो सैकड़ों अर्घ्यों द्वारा उनकी पूजा की।

सीता की पूजा हुई-

मान्ये भगवति श्लाघ्ये दर्शनेन वयं तव ।
विधूत किल्विषा जाता कृतार्था भव सज्ञिनः।।
एवं महत्तर पृष्ठैः स्तूयमाना कुटुम्बिभिः ।
सोपायनै र्नृपच्छायैर्वन्द्यमाना च भूरिशः।।
रचितार्घादि सन्मानैः पार्थिवैश्च सुरोत्तमैः।
कृत प्रणाम मत्युधं शस्य मानापदे पदे ।।

(पद्म पुराण पर्व 99 श्लोक 8, 9, 10)

(लोकापवाद के कारण जब सीता को छोड़ा गया तब वहाँ वज्रजंघ (सीता का धर्म भाई) सीता को पालकी में बैठाकर पुण्डरीकिणी नगरी में भयंकर अटवी से तीन दिन में ले गया तब नगरवासियों ने कहा)

हे मान्धे ! हे भगवति ! हे श्लाघ्ये ! तुम्हारे दर्शन से हम संसार के प्राणी निष्पाप एवं कृतकृत्य हो गये।

इस प्रकार राजा की कान्ति को धारण करने वाले गाँव के बड़े- बूढ़े लोग भेंट लेकर उसकी बार-बार वंदना करते थे।

अर्घ आदि के द्वारा सम्मान करने वाले देव तुल्य राजा उसे प्रणाम कर पग-पग पर उसकी अत्यधिक प्रशंसा करते जाते थे।

वज्रजंघग्रहान्तस्थं प्रासादमतिसुन्दरम् ।
पूज्यमानानृपस्त्रीभिः प्रविष्ट जनकात्मजा ।।

(पद्म पुराण पर्व 99 श्लोक 21)

अर्थात् वज्रजंघ के घर के समीप स्थित अत्यन्त सुन्दर महल में राजा की स्त्रियों से पूजित होती हुई सीता ने प्रवेश किया।

विभ्रता परमं तोषं वज्रजंघेन सूरिणा ।
भ्रात्रा भामण्डले नेव पूज्यमाना सुचेतसा ।।

(पद्म पुराण पर्व 99 श्लोक 22)

अर्थात् वहाँ परम संतोष को धारण करने वाला बुद्धिमान एवं उत्तम हृदय का धारक राजा वज्रजंघ भाई भामण्डल के समान जिसकी पूजा करता था।

अग्रतः मसृतोदार प्रतापी परमेश्वरौ।
प्रयाती विषयन्तस्तैः पूज्यमानी नरेश्वरेः ।।

(पद्मपुराण पर्व 102 श्लोक 3)

अर्थात् सीता की अग्नि परीक्षा के बाद अनेक राजाओं ने उसकी पूजा की ।

पूज्यमाना समस्तेन जगता परमादरम्।
त्रिविष्टप्रसमान भोगान् भावय स्व महीतले ।।

(पद्म पुराण पर्व 105 श्लोक 66)

राम ने सीता से कहा कि समस्त जगत् के द्वारा पूजी गई हे सीते ! तुम पृथ्वीतल पर देवों के भोगों को भोगो।

प्रद्युम्नकुमार की पूजा

देवों से पूजित प्रद्युम्न कुमार
मेषाकार देवों से पूजित प्रद्युम्न कुमार
बावड़ी के देवों ने प्रद्युम्न कुमार की पूजा की
कपिल वन के देवों ने प्रद्युम्न कुमार की पूजा की

शरावाकार पर्वत के देवों ने प्रद्युम्न कुमार की पूजा की।

शूकराकार पर्वत के देवों ने प्रद्युम्न कुमार की पूजा की।

भीमागुफा के देवों ने प्रद्युम्न कुमार की पूजा की

(प्रद्युम्न चरित्र सर्ग 9)

नरक में स्थित अविरत सम्यग्दृष्टि की तुम भावी तीर्थंकर के रूप में अष्टद्रव्य से पूजा कर लेते हो किन्तु देशव्रती ऐलक, क्षुल्लक को तुम भावी मुनि नहीं मान पा रहे हो, क्या ऐसा ही तुम एकान्त लगाते हो।

निष्कर्ष -

सद्दृष्टि ज्ञानवृत्तानि, धर्मं धर्मेश्वरा विदुः।

(रत्नकरण्ड श्रावकाचार श्लोक 3)

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र धर्म है। ऐसा धर्मेश्वर तीर्थंकरों ने कहा है।

न धर्मो धार्मिकैर्विना ।

(रत्नकरण्ड श्रावकाचार श्लोक 26)

धर्माय तस्मै नमः ।।

(यति प्रतिक्रमण)

वह रत्नत्रय धर्म धर्मात्माओं के बिना नहीं होता है।

रयणत्तयं च वंदे ।।

(समाधि भक्ति)

देवा वि तं णमंसंति, जस्स धम्मे सयामणो ।।

(यति प्रतिक्रमण)

उस रत्नत्रय धर्म के लिये नमस्कार हो।

रत्नत्रय धर्म के लिये नमस्कार करता हूँ।

जिसके मन में सदा धर्म रहता है उसे देव भी नमस्कार करते हैं।

धर्म पूज्य है तो वह जिस आत्मा में पाया जाता है क्या वह पूज्य नहीं होगा ? अवश्य ही होगा।

जिस मंदिर में जिन भगवान विराजमान होते हैं, वह जिनालय भी नव देवताओं में एक देवता माना गया है और उसकी भी पूजा की जाती है।

जिस शरीर में रत्नत्रय सहित आत्मा विराजमान है वह पौद्गलिक शरीर भी रत्नत्रय के कारण पूज्य हो जाता है। अंशी पूज्य है तो अंश भी पूज्य ही होता है। ऐसा न्याय है अर्थात् रत्नत्रय पूज्य है तो एक रत्न सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र भी स्वतंत्र रूप से भी पृथक्-पृथक् पूज्य ही हैं तथा उनके धारी भी पूज्य ही हैं। यही कारण है कि कार्तिकेयानुप्रेक्षा में सम्यक्त्व गुण से युक्त अविरत सम्यग्दृष्टि भी देवेन्द्र द्वारा वंदनीय माना है।

सम्मत्तगुण पहाणो, देविंद णरिंद वंदिओ होदि।
चत्तवओ वि य पावदि, सग्गसुहं उत्तमं विविहं ।।

(कार्तिकेयानुप्रेक्षा गाथा 326)

छहढालाकार पं. दौलतराम जी ने भी छहढाला में ऐसा ही कहा है कि-

दोष रहित गुण सहित सुधी जे, सम्यक् दर्श सजे हैं।
चरित मोहवश लेश न संजम, पै सुरनाथ जजे हैं ।।

(छहढाला 3 छंद 15)

पं. बनारसीदास जी ने भी सम्यग्दृष्टि जीव को वंदन किया है तथा-

भेद विज्ञान जग्यो जिनके घर, शीतल चित्त भयो जिमि चंदन,
केलिकरें शिवमारग में, जगमांहि जिनेश्वर के लघुनंदन।
सत्य स्वरूप जिनके, प्रगट्यो अवदात मिथ्यात्व निकंदन,
शांत दशा जिनकी पहचान, करें कर जोरि बनारसि वंदन ।।

(समयसार नाटक 1/61)

सभी तीर्थंकरों की एक भवावतारी सौधर्मेन्द्र भी गर्भ कल्याणक व जन्म कल्याणक रूप असंयत अवस्था में अष्ट द्रव्य से पूजा करता है तथा तीर्थंकर के जनक जननी होने से माता-पिता की भी अष्ट द्रव्य से पूजा करता है तथा आज भी प्रतिष्ठाचार्य गण पंचकल्याणक प्रतिष्ठा ग्रन्थ के आधार से कराते हैं और सभी आचार्यगण इन सब बातों को प्रमाणित मानते हैं तो फिर देशव्रती आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक, क्षुल्लिकाओं की नवधा भक्ति में इतना ऊहापोह क्यों ? नहीं होना चाहिये।

जिस संघ की जो परम्परा है, साधकों को अपने-अपने गुरु की आज्ञा मान पालन करना चाहिये, पर श्रावकों को दिग्भ्रमित नहीं करना चाहिये। उनके यहाँ सभी संघ के साधु वर्ग आते हैं अतः केवल अपनी ही मान्यता के नियम आदि नहीं दिलाना चाहिये। अन्यथा दूसरे संघस्थ माताजी आदि यदि उपवासादि कर लें तो क्या उक्त नियम लेने वाले तथा दिलाने वालों को हिंसा का दोष नहीं लगेगा ?

अन्नपान निरोध का अतिचार जब श्रावक को लगता है तो क्या महाव्रती को नहीं लगेगा ? क्या श्रावकों में कलह नहीं होगी ? कोई भी साधु नगर में भूखा रहेगा या वहाँ से वापिस जायेगा तो जैनेत्तर लोगों में दुष्प्रभाव नहीं पड़ेगा ? सोचें समझें और सम्यक् मार्ग का अनुशरण करें।

दूसरी बात मिथ्यादृष्टियों, कुलिंगियों को नमस्कार करने का निषेध है, न कि सम्यग्दृष्टियों को। यथा-

भयाशा स्नेह लोभाच्च, कुदेवागम लिङ्गिनां ।
प्रणामं विनयं चैव, न कुर्युः शुद्ध दृष्ट्यः ।।

(रत्नकरण्डक श्रावकाचार श्लोक 30)

अर्थात् भय, आशा, स्नेहवश, लोभ से भी कुदेव (मिथ्यादृष्टि देव), कुआगम (जो जिन प्रणीत आगम से विपरीत है), कुलिङ्गी (मिथ्यादृष्टि साधु) को प्रणाम और विनय नहीं करनी चाहिये।

तथा कुलिङ्गी का स्वरूप बताते हुए कहा है कि-

सग्रन्थारंभ हिंसानां, संसारावर्त वर्तिनां ।
पाखण्डिनां पुरस्कारो, ज्ञेयं पाखण्डि मोहनं ।।

(रत्नकरण्डक श्रावकाचार श्लोक 24)

अर्थात परिग्रह, आरंभ तथा हिंसा आदि पाप व मिथ्यात्व संसार के अव्रतों में आवर्तन (प्रवृत्ति) करने वाले साधुओं को सच्चा (निर्ग्रन्थ) साधु मानकर सम्मान आदि करना पाखण्ड मूढ़ता है।

पर आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक, क्षुल्लिका पाखण्डी नहीं हैं और न ही किसी भी शास्त्र में उन्हें पाखण्डी या उनके सम्मान को पाखण्ड मूढ़ता कहा है अन्यथा उन्हें पड़गाहन करना, उच्चासन देना, श्रीफल चढ़ाना, हाथ जोड़ना आदि सभी मूढ़ता की कोटि में आ जायेगा और ऐसा करने वाले सभी मूढ़दृष्टि ही कहलायेंगे, पर ऐसा नहीं है।

वे मिथ्यादृष्टि, कुलिङ्गी नहीं हैं। अत: उन्हें नमस्कार आदि पाखण्ड मूढ़ता नहीं है। इसी प्रकार उनके प्रति की गई विनय आदि से सम्यग्दर्शन के पाँचों अतिचारों में भी कोई अतिचार नहीं लगेगा। जैसे कि- तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय 7 के अनुसार सम्यग्दर्शन का अन्यदृष्टि प्रशंसा (मिथ्यादृष्टि की मन ही मन सराहना करना) तथा अन्यदृष्टि संस्तव (मिथ्यादृष्टियों की वचनों द्वारा जो स्तुति आदि करना है) यह सम्यग्दर्शन का चौथा और पाँचवा अतिचार है। यह अतिचार भी उन्हीं मिथ्यादृष्टियों के सम्मान आदि करने से लगता है।

क्या आप ऐलक, क्षुल्लक आदि को मिथ्यादृष्टि मानते हैं। यदि हाँ तब तो फिर उन्हें इच्छामि कहना भी गलत हो जायेगा क्योंकि अष्टपाहुड की टीका में इच्छाकार का अर्थ नमस्कार, वंदना, प्रणाम किया है। अतः वह गलत हो जाएगा अथवा फिर ऐलक-क्षुल्लक को पूज्य कहना या लिखना भी गलत हो जाएगा।

अर्थात् फिर ऐसा व्यक्ति उन सवस्त्र धारियों की पूजा, वंदना और नमस्कार भी करते हैं तो वे भी मिथ्यादृष्टि ही कहे जाने चाहिये। फिर पूर्वोक्त सभी प्रमाण आगम विरुद्ध हो जाएँगे तथा रत्नकरण्ड श्रावकाचार में कथित वात्सल्य अंग की परिभाषा भी गलत ठहरेगी कि-

स्वयूथ्यान् प्रतिसद्भाव सनाथापेत कैतवा।
प्रतिपत्तिर्यथायोग्यं वात्सल्यमभिलप्यते ।।

(रत्नकरण्डक श्रावकाचार श्लोक 17)

अर्थात् अपने साधर्मियों के समूह के प्रति आदर भी मूढ़ता ही कहलायेगा। फिर तो

सौधर्मेन्द्र भी मिथ्यादृष्टि कहलायेगा क्योंकि वह भी तीर्थंकरों के पंचकल्याणक पूजा महामहोत्सव के साथ करता है। अतः पंचकल्याणकों में गर्भ जन्म कल्याणक पूजा समस्त वस्त्रधारियों के करने से मिथ्यादृष्टि कहलायेगा।

आप भी तो तीर्थंकरों की पूजा में गर्भ जन्म कल्याणक के अर्घ चढ़ाते हैं। अतः आप भी मिथ्यादृष्टि ही ठहरेंगे।

तथा प्रतिमाओं की पंचकल्याणक विधि कराने वाले प्रतिष्ठाचार्य भी मिथ्यादृष्टि ही कहलायेंगे।

पंचकल्याणकों में भाग लेने वाले तथा सान्निध्य देने वाले आचार्य भी मिथ्यादृष्टि कहलायेंगे।

पंचकल्याणक विधि विधान का वर्णन करने वाले प्रतिष्ठा ग्रंथ कुआगम हो जाएँगे तथा उनके लेखक आचार्य और उनके पूर्ववर्ती आचार्य परम्परा सभी मिथ्यादृष्टि कहलायेंगे।

अंत में तो तीर्थंकरों के वचनों पर भी प्रश्नचिह्न लग जायेगा इस प्रकार आदि-आदि महादोष आयेंगे।

प्रश्न – वस्त्रधारियों की पूजाओं का वर्णन करने वाले प्रतिष्ठा ग्रन्थ बीसपंथी थे ?

उत्तर – प्रत्येक प्रतिष्ठा ग्रन्थ में पाँचों कल्याणक की ही पूजा का विधान है। किसी भी प्रतिष्ठा ग्रन्थ में गर्भ और जन्म कल्याणक की पूजा को छोड़ा नहीं है। अतः पंचकल्याणकों को तेरह, बीस पंथ में नहीं बाँटा जा सकता है। हाँ, पूजा पद्धति में अंतर हो सकता है, पर पाँचों कल्याणक की पूजा दोनों में मान्य है।

प्रश्न – वस्त्रधारियों को अर्घ या पूजा के विषय में आचार्य कुन्दकुन्द ने क्या कहा है ?

उत्तर – देखो दर्शन पाहुड में कहा है कि-

कल्लाणपरंपरया लहंति जीवा विसुद्ध सम्मत्तं ।
सम्मद् दंसण रयणं अग्घेदि सुरासुरे लोए।।

(दर्शन पाहुड, गाथा 33)

अर्थात् भव्य जीव कल्याणों के समूह के साथ निर्दोष सम्यक्त्व को प्राप्त होते हैं। इसलिए सम्यग्दर्शन रूपी रत्न लोक में देव-दानवों के द्वारा अर्घ्य दिया जाता है, पूजा जाता है।

आगमिक परम्पराओं को बदलना उचित नहीं है।

पहले बुन्देलखण्ड में पर्युषण पर्व की चतुर्दशी को दूध, दही, घी, शक्कर आदि से अभिषेक होता था।

मंदिरजी में नैवेद्य पकवान बनाये जाते थे तथा भगवान को चढ़ाये जाते थे। आज भी कतिपय स्थानों में चढ़ाया जाता है।

क्षमावाणी के दिन फूलमाल, शीलमाल, ज्ञानमाल की बोलियाँ बोली जाती थीं और उन्हें भगवान के सन्मुख रख बाद में बोली लेने वालों को पहना दी जाती थीं।

रात्रि के समय सामूहिक आरती होती थी व होती है।

प्रतिदिन की पूजा में धूप-धूपदानी की अग्नि में खेई जाती थी व खेई जाती है।

सुगन्ध दशमी के दिन सभी मन्दिरों में अग्निपात्र में धूप खेई जाती थी।

प्रत्येक तीर्थंकरों की पूजा में गर्भ जन्म कल्याणकों के अर्घ चढ़ाये जाते हैं।

महार्घ्य में मुनि, आर्यिका, क्षुल्लक-क्षुल्लिका बोला ही जाता है।

पर्युषण पर्व की सुगंध दशमी को मंदिर में शाम को धूपघटों में अग्नि रखी जाती थी तथा उसमें धूप खेई जाती थी व खेई जाती है।

घरों-घरों में दीपावली के दिन शाम को महावीर स्वामी, गौतम गणधर तथा जिनवाणी की पूजा होती थी व होती है।

अक्षय तृतीया के दिन इक्षुरस से श्रीजी का अभिषेक होता था, पर आज तर्क देकर उन्हें बदला जा रहा है।

स्थापना के तुरंत बाद पुष्पांजलि नहीं क्षेपी जाती थी किन्तु विसर्जन के समय ही पुष्पांजलि क्षेपी जाती थी।

कितनी जगह आज अभिषेक के बाद छत्र, चँवर ढुराने की नियामक परम्परा बन

रही है, जबकि दिगम्बरों में अष्ट प्रातिहार्यों की परम्परा और श्वेताम्बरों ने भक्तामर में चार प्रातिहार्य रखे। अब केवल दो प्रातिहार्यों को प्रधानता दी जा रही है। जबकि ऐसा किसी भी अभिषेक पाठ में वर्णन नहीं है।

आगम कुछ कह रहा है, हम कुछ कह रहे हैं। क्या ये आगम विरुद्ध नहीं है ? तथा जो आगमानुसार चले उसे तेरह बीस की श्रेणी में खड़ाकर उपेक्षित कर दिया जाता है। क्या ये उचित है ? समाज को दिग्भ्रमित कर विघटन करना उचित है क्या ?

आगम तीजा नेत्र बखानो :-

यदि ऐसा हो तो सम्यग्दृष्टि उक्त आगम वाक्यों को माने या फिर अन्य किसी साधु की बात मानें ?

साधु तो आगम की बात करता है, उसे ही प्रमाण मानता है, क्योंकि कहा है कि आगम चक्खु साहू अर्थात् साधुओं की आँख तो आगम ही है।

यदि आगम के दो प्रमाण मिलें तो ?

उभयवाक्य प्रमाणम् :-

विनय में प्रमादी हो जायें।

महव्वय विरहिद दो रयणहराणं ओहणाणीणमणोहिणाणीयं च किमट्ठं णमोक्कारो ण कीरदे ? गारव गुरुवेसु जीवेसु चरणाचार पवट्ठवणट्ठं

उत्ति मग्ग विसय भत्तिय पयासणट्ठं च ण कीरदे।

(धवला पुस्तक 9 खंड 4 सू, 2 टीका)

अर्थात् महाव्रतों से रहित दो रत्नों (सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान) के धारक असंयत सम्यग्दृष्टि अवधिज्ञान तथा अवधिज्ञान से रहित जीवों को नमस्कार क्यों नहीं किया जाता है ? ऐसा पूछने पर वे ही आचार्य श्री वीरसेन स्वयं उत्तर देते हुए कहते हैं कि अहंकार से महान जीवों में चरणाचार अर्थात् सम्यक्चारित्र की प्रवृत्ति कराने के लिये तथा प्रवृत्ति मार्ग विषयक भक्ति के प्रकाशनार्थ उन्हें नमस्कार नहीं किया जाता है। तात्पर्य यह है, कि उक्त वाक्यों से यह ध्वनित नहीं होता कि असंयत सम्यग्दृष्टि सर्वथा अवंदनीय है, ऐसा नहीं, अपितु उसे उसी अवस्था में ही अभिमान न आ जाये

कि जब हमारे लिये सभी नमस्कार आदि करते ही हैं तो फिर चारित्र को धारण कराने के लिये नमस्कार नहीं किया गया, पर नमस्कार करने में ऐसा कोई दोष नहीं है कि जिससे किसी का सम्यग्दर्शन आदि दूषित हो जाये। अन्यथा दिये गये पूर्वोक्त आगम प्रमाण बाधित हो जायेंगे (मूलाचार, अष्टपाहुड, तत्त्वार्थ सूत्र, चारित्रसार, महापुराण, उत्तरपुराण, पद्मपुराण आदि) तथा स्वयं उन्हीं आचार्यों के पूर्वापर वचन बाधित होने से अप्रमाण ठहरेंगे और उनके द्वारा रचित शास्त्र के लक्षण से भी बाधित होने से अनागम ठहरेंगे। यह सबसे बड़ा दोष आयेगा।

अन्यदृष्टि प्रशंसा - मिथ्यादृष्टियों की मन ही मन प्रशंसा उत्सुकता रखना।

अन्यदृष्टि संस्तव - मिथ्यादृष्टियों की वचनों से स्तुति, प्रशंसा करना।

अब कहो आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक, क्षुल्लिका आदि मिथ्यादृष्टि हैं क्या ? इसका एक ही उत्तर होगा कि नहीं, वे मिथ्यादृष्टि नहीं हैं। अन्यथा सुपात्र और कुपात्र में कोई भी अन्तर नहीं रहेगा। अतः इनकी नवधा भक्ति करने से सम्यग्दर्शन भी अतिचार रूप से मलीन नहीं होता, न ही मूढ़ता आती है आदि।

इस प्रकार उपरोक्त प्रमाणों से यह बात सिद्ध हुई कि अविरत सम्यग्दृष्टि सम्यग्दर्शन के कारण पूज्य है। देशव्रती, सम्यग्दर्शन, ज्ञान तथा देशचारित्र के कारण पूज्य हैं। महाव्रती रत्नत्रय के कारण पूज्य हैं।

स्मयेन योऽन्यानत्येति, धर्मस्थान् गर्विताशयः ।
सोऽत्येति धर्ममात्मीयं, न धर्मो धार्मिकैर्विना ।।

(रत्नकरण्डक श्रावकाचार श्लोक 26)

अर्थात् कोई धर्मात्मा यदि अभिमानवश किसी दूसरे धर्मात्मा के प्रति ग्लानि या निन्दा करता है तो समझ लीजिये वह अपने ही सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रूप धर्म की ही ग्लानि या निन्दा कर रहा है क्योंकि ये धर्म धर्मात्मा के बिना नहीं होता है अर्थात् धर्मात्मा में ही होता है।

आगम के उक्त प्रमाणों को देखकर जिन वचन में निःसंदेह रहना चाहिए-

निःशंकित अंग -

इदमेवेदृशमेव तत्त्वं, नान्यन्न चान्यथा ।
इत्यकम्पाय साम्भोवत्, सन्मार्गे ऽसंशया रुचिः।।

(रत्नकरण्डक श्रावकाचार श्लोक 11)

अर्थात् आगम कथित तत्व यह ही है। इसी प्रकार है, न अन्य है और न अन्यथा है। तलवार की धार पर चढ़े पानी की तरह सन्मार्ग में इस प्रकार निःशंक रहना सम्यग्दर्शन का निःशंकित अंग है।

जो खुले आम साधुओं की सभा, मंच, पत्र-पत्रिका, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया से बुराई करे या कराये, उसका स्वागत तथा गुणगान किया जाता है तथा जो झूठे प्रचारकों को भी ये धर्म के भेष में हैं यदि इनकी सत्य बात उजागर करेंगे तो कलह होगी, ऐसा सोच मौन साधे हैं उसे अनुपगूहन की दृष्टि से देखना।

स्थितिकरण अंग -

दर्शनाच्चरणाद्वापि, चलतां धर्म वत्सलैः।
प्रत्यवस्थापनं प्राज्ञैः स्थितिकरण मुच्यते ।।

(रत्नकरण्डक श्रावकाचार श्लोक 16)

अर्थ - सम्यग्दर्शन व सम्यक्चारित्र से चलायमान किसी धार्मिक प्राणी को देखकर धर्म वत्सल्यता पूर्वक प्राज्ञ पुरुषों द्वारा उन्हें पुनः सम्यग्दर्शन या सम्यक्चारित्र में स्थापित करना स्थितिकरण अंग है।

परन्तु आज स्थिति इतनी बिगड़ी है कि अनेक शास्त्रों के ज्ञाता तथा अष्टांगों के प्रवचनकार भी किसी गिरते हुए को सम्हालना उठाना तो दूर रहा, देखना भी पसंद नहीं करते हैं । एक अव्रती की बातों पर तो विश्वास कर लेते हैं, पर अनेक महाव्रतियों पर विश्वास नहीं कर पाते हैं। कहाँ है वह स्थितिकरण अंग ? क्या कभी दूसरे पक्ष को साक्षात समझने का या समझाने का प्रयास किया? नहीं, तो फिर कैसे स्थितिकरण अंग के धारी हो ?

आज जो कभी किसी का स्थितिकरण करना तो दूर रहा, उसे सही तरह से समझने का भी प्रयास नहीं करता, केवल दूसरे की बात सुन उसे सत्य मान दूर हट जाता है, उसे स्थितिकरणवान तथा जो सदा दूसरों को हर तरह से धर्म में स्थिर करता है, उसे अस्थितिकरणवान कहा जाता है।

वात्सल्य अंग -

स्वयूथ्यान् प्रति सद्भाव, सनाथा पेतकैतवा ।
प्रतिपत्तिर्यथायोग्यं, वात्सल्य मभिलप्यते ।।

(रत्नकरण्डक श्रावकाचार श्लोक 17)

अर्थ – अपने धार्मिक साधु संघों तथा समाज के प्रति सद्भाव/ अच्छे भाव के साथ, सनाथ भाव अर्थात् कभी भी आप धार्मिक कर्त्तव्यों में घबड़ाना नहीं, मैं हूँ तुम्हारी धर्म साधना में सहयोगी, ऐसी निश्छल (छल-कपट से रहित) परस्पर में यथायोग्य विनय, सम्मान, प्रेम, वात्सल्य अंग है।

पर आज धार्मिक कहे जाने वाले साधु संघ में स्वयूथ का अर्थ केवल अपना संघ और उनसे जुड़े हुए व्यक्ति ही रह गये हैं। ऐसी ही परिभाषाएँ बनाई जा रही हैं। एक ही संघ के पाठ पढ़ाये जा रहे हैं वे सच्चे, बाकी झूठे, ऐसा समझाया जा रहा है। अरे भाई ! क्षणिक स्वार्थ के लिये, सम्मान और प्रतिष्ठा के लिये इतनी संकीर्णता के बीज क्यों बोये जा रहे हो ? कौन किसी को चुनाव में खड़ा होने के लिये वोट को तैयार करना है। अरे भाई ! हमारे आगम में कहीं भी एक ही संघ की बात नहीं आई अपितु तीन कम नौ करोड़ मुनियों के प्रति विनय भक्ति का वर्णन है। इतने मुनि तो किसी भी एक संघ में नहीं मिलेंगे तो फिर इतनी संकीर्णता का पाठ क्यों पढ़ाया जा रहा है ? क्या एक संघ के अलावा शेष रहे तीन कम नौ करोड़ मुनियों को मानना हम बंद कर दें ? आप यही चाहते हैं 'णमो लोए सव्वसाहूणं' बोलना बंद कर दें या 'णमो लोए सव्व एग संघस्था साहूणं' बोलना प्रारंभ कर दें। क्या यही केवली आज्ञा या शास्त्र आज्ञा मानी जायेगी ? कुछ सोचिये और सम्हलिये। जिनवाणी का अपनी इच्छा के अनुसार प्रतिकार करना मिथ्यात्व है और ऐसा करने वाला मिथ्यादृष्टि है। यथा-

मदिसुदणाण बलेण दु सच्छंदं बोल्लदे जिणुद्दिट्ठं ।
जो सो होदि कुदिट्ठी न होदि जिणमग्गलग्गरवो ।।

(रयणसार गाथा 3)

आज 'गुणीजनों को देख हृदय में मेरे प्रेम उमड़ आवे' के स्थान पर 'मेरे द्वेष जुगुप्सा उमड़ आवे' की नीति है। ऐसे लोगों में आनंद मनाने वाला वात्सल्यवान तथा जो धर्मी सो गोवच्छ प्रीति, रखता है उसे अवात्सल्यवान कहा जाता है।

प्रभावना अंग –

अज्ञान तिमिर व्याप्ति, मपाकृत्य यथायथम् ।
जिनशासन माहात्म्य, प्रकाशः स्यात् प्रभावना।।

(रत्नकरण्डक श्रावकाचार श्लोक 18)

अर्थ - जगत् में व्याप्त अज्ञान रूपी अंधकार को जैसे बने वैसे दूर कर जिनशासन के माहात्म्य को प्रकाशित करना प्रभावना अंग है।

पर आज जो आगमज्ञान अपने विचारों से मेल नहीं खाता है उसे अप्रमाणित ठहराया जा रहा है और जो अपनी विचारधारा है- भले ही उसका आगम प्रमाण न हो तो भी उसे समाज में जबरन थोपा जा रहा है और एक नई परम्परा की शुरुआत हो रही है-

1. अभिषेक के समय केवल छत्र-चँवर का प्रयोग करना।

2. मंगलाष्टक में चार पंक्तियाँ नई जोड़ी जा रही हैं।

3. मंदिरों-मंदिरों में प्राय: हर प्रमुख स्थानों पर एक ही संघ की फोटो के अलावा शेष को निकाला जाता है।

4. अभिषेक के बाद तीन कम नौ करोड़ मुनियों को अर्घ न चढ़ाकर केवल एक ही आचार्य, मुनि को अर्घ चढ़ाया जाता है।

आज का साधु केवल अपने नाम की प्रभावना को ही प्रभावना मान रहा है।

आज तक जैसी धर्मक्षति औरंगजेब जैसे आतातार्इयों ने भी नहीं की वैसा आज का साधु खुलेआम कर रहा है। दूसरों के कंधे पर बंदूक रखकर गोली चला रहा है। कुछ सोचें, समझें और सम्हलें।

नाम और प्रतिष्ठा के खातिर प्राचीन धरोहरों के इतिहास को मिटाकर अपना इतिहास बना रहा है। सत्य तो ये है कि शास्त्रों में जीर्णोद्धार की तो बात आई पर, उसे समूल नष्ट कर नये निर्माण की बात नहीं आई । यदि ऐसा ही रहा तो आने वाले समय में मूर्तियों का भी यही हाल होगा। कच्ची, कमजोर, जीर्ण-शीर्ण मूर्ति को खण्डित कर उसे भी अलग कर नई स्थापना करेंगे।

अरे भाई इतिहास ही बनाना है तो नये मंदिर, तीर्थ आदि को भी इच्छानुसार अच्छे से अच्छा बनाया जा सकता था। इसमें आपकी प्रतिष्ठा प्रसिद्धि 100 प्रतिशत रहती।

आज साधु राग-द्वेष की इतनी गहरी नींव खोद रहे हैं कि यदि उनकी इच्छानुकूल कार्य नहीं हुआ अथवा किसी ने हस्तक्षेप किया तो उसे भरी सभा में भ्रष्ट,

गधा, कुत्ता, बिल्ली, चमगादड़ आदि तक कहा जाता है। जो मेरी बात नहीं मानेगा उसका सर्वविनाश होगा, मरकर नरक जायेगा इत्यादि कह सामाजिक एकता, शांति और व्यवस्था को भंग किया जा रहा है।

क्या ऐसा बोलना आगमसम्मत है ? सत्य महाव्रत और भाषा समिति के अनुरूप है ? क्या ऐसा करने से सत्य महाव्रत की रक्षा हो सकेगी ? कितने बदलाव रातों-रात हो जाते हैं । मूर्तियाँ गोल हो जाती हैं। क्या यह चोरी नहीं है ? फिर भी व्यक्ति अपने आपको श्रेष्ठ मान रहा है तथा दूसरों को आगम विरुद्ध, चर्याहीन तथा भ्रष्ट कह अन्य संघों के दर्शन तो दूर, मिलना भी नहीं चाहते। अगल-बगल से निकल जाते हैं या फिर अलग बैठ समाज को गुमराह करते हैं कि यदि आप उन्हें लेने जाओगे तो हम विहार कर जायेंगे आदि भय दिखाकर समाज में विभाग बना रहे हैं । केवल एक ही संघ की फोटो रहे, दूसरे संघ की नहीं। येन-केन-प्रकारेण हटवाने का प्रयास। अपने कार्यक्रम में दूसरे संघ की फोटो न रहे, न पत्रिका आदि में अथवा चित्र अनावरण में अथवा स्टेज पर न रहे। यदि है तो उसे अलग करें अन्यथा उसका प्रतिरोध किया जाता है। इनको ही वे प्रभावना कहते हैं। कुछ सोचें और समझें। बुराइयों, ईर्ष्याओं, वैमनस्यताओं, ग्लानियों से हम एकता और वात्सल्य के बीज बो रहे हैं या विघटन और घृणा के ? आज तक जाति, पंथ और परम्पराओं में बटे और अब संघ, साधुओं एवं समाज को बाँट रहे हैं ? क्यों केवल अपनी ही बात दूसरों पर जबरन थोप कर विघटन कर रहे हैं ? क्यों नही सभी के सम्मान का सूत्र देते है ?

सर्वप्रथम पूर्वाग्रह रूप चश्मा निकाल लीजिये तभी जिनवाणी के पावन पुनीत वचनों का आप आदर-सम्मान रख सकेंगे।

क्या प्रथमानुयोग के प्रमाण मान्य नहीं तो फिर आपके यहाँ कौन- सा प्रथमानुयोग का ग्रन्थ मान्य रहेगा ? तथा दिये गये चरणानुयोग के प्रमाण भी क्या मान्य नहीं हैं तो फिर आपके लिये फिर कौन-सा चरणानुयोग प्रमाणित होगा ? केवल आपकी कोरी मान्यता ही ? ध्यान रखें। समाज के बीच में ऐसी कोई भी बात न लायें जो उन्हें दिग्भ्रमित करे साथ ही आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक जो आगम व गुरुआज्ञा से चल रहे हैं उनके प्रति ग्लानि उत्पन्न करा दें, जिनवाणी को अमान्य कर दें तथा उस संघ के आचार्य व पूर्वाचार्यों तथा वर्तमान आचार्यों के प्रति अश्रद्धा भाव जगा दें और श्रावक को इतना निष्ठुर बना दें कि उक्त आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक या क्षुल्लिकाओं को चौका ही न लगायें या उनका पड़गाहन ही न करें अथवा वे नवधा भक्ति न होने से चौके से

निकल जायें और सभी खड़े-खड़े देखते रहें अथवा उपवास कर लें और आप जरा भी न पिघलें। क्या उनसे ऐसा दुःसाहस करोगे कि हमारी पद्धति से चलो तो मैं पड़गाहन करूँगा अन्यथा नहीं। अब कहो वे आपकी बात मानेंगे या आगम और अपने गुरु की। सत्य है वे आपकी नहीं, किन्तु जिनागम की तथा गुरु की ही बात मानेंगे। भले ही उन्हें उपवास क्यों न करना पड़े। सोचो जरा यदि ऐसा कहीं कुछ हो गया तो वहाँ की समाज की स्थिति कैसी होगी, विवाद-विसंवाद खड़े होंगे, जैन-जैनेतर फिर आपको भी भला-बुरा कहेंगे।

उक्त आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक, क्षुल्लिकाएँ तो आगम के जो भी प्रमाण उनके पास उपलब्ध होंगे दिखायेंगे तथा कहेंगे कि समर्पण तो मेरा गुरु के प्रति है न कि अन्य किसी के प्रति। मैं तो उनकी ही आज्ञा अनुशासन में रहूँगा या रहूँगी आदि।

संभव है कोई स्वार्थी शिष्य निकले और वह केवल खाने के लिये आगम व गुरु की आज्ञा अनुशासन की अवहेलना कर आपकी बात मान भी ले तो क्या फिर उसे सम्हाल सकेंगे। प्रायश्चित्त आदि देंगे, मुनि दीक्षा आदि दे समाधि करा सकेंगे ? आप उन्हें अपने जैसा आगम आज्ञा-विहीन तथा अनुशासनहीन उच्छृंखल बना देंगे। फिर उनकी उच्छृंखलता कहाँ तक पहुँचेगी, इसे तो भविष्य ही बता सकेगा अथवा उसे एक दिन अपना संयम और पिच्छि कमण्डल ही छोड़ना पड़ेगा और फिर क्या उसकी सम्यक् समाधि हो सकेगी ? जरा सोचें।

यदि आप कुछ सोचते हैं, समझते हैं और इतने समझदार हैं तो ध्यान रखें जिस संघ की जो परम्परा है उसमें हस्तक्षेप न करें। समाज व साधु संघों में अशांति के बीजारोपण न करें जो उनके तथा समाज के एवं आपके अहित में हो, यही साध्वोचित मार्ग है। उन्हें अपनी गुरुआज्ञा- अनुशासन का पालन करने दें। आपसे कोई क्या अपेक्षा रखेगा, जबकि आप किसी संघ से मिलते नहीं हो, उनके साथ एक मंच पर बैठते नहीं हो, दूसरों की प्रशंसा आप नहीं सुन पाते हो, प्रत्यक्ष या परोक्ष बुराईयां करते हो, सम्यग्दर्शन के निर्जुगुप्सा, उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य अंग का पालन नही करते। प्रभावना भी केवल अपनी, अपने संघ व गुरु तक ही सीमित है। लोगों को उसी सीमा में बाँधने के लिये केवल एक बाप और एक ही संघ को मानने के नियम दिलाते हैं।

अरे भाई ! इतनी संकीर्णता के पाठ पढ़ाकर दुनिया को तीन कम नौ करोड़ मुनियों की भक्ति से क्यों वंचित कर रहे हो ? उनकी श्रद्धा को क्यों तोड़ रहे हो ? फिर

तो आप एक दिन यह भी कहोगे कि 'णमो लोए सव्वसाहूणं' बोलना बंद करो 'णमो लोए एग संघ साहूणं' बोलो।

अधिक कहने से क्या, संकीर्ण विचारधाराएँ छोड़ो और समाज में एकता, संगठन तथा सौहार्द्रता का उपदेश दो। जो परम्पराएँ प्राचीनकाल से चली आई हैं, जिनका आज तक भव्य आचार्यों ने खंडन नहीं किया, उसे खण्डित करने का दुःसाहस मत करो। समाज को अनावश्यक रूप से जातिवाद, पंथवाद, संघवाद, परम्परावाद और अब शास्त्रवाद, मंदिरवाद और मूर्तिवाद की संकीर्णताओं में बाँधकर अशांति मत फैलाओ। जिस संघ की जो आगम परम्परा है उसे यथावत् चलने दो।

इत्यलं विस्तरेण ।

4

अभिवंदना

तेण च पडिच्छिदव्वं गारवरहिएण सुद्धभावण।
किदियम्मकारकस्सवि संवेगं संजणंतेण ।।

(मूलाचार गाथा 612)

अर्थात् निर्ग्रन्थ साधुओं को नमोऽस्तु, आर्यिकाओं को वन्दना (वंदामि) तथा उत्तम श्रावक ऐलक-क्षुल्लक आदि को इच्छाकार शब्दोच्चारण दारा विनय प्रकट करना चाहिए।

निर्ग्रन्थानां नमोस्तु स्यादार्यिकाणां च वन्दना।
श्रावकस्तोत्तम स्योच्चै रिच्छाकारोऽभिधीयते ।।

(नीतिसार-श्लोक 51)

अर्थात् निर्ग्रन्थ साधुओं को नमोऽस्तु, आर्यिकाओं को वन्दना (वंदामि) तथा उत्तम श्रावक ऐलक-क्षुल्लक आदि को इच्छाकार शब्दोच्चारण द्वारा विनय प्रकट करना चाहिए।

विगौरवादि दोषेण, सपिच्छाञ्जलि शालिना।
सदब्ज सूर्याऽचार्येण, कर्त्तव्यं प्रतिवंदनम्।।

(आचार सार 1/62)

अर्थात् जो गौरव-गारव आदि दोषों से रहित हैं, पिच्छि सहित अंजलिबद्ध हैं अर्थात् मुकुलित कर में पिच्छि लिये हुये हैं तथा सज्जन रूपी कमलों को विकसित करने के लिये सूर्य के समान हैं ऐसे आचार्यों को भी सामान्य साधुओं के द्वारा वन्दना/नमोऽस्तु किये जाने पर प्रतिवंदना प्रति नमोऽस्तु करना चाहिये।

तेन च पदिच्छिदवं गवखर्ह्येन सुज्भवन्।
किवीयम्मकारकस्सवि समवेगं संजानतेन।।

(मूलाराधना 612)

अर्थात् गुरु को प्रसन्न करते हुए अभिमान रहित होकर पूजा स्वीकार करनी चाहिए।

5

चतुर्विध संघ

1. चतुर्विध संघ के प्रमाण

आर्यिकाः श्राविकाश्चापि सत्कुर्याद गुणभूषणाः ।
चतुर्विधेऽपि संघे यत् फलत्युप्तमनल्पशः।।

(सागार धर्मामृत - 73)

अर्थात् उत्तम गुण ही हैं भूषण जिनके ऐसी आर्यिकाओं को और श्राविकाओं को भी सत्कृत करें क्योंकि चार प्रकार के संघ में भी दिया गया आहार आदि दान अधिक फल देता है।

चतुः सन्ध्यां (संघे) नरो यस्तु कुरुते भेदभावनाम्।
सः सम्यग्दर्शनातीतः संसारे संचरत्यरम्।।

(नीतिसार समुच्चय- 12)

अर्थात् जो मनुष्य मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका इस प्रकार चार प्रकार के संघ में भेदभाव रखता है वह उत्कृष्ट सम्यग्दर्शन से रहित होकर संसार में संसरण करता है।

णिग्गंथ अज्जियाओ सड्ढासड्ढी य चउविहो संघो।
जे जे विराहिदा खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ।।

(कल्याणालोयणा - 31)

अर्थात् निर्ग्रन्थ मुनि, आर्यिका, क्षुल्लक और क्षुल्लिका, इस प्रकार चार प्रकार के संघों की जो विराधना हुई हो सभी दुष्कर्म मेरे मिथ्या हों।

चतुर्विध संघ का व्याख्यान आगम में दो प्रकार से प्राप्त होता है। भाव पाहुड टीका गाथा 78 में कहा है कि –

ऋषि मुनियत्यानगारः निवहः संघः (अथवा)
ऋष्यार्यिका श्रावक श्राविका निवहः संघः।

(भावपाहुड गाथा टीका 78)

1. ऋषियों, मुनियों, यतियों और अनगार का समूह चतुर्विध श्रमण संघ है। या

2. ऋषि, आर्यिका, श्रावक, श्राविकाओं का समूह चतुर्विध संघ है।

प्रश्न – ऋषि, मुनि, यति, अनगार की परिभाषा बताइये।

उत्तर – ऋषि – **स्यादृषिः प्रसूतार्द्धिरारुढ़ाः।**

(प्रवचनसार तात्पर्य वृत्ति गाथा 249)

ऋद्धि प्राप्त साधु को ऋषि कहते हैं।

मुनि – मुनयःअवधिमनः पर्यय केवलिनश्च।

(प्रवचनसार तात्पर्य वृत्ति गाथा 249)

अवधिज्ञानी, मन:पर्ययज्ञानी और केवलज्ञानियों की मुनि संज्ञा है।

यति – यतय उपशमक क्षपक श्रेण्यारुढाः।

(प्रवचनसार तात्पर्य वृत्ति गाथा 249)

जो उपशम क्षपक श्रेणी में विराजमान होते हैं उन्हें यति कहते हैं।

अथवा

इन्द्रियजयेन शुद्धात्मस्वरूपप्रयत्नपरो यतिः।

(प्रवचनसार तात्पर्य वृत्ति गाथा 69)

अर्थात्, जो इंद्रिय जय के द्वारा शुद्धात्म स्वरुप में प्रयत्नशील होते हैं वे यति कहे जाते हैं।

अनगार- 1. परिग्गहा रहिय खलु णिरायारं।

(चारित्र पाहुड गाथा 21)

परिग्रह से रहित निरागार होते हैं।

2. महाव्रतोऽनगारः स्यात्।

(तत्वसार 4/7)

महाव्रती अनगार हैं।

3. अनगाराः सामान्य साधवः कस्मात्? सर्वेषां सुख-दुःखादि विषये समता परिणामोऽस्तीति।

(प्रवचनसार तात्पर्य वृत्ति गाथा 249)

अनगार सामान्य साधु को कहते हैं क्योंकि सर्व ही सुख व दुःख रूप विषयों में उसके समता परिणाम रहता है।

उपरोक्त प्रमाण से सिद्ध है कि वर्तमान पंचमकाल में ऋषि-मुनि और यति नहीं होते। अतः तदनुरुप चतुर्विध श्रमण संघ नहीं होता है बल्कि मुनि-आर्यिका, श्रावक-श्राविका रूप ही चतुर्विध संघ होता है।

1. चतुर्विध संघ एक साथ रह सकता है :-

प्रश्न – चतुर्विध संघ क्या एक साथ रह सकता है ?

उत्तर – हाँ, रह सकता है। प्रत्येक तीर्थंकर से दीक्षित चतुर्विध संघ एक साथ ही रहता है।

यथा - ऋषभनाथ भगवान के समवशरण में 84 गणधर थे। 84,000 मुनि, 3,50,000 आर्यिका, 3,00,000 श्रावक, 5,00,000 श्राविकाएँ थीं।

भगवान महावीर स्वामी के 11 गणधर, 300 श्रुतकेवली, 9,900 शिक्षक-मुनि, 1300 अवधिज्ञानी मुनि, 700 केवलज्ञानी मुनि, 900 विक्रिया ऋद्धिधारी मुनि, 500 मनःपर्ययज्ञानी, 400 अनुत्तरवादी मुनि, कुल 14,000 मुनि, 36,000 आर्यिका, 1,00,000 श्रावक, 3,00,000 श्राविकाएँ थीं।

(तिल्लोय पण्णत्ति अधिकार - 249)

(1) चतुर्विध संघ तीर्थंकरों के साथ भी रहता था :-

प्रश्न - क्या उक्त चतुर्विध संघ तीर्थंकरों के साथ भी विहार करता है ?

उत्तर - हाँ, देखो उत्तर पुराण में कहा है कि-

देवा देव्योऽप्यसङ्ख्याताःस्तिर्यगङ्गिनः।
एवं द्वादशभिर्युक्तो गणैधर्मोपदेशनम्।।
कुर्वाणः पञ्चभिर्मासैर्विरहि कृतसप्ततिः।
संवत्सराणां मासं संहृत्य विहृतिक्रियाम् ।।

(उत्तरपुराण पर्व -73 श्लोक 154-155)

अर्थात् 12 सभाओं के साथ धर्मोपदेश करते हुए भगवान पार्श्वनाथ ने पाँच माह कम सत्तर वर्ष तक विहार किया।

पद्मपुराण में कहा है कि -

अवोचद भगवान् संघो वन्दनार्थ चतुर्विधः ।
समेदं प्रस्थितोऽवापदन्तिक ग्राम दर्शनम्।।

(पद्मपुराण पर्व 5 श्लोक-286)

अर्थात् भगवान अजितनाथ ने कहा कि एक बार चतुर्विध संघ सम्मेदशिखर जी वंदना के लिये जा रहा था.....। और भी देखें-

...द्वादशभिर्गणैः एभि धर्मोपदेशार्थं व्यहरद्विषयान् सुधीः ।

(उत्तरपुराण पर्व-65 श्लोक 44-45)

अर्थात् बारह सभाओं के साथ भगवान अरहनाथ ने धर्मोपदेश देने के लिये अनेक देशों में विहार किया।

(2) मुनिसंघ के साथ आर्यिकाएँ :-

प्रश्न– क्या आर्यिकाएँ मुनियों के संघ में भी रह सकती हैं?

उत्तर – हाँ। आदिपुराण में कहा है- आचार्यगण पोषण इस प्रकार करें -

श्रावकनार्यिका संघं श्राविकाः संयतानपि।
सन्मार्गे वर्तयत्ने गण पोषणमाचरेत्।।

(आदिपुराण पर्व 38/169)

अर्थात् वह प्रमुख आचार्य श्रावकों को, आर्यिका संघ को, श्राविकाओं को और संयमी साधु वर्ग को सन्मार्ग में प्रवृत्ति कराते हुए गण का पोषण करें।

(3) आर्यिकाएँ मुनि के लिये नमस्कार करें

प्रश्न – पुरानी दीक्षित आर्यिका नवदीक्षित मुनि को नमस्कार करें या नहीं?

उत्तर – मोक्षपाहुड की टीका में कहा है कि -

वरिस सय दिक्खियाए अज्जाए अज्ज दिक्खिओ साहू।
अभिगमण वंदण णमंसणेण विणएण सो पुज्जो ।।

(मोक्षपाहुड गाथा 12 टीका)

अर्थात् सौ वर्ष की दीक्षित आर्यिका के द्वारा भी आज के नवदीक्षित साधु अभिगमन, वंदन, नमस्कार व विनय से पूज्य हैं।

पंच छ सत्त हत्थे सूरि अज्झावगो य साधु य।
परिहरि ऊणज्जाओ गवासणेणेव वंदन्ति।।

(मूलाचार गाथा 195)

अर्थात् आर्यिकाएँ आचार्यों को पाँच हाथ दूर से, उपाध्यायों को छह हाथ दूर से तथा साधुओं को सात हाथ दूर से गवासन से बैठकर वंदना करती हैं।

(4) आर्यिकाओं द्वारा नमस्कार करने पर मुनि क्या कहें ?

प्रश्न – यदि आर्यिका मुनि को नमस्कार करें तो मुनि क्या कहें ?

उत्तर – मोक्षपाहुड की टीका में कहा है कि-

मुनि जनश्च स्त्रियाश्च परस्परं वंदनापि न युक्ता । यदि ता वन्दन्ते तदा मुनिभिर्नमोऽस्त्विति न वक्तव्यं किं तर्हि वक्तव्यं समाधि कर्मक्षयोस्त्वि ।

(मोक्ष पाहुड गा. 12 टीका)

अर्थात् मुनिजन व आर्यिकाओं के बीच वंदना युक्त नहीं है। यदि वे वंदन करें तो मुनि को उनके लिये नमोऽस्तु ऐसा नहीं बोलना चाहिये। तो फिर क्या बोलना चाहिये ? समाधि कर्मक्षयोऽस्तु ऐसा कहना चाहिये।

(5) आर्यिकाएँ भी विनय की पात्रा हैं -

उत्तर– हाँ, हैं यथा -

राइणिय अराईणीएसु अज्जासु चेव गिहवग्गे ।
विणओ जहारिहो सो कायव्वो अप्पमत्तेण ।।

(भगवती आराधना गाथा 27)

अर्थात् 'राईणि' उत्कृष्ट परिणाम वाले मुनि को 'अरायणीय' न्यून भूमिका वाले अर्थात् आर्यिका व श्रावक तथा गृहस्थ आदि इन सबका उन उनकी योग्यतानुसार आदर व विनय करना चाहिये।

नारीभ्योऽप व्रताढ्याभ्यो न निषिद्ध जिनागमे।
देयं सम्मान दानादि लोका न मभिरुद्धतः।।

(पंचाध्यायी/उत्तरार्द्ध श्लोक 735)

अर्थात् जिनागम में व्रतों से परिपूर्ण स्त्रियों का भी सम्मान आदि करना निषिद्ध नहीं है। इसलिये उनका भी लोक व्यवहार के अनुसार सम्मान आदि करना चाहिये।

(6) आर्यिका वंदनीय है :-

प्रश्न– मोक्षमार्ग में वंदनीय कौन है ?

उत्तर – इस प्रकार के उत्तर में कहा है कि -

आर्यिकाएँ भी वंदनीय हैं :-

आर्यिकाओं को वंदामि / नमस्कार शब्दों का प्रयोग भी आगम में कहीं किया गया है क्या ?

अभिवन्द्य, तदापृच्छदार्यिके केन हेतुना।
इमे परम रुपिण्यौ स्थिते तपसि दुष्करे ।।

(हरिवंश पुराण सर्ग 64 श्लोक 123)

अर्थात् जिनदत्त की पत्नी सुकुमारी ने क्षांता नामक आर्यिका की अभिवंदना की। पद्म पुराण में भी कहा गया है-

अधिगम्य सतीं सीतां भक्तिस्नेहान्वितो नमत्।
नारायणोऽपि सौम्यात्मा प्रणम्य रचिताऽञ्जलिः।।
अभ्यनन्दयादार्यां पद्मनाभमनुब्रुवन्।
धन्या भगवति त्वं नो वन्द्या जाता सुचेष्ट्ता।।
शिलाचलेश्वरं या त्वं क्षितिवद्वहसेऽधुना।

(पद्म पुराण पर्व 107 श्लोक 41-43)

राम ने सीता (आर्यिका) के पास जाकर भक्ति और स्नेह के साथ उसे नमस्कार किया। अर्थात् राम के साथ सौम्यहृदय लक्ष्मण ने भी हाथ जोड़कर प्रणाम कर आर्या सीता को अभिवंदन किया।

राम और लक्ष्मण ने आर्यिका सीता से कहा-

हे भगवती ! तुम धन्य हो, उत्तम चेष्टा की धारक हो और इस समय पृथ्वी के समान शीलरूपी सुमेरु को धारण कर रही हो, अतः हम सबकी वंदनीय हो।

इह वनदेवता स्थितवतीयमिति प्रणतैः,
शबरशतैरितिस्ववरदानमयाच्यत सा।
भगवति यः प्रसादनिरुपद्रविणो द्रविणं
यद्विलभेमहि प्रथमकिङ्करका वयकम्।।

(हरिवंश पुराण सर्ग 49 श्लोक 28)

प्रतिमायोग में स्थित उस (श्रीकृष्ण की बहिन) आर्यिका को देखकर भीलों ने उसे वनदेवी समझकर नमस्कार किया तथा प्रार्थना की कि हे भगवती ! यदि आपके प्रसाद से हम लोग निरुपद्रव रहकर धन प्राप्त कर सके तो हम आपके पहले दास होंगे। आर्यिका माताएँ पूजा की भी पात्रा हैं।

(7) आर्यिकाएँ भी पूजा के योग्य हैं :-

आगम में आर्यिकाओं की पूजा का वर्णन मिलता है।

देखो, हरिवंशपुराण में कहा है-

स्वजनकृताभिनिष्क्रमण पूजनिकां जनिकां।

(हरिवंश पुराण सर्ग 49 श्लोक 24)

श्रीकृष्ण की छोटी बहिन जिसने गणिनी सुव्रता आर्यिका से दीक्षा ली थी, उसकी कुटुम्बी जनों ने पूजा की थी।

वरधर्मापि सर्वेण संघेन सहितापरम्।
राघवेण ससीतेन नीता तुष्टेन पूजनम्।।

(पद्म पुराण पर्व 37 श्लोक 138)

अर्थात् मंदिर में सर्व संघ के साथ जो वरधर्मा नाम की गणिनी ठहरी हुई थी, राम ने सीता के साथ संतुष्ट होकर उनकी भी उत्तम पूजा की।

(8) आर्यिकाओं के देह की पूजा :-

गणिनीं संयमं श्रित्वा संन्यस्येशान संज्ञके।
नाके निलिम्पो भूत्वा, स्वकाय पूजार्थ मागतम् ।।

(उत्तर पुराण पर्व 63 श्लोक 113)

जम्बूद्वीप के सुकच्छ देश में विजयार्द्ध की उत्तर श्रेणी में शुक्रप्रभ नगर में विद्याधर राजा (इन्द्रदत्त तथा उनकी यशोधरा रानी थी उनके) वायुवेग था। सुकान्ता उसकी रानी का नाम था, दोनों के शांतिमति नामक पुत्री थी।

चक्रवर्ती वज्रायुध द्वारा अपना पूर्वभव सुनकर उसे वैराग्य हो गया। उसने सुलक्षणा आर्यिका से दीक्षा ले ली और अंत में संन्यास मरण कर ऐशान स्वर्ग में देव हुई। वह अपने पूर्वभव के आर्यिका शरीर की पूजा के लिये आई थी।

❋ ❋ ❋

उत्तम पात्र विषयक भक्ति आदि के विषय में किसी भी प्रकार का विचार भेद नहीं है। अतः उनके विषय में विशेष रूप से मैं कुछ नहीं करूँगा। किन्तु विचार भेद है तो आर्यिका तथा ऐलक क्षुल्लक आदि के विषय में है अतः इसी विषय की प्रधानता से मैं अपनी बात प्रारम्भ करूँगा।

6

आर्यिका-प्रव्रज्या निषेध-विधि

तीर्थंकरोपदिष्ट श्रमण परम्परा में श्रमण और श्रमणी तथा श्रावक और श्राविका धर्म का ऐतिहासिक वर्णन-

अनादिकाल से श्रमण और श्रमणी तथा श्रावक और श्राविका रूप चतुर्विध संघ की शाश्वती परम्परा आज तक चली आ रही है और आगे भी चलती ही रहेगी।

आगम ग्रंथों में उसका सांगोपांग एवं सविस्तृत वर्णन है किन्तु जैसे मुनि चर्या की प्रधानता से मूलाचार आदि ग्रंथ हैं वैसे ही श्रमणी आर्यिका चर्या के कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं हैं। इसी प्रकार जिस तरह श्रावक चर्या की प्रधानता से रयणसार, उपासकाध्ययन, रत्नकरण्ड श्रावकाचार आदि हैं वैसे श्राविकाओं की चर्या का वर्णन करने वाले कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं हैं।

प्रायः सभी पूर्वाचार्यों ने मुनियों की चर्या और आर्यिका चर्या समान होने से मूलाचार में ही आर्यिका चर्या का वर्णन किया है, स्वतंत्र ग्रंथ नहीं बनाया। इसी प्रकार श्रावकों की चर्या की तरह श्राविका चर्या समान होने से उपासकाध्ययन आदि श्रावकाचार में ही श्राविका चर्या का वर्णन किया, स्वतंत्र ग्रंथ रूप में नहीं।

पर उक्त श्रमणी एवं श्राविका चर्या का एक साथ एक स्थानों में वर्णन न होने से अथवा श्वेताम्बरों में स्त्री मुक्ति खण्डन की दृष्टि से आचार्यों ने विभिन्न शब्दों से उनका खण्डन किया, पर उनकी विवक्षा न समझने का कारण अथवा आगम का सांगोपांग स्वाध्याय न होने के कारण अथवा संघवाद, परम्परावाद के कारण कतिपय मतभेद भी उत्पन्न हो गये।

पर आगम में उसकी विधि निषेध में कहाँ क्या प्रमाण है ? इसकी ही यहाँ विवेचना की गई है। कौन क्या कहता है ? किनकी क्या पद्धतियाँ हैं इसे यदि हम आगम के परिपेक्ष्य में देखें तो सभी प्रश्नों के सप्रमाण समाधान हो जाते हैं। जिनवाणी के प्रत्येक वाक्य हमें प्रमाणित हैं उन पर हमारी श्रद्धा है। उसे ही हम सविनय मानते हैं तथा उनकी अवमानना से हम सदैव सावधान रहते हैं। हम सर्वप्रथम देखते हैं।

1. प्रव्रज्या :-

प्रव्रज्या का वर्णन आगम में दो प्रकार से मिलता है।

1. निर्ग्रन्थ प्रव्रज्या 2. सग्रन्थ प्रव्रज्या

आर्यिका व्रत स्त्री पर्याय की सर्वोच्च साधना है, सर्वोच्च व्रत है, सर्वोच्च तप है तथा सर्वोच्च पद है। इससे बड़ा उनके अन्य कुछ भी संभव नहीं। अतः उनके निर्ग्रन्थ प्रव्रज्या नहीं, किन्तु सग्रन्थ प्रव्रज्या होती है। यद्यपि फिर भी दिगम्बर व श्वेताम्बर में स्त्री मोक्ष को लेकर दो मत हैं । दिगम्बर मत स्त्रियों को उसी पर्याय से मोक्ष नहीं मानता क्योंकि उनके उत्कृष्ट संहनन नहीं पाया जाता, इसलिये उनके उत्कृष्ट ध्यान नहीं हो सकता तथा उनके निर्ग्रन्थ प्रव्रज्या नहीं हो सकती है। क्योंकि उनके विभिन्न स्थानों में सूक्ष्म जीव पाये जाते हैं। प्रत्येक माह में मासिक धर्म होता है, शरीर वीभत्स होता है तथा बिना वस्त्र के शील की रक्षा कर पाना कठिन होता है, हीन संहनन होता है। अतः अहिंसा आदि महाव्रत पूर्णरूपेण नहीं पाये जाते हैं। अतः उनकी निर्ग्रन्थ प्रवज्या नहीं होती है और बिना निर्ग्रन्थ प्रव्रज्या के सम्पूर्ण कर्मों की संवर व निर्जरा नहीं हो सकती है तथा इसके बिना मोक्ष भी नहीं हो सकता है।

पर श्वेताम्बर मत में स्त्रियों को हीन संहनन तो माना गया है तथा हीन संहनन वालों के उत्कृष्ट ध्यान नहीं होता फिर भी मोक्ष मानते हैं जो कि परस्पर विरुद्ध हैं।

इसीलिए पूज्य आचार्यश्री कुन्दकुन्द देव ने स्त्री मुक्ति का खण्डन करने के लिए उपरोक्त अनेक तर्क दिये हैं । लेकिन इसका मतलब यह भी नहीं है कि उनमें सर्वथा प्रव्रज्या, दीक्षा, संयम, महाव्रत, संवर, निर्जरा आदि नहीं है, लेकिन निर्ग्रंथ प्रव्रज्या नहीं किन्तु आर्यिका प्रव्रज्या तो होती ही है, सकल संयम नही किन्तु देश संयम होता है। अनुपचरित महाव्रत नहीं किन्तु उपचरित महाव्रत है। सभी कर्मों की निर्जरा नहीं है, परंतु पंचम गुणस्थान से संबंधित संवर-निर्जरा अवश्य होती है। यदि मोक्ष नहीं है तो मोक्ष का मार्ग है। पूर्ण रत्नत्रय तो नहीं लेकिन एकदेश रत्नत्रय तो पाया जाता है।

इसी बात की यहाँ विवेचना की गई है।

रत्नत्रय आत्मा का धर्म है, गुण है, चाहे वह पूर्ण रूप से हो या एक देश, पर गुण तो गुण ही है और -

गुणाः सर्वत्र पूज्यते

गुण सभी जगह पूज्य होते हैं।

वंदे तद्गुण लब्धये

(तत्त्वार्थसूत्र मंगलाचरण)

गुण वंदनीय हैं।

(1) निर्ग्रन्थ प्रव्रज्या का स्वरूप -

पव्वज्जा सव्व संग परिचत्ता ।।25।।

गिहगन्थमोहमुक्का बावीसपरीसहा जियकसाया।
पावारंभविमुक्का पव्वज्जा एरिसा भणिया ।।45।।

धणधण्णवत्थदाणं हिरण्णसयणासणाइ छत्ताइ ।
कुद्दाण विरहरहिया पव्वज्जा एरिसा भणिया ।।46।।

सत्तूमित्ते य समा पसंसणिंद अलद्धिलद्धिसमा ।
तणकणए समभावा पव्वज्जा एरिसा भणिया ।।47।।

उत्तममज्झिमगेहे दारिद्दे ईसरे णिरावेक्खा।
सव्वत्थ गिहिदपिंडा पव्वज्जा एरिसा भणिया ।।48।।

णिग्गंथा णिस्संगा णिम्माणासा अराय णिद्दोसा।
णिम्मम णिरहंकारा पव्वज्जा एरिसा भणिया ।।49।।

णिण्णेहा णिल्लोहा णिम्मोहा णिव्वियार णिक्कलुसा।
णिब्भय णिरासभावा पव्वज्जा एरिसा भणिया ।।50।।

जहजायरुवसरिसा अवलंबियभुअ णिराउहा संता।
परकियणिलयणिवासा पव्वजा एरिसा भणिया ।।51।।

उवसमखमदमजुत्ता सरीरसकारवज्जिया रुक्खा।
मयरायदोस रहिया पव्वज्जा एरिसा भणिया ।।52।।

विवरीयमूढभावा पणट्ठकम्मट्ठ णट्ठमिच्छत्ता।
सम्मत्तगुण विसुद्धा पव्वज्जा एरिसा भणिया ।।53।।

जिणमग्गे पव्वज्जा छहसंहणणेसु भणिय णिग्गन्था।
भावन्ति भव्वपुरिसा कम्मक्खयकारणे भणिया ।।54।।

तिलतुसमत्तनिमित्त समबाहिरग्गन्थसंगहो णत्थि।
पव्वज्ज हवइ एसा जह भणिया सव्वदरसीहिं ।।55।।

उवसग्गपरिसहसहा णिज्जणदेसेहि णिच्च अच्देइ।
सिल कट्ठे भूमितले सव्वे आरुहइ सव्वत्थ ।।56।।

पसुमहिलसंढसंगं कुसीलसंगं ण कुणइ विकहाओ ।
सज्झाय झाणजुत्ता पव्वजा एरिसा भणिया ।।57।।

तववयगुणेहिं सुद्धा संजमसम्मत्तगुण विसुद्धा य ।
सुद्धा गुणेहिं सुद्धा पव्वजा एरिसा भणिया ।।58।।

एवं आयत्तणगुणपज्जत्ता बहुविसुद्ध सम्मत्ते
णिग्गन्थे जिणमग्गे संखेवेणं जहाखादं ।।59।।

(बोध पाहुड गाथ 25, 45-59)

उत्तर- सम्पूर्ण परिग्रह से रहित प्रव्रज्या होती है।

घर, परिग्रह, पाप, कषाय से रहित हो 22 परिषहों को सहना प्रव्रज्या है।

धन-धान्य, वस्त्र, सोना, चाँदी, शय्या, आसन, छत्र आदि के दान से रहित

शत्रु, मित्र, प्रशंसा, निंदा, लाभ-अलाभ, तृण-कनक में समता रखने वाली प्रव्रज्या है।

उत्तम, मध्यम, गृह, निर्धन, धनवानों के घर से निरपेक्ष समस्त योग्य घरों में आहार ग्रहण करने वाली प्रव्रज़्या है। निर्ग्रन्थ, निस्संग, निर्मान, निराशा, निराग, निर्दोष, निर्मम, निरहंकार रूप प्रव्रज्या कही गई है।

निस्नेह, निर्लोभ, निर्मोह, निर्विकार, निष्कलुष, निर्भय, निराश रुप प्रव्रज्या है।

यथाजात रूप सदृश जिसमें भुजायें नीचे की ओर लटकी हों निरायुध, शान्त, दूसरों के द्वारा बनाये स्थानों में जिसमें रहना होता है यह प्रव्रज़्या है।

उपशम, क्षमा और इंद्रियों के दमन के साथ, शरीर संस्कार के बिना रुक्ष और मद, क्रोध, द्वेष या दोष के बिना प्रव्रज्या है। जिसमें अष्टकर्म, मिथ्यात्व का नाश हो और सम्यत्क्व रूप गुण से शुद्ध हो, वही प्रव्रज्या है।

छहों संहनन वालों को परिग्रह रहित, कर्मक्षय के कारण स्वरूप प्रव्रज्या है।

जिसमें तिलतुष मात्र भी परिग्रह नहीं है ऐसी प्रव्रज़्या मानी गई है। उपसर्ग-परिषह से युक्त, निर्जन स्थान वाली शिला, काष्ठ और भूमितल से आरूढ़ जिसे धारण करते हैं वह प्रव्रज्या है।

पशु, महिला, नपुंसक तथा कुशील मनुष्यों के संग रहित, विकथा रहित, स्वाध्याय, ध्यान लीन से युक्त प्रव्रज्या होती है।

तप, व्रत, गुणों से शुद्ध संयम, सम्यक्त्व गुणों और मूलगुणों में निर्दोष प्रव्रज्या होती है।

शुद्ध समभाव वाले मुनि को आत्म-गुणों का पूरा एहसास होता है। (बोध पाहुड 25, 35, 46-59) महापुराण में प्रव्रज्या के 27 सूत्र कहे गये हैं -

इस प्रकार निर्ग्रन्थ दिगम्बर (नग्न) प्रव्रज्या का स्वरूप है। यह प्रव्रज्या निर्विकल्प धर्मध्यान, शुक्लध्यान, सर्वकर्मों का संवर, निर्जरा और मोक्ष का वास्तविक कारण मानी जाती है।

श्वेताम्बर मत में स्त्रीमुक्ति मानी गई है। अतः इस बात का खण्डन करने हेतु ही दिगम्बर जैनाचार्य ने स्त्रियों (आर्यिकाओं) को प्रव्रज्या, नग्न दीक्षा, ध्यान, संवर, निर्जरा एवं मोक्ष का निम्न प्रकार से निषेध किया है।

2. स्त्रियों के निर्ग्रन्थ प्रव्रज्या (नग्न दीक्षा) का निषेध -

जाइ दंसणेण सुद्धा, उत्ता मग्गे ण सा वि संजुत्ता ।
घोरं चरिय चरितं इथीसु ण पावया भणिया ।।

(सूत्र पाहुड 25)

यदि सम्यग्दर्शन से शुद्ध, उत्तम मार्ग से सहित तथा घोर चारित्र का आचरण करने वाली स्त्री को निर्ग्रन्थ-नग्न प्रव्रज्या नहीं कही गई है।

स्त्रियों में निर्वाण प्राप्ति के योग्य दीक्षा नहीं कही गई है। इस प्रकार इन गाथाओं के द्वारा श्वेताम्बरों के स्त्रीमुक्ति मत का खण्डन हो जाता है।

उक्त सभी कथन का तात्पर्य यही निकला कि श्री कुन्दकुन्द आचार्य ने श्वेताम्बर मत में प्रचलित स्त्रीमुक्ति की मान्यता का विभिन्न हेतु से डटकर खण्डन किया और कहा कि दिगम्बर आम्नाय में भी आर्यिकाओं की नग्न दिगम्बर प्रव्रज़्या नहीं किन्तु एक साड़ी रूप प्रव्रज्या होती है। वे एक वस्त्र (साड़ी) में आहार करती हैं।

3. स्त्रियों में निर्ग्रन्थता नहीं होती -

ण च दव्वत्थीणं णिग्गंथत्तमत्थि चेलादि परिच्चाएण विणा तासिं भाव णिग्गंथत्त भावादो। ण च दव्वत्थि णवुंसय वेदोण चेलादि चागो अत्थि छेद सुत्तेणसह विरोहादो ।

(धवला जी पुस्तक, 2, 6, 12/114)

अर्थात् - द्रव्य स्त्रियों के निर्ग्रन्थता संभव नहीं है, क्योंकि उनके भाव निर्ग्रन्थता का अभाव है। द्रव्य स्त्रीवेदी व नपुंसकवेदी वस्त्रादि का त्याग करके निर्ग्रन्थ लिंग धारण कर सकते हैं । ऐसी आशंका भी ठीक नहीं है क्योंकि वैसा स्वीकार करने पर छेद सूत्र के साथ विरोध होता है।

4. आर्यिकाओं की प्रव्रज्या आदि के निषेध के मुख्य कारण:-

यदि आर्यिकाओं को प्रव्रज्या, दीक्षा, संयम, महाव्रत, निर्जरा, ध्यान आदि पाया जाता है, वे वंदनीय हैं, पूजनीय हैं, तो फिर आचार्य कुन्दकुन्द देव ने उसका निषेध क्यों किया ?

परम पूज्य आचार्य भगवन् कुन्दकुन्द के समय में श्वेताम्बरों द्वारा स्त्री मुक्ति की विशेष चर्चा थी। यही कारण है कि आचार्यश्री कुन्दकुन्द ने उसका विभिन्न हेतुओं द्वारा खण्डन किया है।

आचार्य श्रुतसागर ने अष्टपाहुड टीका में स्पष्ट शब्दों में कहा है कि अनया गाथाया सितपटानां मतं स्त्रीमुक्ति प्राप्ति लक्षणं परित्यक्तं भवति । मरुदेवी-ब्राह्मी-सुंदरी-यशस्वती-सुनंदा-सुलोचना-सीता-राजीमती-चंदना-अनंतमति द्रौपदीत्यादिकः स्त्रियः स्वर्गगता न तु मोक्षमिति।

(सूत्र पाहुड 25 टीका)

इस गाथा में श्वेताम्बरीय स्त्रीमुक्ति मत का निराकरण हो जाता है। मरूदेवी, ब्राह्मी, सुन्दरी, यशस्वती, सुनन्दा, सुलोचना, सीता, राजीमती, चंदना, अनन्तमती, द्रौपदी आदि स्त्रियाँ स्वर्ग गई हैं, मोक्ष नहीं गई हैं।

सितपटादीनां मार्गाः सर्वेऽपि उन्मार्गकाः कुत्सिता मिथ्यारूपा मार्ग जानीया विद्वद्भि-रित्यर्थः।

(सूत्र पाहुड गाथा टीका 23)

शेष श्वेताम्बरादि का मत उन्मार्ग रूप है, निन्दनीय है, मिथ्यारूप है। ऐसा विद्वानों को जानना चाहिए।

उपरोक्त वाक्यों से यही ध्वनित होता है, कि आचार्य कुन्दकुन्द ने श्वेताम्बर मत में मान्य स्त्रीमुक्ति का खण्डन विभिन्न हेतुओं द्वारा किया है, न कि आर्यिकाओं को प्रव्रज्या, दीक्षा, महाव्रत, संयम, ध्यान, निर्जरा तथा उनकी विनय, वंदना, पूजा आदि का। अन्यथा वे मूलाचार में उनकी समाचार विधि मुनियों की तरह न कहते और ना ही उनकी विनय आदि का वर्णन करते तथा उनके कालवर्ती या अनंतर कालवर्ती आचार्य

उनके कथन का विस्तार न करते तथा उनके उक्त कथन से भिन्न व्याख्यान नहीं करते। अथवा करते भी तो अन्य-अन्य आचार्यगण उसका कहीं तो खण्डन करते। पर कहीं भी खण्डन न कर विधिपक्ष का ही कथन किया कि आर्यिका की दीक्षा-प्रव्रज्या होती है। उनके महाव्रत, संयम, तप, ध्यान, निर्जरा होती है। वे भी विनय, पूजा और सम्मान की पात्र हैं।

5. स्त्रियों के सावरण प्रव्रज्या -

स्त्रियों में मुनि के समान नग्न प्रव्रज्या नहीं होती।

> ण विणा वट्टदि णारी एक्कं वा तेसु जीव लोयम्हि।
> ण हि संउडं च गत्तं तम्हा तासि च संवरणम्।।

(प्रवचनसार 224/5 की प्रक्षेपक गाथा)

यानी महिलाएँ कभी भी दोषमुक्त नहीं होतीं. इसलिए उनका शरीर सदा वस्त्र से ढका रहता है।

> लिंगं इत्थीणं हवदि भुंजइ पिंडं सु एयकालम्हि।
> अज्जिय वि एक्कवत्था वत्थावरणेण भुंजेइ ।।

(सूत्र पाहुड गाथा 22)

अर्थात् दिन में एक बार आहार करना, एक वस्त्र धारण करना तथा आहार करते समय भी वस्त्र को न उतारना ऐसा स्त्रीलिंग (आर्यिका पद) होता है।

सम्पूर्ण परिग्रह से रहित नग्न दिगम्बर मुद्रा को उत्सर्ग लिंग कहते हैं तथा वस्त्रादि परिग्रह सहित लिंग को अपवाद लिंग कहते हैं अर्थात्

> अच्चेलक्कं लोचो बोसट्ट सरीरदा य पडिलिहणं ।
> ऐसो हु लिंग कप्पो चदुव्विहो होदि उस्सग्गे ।।

(भगवती आराधना गाथा 80)

1. वस्त्रों का त्याग अर्थात् नग्नता।

2. लोच- हाथों से बाल उखाड़ना।

3. वोसट्ट शरीर- शरीर से ममत्व नहीं रखना।

4. प्रतिलेखन- प्राणी दया का चिन्ह मयूर पिच्छि हाथ में रखना। समाधि के क्षणों में आर्यिकाओं को भी औत्सर्गिक लिंग संभव है।

इत्थीवि य जं लिंगं दिट्ठं उस्सग्गियम् व इदरं वा।
तं तह होदि हु लिंगं परित्तमुवधिं करेंए।

(भगवती आराधना गाथा 81)

परमागम में स्त्रियों अर्थात् आर्यिकाओं का और श्राविकाओं का जो उत्सर्ग लिंग व अपवाद लिंग कहा है वह लिंग भक्त प्रत्याख्यान के समय समझना चाहिए अर्थात् आर्यिकाओं का भक्त प्रत्याख्यान (सल्लेखना) के समय विविक्त (एकान्त, मर्यादित) स्थान में होना चाहिए अर्थात् वह भी मुनिवत् नग्न लिंग धारण कर सकती हैं ऐसी आगमाज्ञा है।

आर्यिका श्वेत वस्त्र धारण करती है उसे ही निर्विकार वस्त्र कहा गया है। यथा -

अविकारवत्थवेसा जल्लमलविलित्तचत्तदेहाओ।
धम्मकुलकित्ति दिक्खापडिरुपविसुद्धचरियाओ।।

(मूलाचार गाथा 190)

अर्थात् वे आर्यिकाएँ निर्विकार वस्त्र सहित वेष धारण कर तथा पसीना व शरीरगत मैल से लिप्त शरीर वाली होती हैं। देह से विरक्त तथा धर्म कुल, कीर्ति, दीक्षादि से सहित विशुद्ध चर्या वाली होती हैं।

उक्त सभी कथन का तात्पर्य यही निकला कि श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने श्वेताम्बर मत में प्रचलित स्त्री मुक्ति की मान्यता का विभिन्न हेतुओं से डटकर खण्डन किया है और कहा कि दिगम्बर आम्नाय में भी आर्यिकाओं को नग्न दिगम्बर प्रव्रज्या नहीं, किन्तु एक साड़ी रूप प्रव्रज्या होती है। वे एक वस्त्र (साड़ी) में आहार करती हैं।

6. आर्यिकाओं के एक साड़ी होती है-

(अज्जिय वि एकवत्था) आर्यापि एकवस्त्रा भवति अपि शब्दात् क्षुल्लिकापि संख्यानवास्त्रेण सहिता भवति । (वत्थावरणेण मुंजेइ) भोजनकाले एक शाटकं धृत्वा भुङ्क्ते संख्यानमुपरितनवस्त्र मुतार्य भोजनं कुर्यादित्यर्थः ।।

(सूत्र पाहुड टीका 22)

आर्यिकाओं को भी एक वस्त्र होता है। 'अपि' शब्द से क्षुल्लिका भी एक साड़ी के साथ एक चादर से सहित होती है। आर्यिका आहार के समय एक साड़ी से युक्त ही आहार करती है किन्तु क्षुल्लिका आहार के समय चादर को उतारकर भोजन करें ऐसा अर्थ हुआ।

निश्चल (स्थिर एक आसन से) हस्त रूपी पात्र में आहार लेने रूप एक ही मोक्षमार्ग है, शेष सभी उन्मार्ग हैं। ऐसा जिनेन्द्र भगवान ने कहा है। (इस वाक्य से श्वेताम्बर मत का ही खण्डन किया है क्योंकि उनके यहाँ स्थिर एक आसन से आहार नहीं होता है। उनके साधु अनेक घर से लाते हैं तथा अनेक बार भोजन करते हैं व पाणी पात्र में आहार नहीं करते हैं। उनके अलग से लकड़ी का पात्र होता है। इस बात को ही ढाँकने के लिये वे बंद कमरे या पर्दे की ओट में आहार लेते हैं। पर आर्यिकाएँ स्थिर आसन से ही बैठकर आहार करती हैं तथा पाणी पात्र अर्थात दोनों हाथ में आहार करती हैं। अतः वो उत्कृष्ट अंतरात्मा रूप मोक्षमार्गी तो नहीं किन्तु मध्यम अंतरात्मा रूप तो मोक्षमार्गी हैं ही क्योंकि कहा है कि-

णिच्छिया दो इत्थीणं सिद्धी ण हितेन जम्मणा दिट्ठा ।
तम्हा तप्पडिरुवं वियप्पिय लिंग मित्थीणं ।।

(प्रवचनसार गाथा 224/2 की प्रश्नोत्तरी गाथा)

क्योंकि स्त्रियों के निश्चय से उसी जन्म से सिद्धि नहीं कही गयी है। स्त्रियों का लिंग सावरण कहा गया है।

अप्रमादेवाषाद् द्रव्यस्त्रीणां निवृत्तिः सिद्धयेदिति चेन्न सवासस्त्वाद प्रत्याख्यान-गुणस्थितानां संयमानुपपत्तेः। भाव संयमास्तासां सवाससामप्य विरुद्ध इति चेत् । न तासां भाव संयमोऽस्ति भायासंयमा विनाभावि वस्त्राद्युपादानान्यथानुपपत्तेः।

(धवला जी पु. 1/1, 4 सूत्र 93/335)

प्रश्न– इसी आगम से द्रव्य स्त्रियों का मुक्ति जाना भी सिद्ध हो जायेगा ?

उत्तर – नहीं, क्योंकि वस्त्र सहित होने से उनके संयतासंयत गुणस्थान होता है। अतएव उनके सकल संयम की उत्पत्ति नहीं हो सकती है।

प्रश्न – वस्त्र सहित होते हुए भी उन द्रव्य स्त्रियों के भाव रूप सकल संयम होने में कोई विरोध नहीं आना चाहिये ?

उत्तर – उनके भाव (सकल) संयम नहीं है क्योंकि भावरूप सकल संयम मानने पर उनके भाव असंयम का अविनाभावी वस्त्र आदि का ग्रहण करना नहीं बन सकता है। (पंचम गुणस्थान का नाम संयमासंयम है।)

जो ण विरदो दु भावो थावर वह इंदित्थ दोसाओ।

तसवह विरओ सोच्चिय संजमासंजमो दिट्ठे ।।

(पंच संग्रह प्राकृत. 1 गाथा 134)

भावों से स्थावर वध और पाँचों इंद्रियों के विषय संबंधी दोषों से विरक्त न होने से किन्तु त्रस वध से विरत होने को संयमासंयम कहते हैं।

वे वस्त्र मात्र परिग्रह से युक्त होती हैं यथा-

संवृता श्रमणी साध्वी वस्त्र मात्र परिग्रहं ।

(पद्म पुराण पर्व 103/79)

सीता एक वस्त्रधारी थी।

विकार (वर्ण) से रहित श्वेत वस्त्र युक्त वेष रहता है।

(मूलाचार गाथा 190)

7. आर्यिका प्रव्रज्या का प्रमाण -

आगम ग्रन्थों में आर्यिकाओं के भी आर्यिका प्रव्रज्या मानी गई है।

अतः आर्यिकाओं की सावरण प्रव्रज्या होती है।

(सुदर्शन चरित्र सर्ग 11 श्लोक 89-90)

हनुमान की स्त्रियों ने प्रव्रज्या धारण की।

(पद्म पुराण पर्व 113 श्लोक 39-41)

ब्राह्मी सुन्दरी दोनों कुमारियों ने स्त्रियों में प्रधान प्रव्रज्या को धारण किया।

(हरिवंश पुराण सर्ग. 9 श्लोक 217)

सुलोचना ने ब्राह्मी सुन्दरी के पास जाकर प्रव्रज्या धारण की।

(हरिवंश पुराण सर्ग. 12 श्लोक 51)

सुमति ने सुव्रता आर्यिका के समीप प्रव्रज्या धारण की।

(उत्तर पुराण पर्व 63 श्लोक 23-24)

वसुदेव की स्त्रियों तथा कृष्ण की पुत्रियों ने भी प्रव्रज्या धारण की।

(हरिवंश पुराण सर्ग, 61 श्लोक 10)

सुमति गणिनी ने प्रव्रज्या धारण की।

(उत्तर पुराण पर्व 63 श्लोक 175)

बहुत काल से प्रव्रजित आर्यिका.....

(मूलाचार टीका गाथा 911)

स्त्री प्रव्रजितयो.....

(राजवार्तिक अध्याय 7 सूत्र 16)

इत्यादि प्रकार से स्त्रियों की प्रव्रज्या का अनेक ग्रंथों में वर्णन मिलता है।

8. आर्यिका दीक्षा के प्रमाण -

इसी प्रकार उनके दीक्षा शब्द का भी उल्लेख है :-

विहार (रंग) रहित वस्त्र, रूप, वेष से युक्त पसीना तथा मैल से युक्त देह वाली वे आर्यिका धर्म, कुल, कीर्ति, दीक्षा की प्रतिरूप विशुद्ध चर्या वाली होती हैं।

(मूलाचार गाथा 190)

सौ वर्ष की दीक्षित आर्यिका

(प्रवचनसार/तात्पर्य वृत्ति 224-8)

सीता, रुक्मिणी, कुन्ती, द्रौपदी आदि ने जिनदीक्षा प्राप्त करके

(प्रवचनसार/तात्पर्य वृत्ति 224-8)

माता दान्तमती से दीक्षित

(उत्तर पुराण सर्ग 59 श्लोक 212)

सीता ने पृथ्वीमती आर्यिका से दीक्षा ली

(पद्म पुराण पर्व 105 श्लोक 78)

सेठानी यमुनादत्ता ने जिनदत्ता आर्यिका से दीक्षा ली

(उत्तर पुराण पर्व 71 श्लोक 206)

भरत की छोटी बहन ने दीक्षा धारण की

(आदि पुराण सर्ग 24 श्लोक 175)

* * *

7

आर्यिका दीक्षा प्रदाता

1. तीर्थंकरों से आर्यिका दीक्षा

(1) श्री आदिनाथ तीर्थंकर से दीक्षा -

भरतस्यानुजा ब्राह्मी, दीक्षित्वा गुर्वनुग्रहात्।
गणिनी पद मार्याणां सा भेजे पूजितामरैः ।।

(आदि पुराण पर्व 24/175)

अर्थात् ब्राह्मी ने भगवान ऋषभदेव की साक्षी में आर्यिका व गणिनी पद की दीक्षा ली थी तथा सब देवों द्वारा पूजित हुई थी

ब्राह्मी च सुंदरी चोभे कुमार्यौ धैर्य संगते ।
प्रव्रज्य बहु नारीभिरार्याणां प्रभुतां गते।।

(हरिवंश पुराण सर्ग 9 श्लोक 217)

धैर्य से युक्त ब्राह्मी और सुन्दरी नामक दोनों कुमारियाँ अनेक स्त्रियों के साथ दीक्षा ले आर्यिकाओं की स्वामिनी बन गयीं।

(2) श्री सुपार्श्वनाथ तीर्थंकर से दीक्षा -

मीनार्याद्यार्यिकात्रिंशत् सहस्रान्तत्रिलक्षकः।

(उत्तर पुराण पर्व 53 श्लोक 50)

मीनार्या को आदि लेकर तीन लाख तीस हजार आर्यिकाएँ उनके साथ रहती थी।

(3) श्री नेमिनाथ तीर्थंकर से दीक्षा-

षट् सहस्रनृपस्त्रीभिः सह राजीमती तदा।
प्रव्रज्याग्रेसरी जाता सार्यिकाणां गणस्य तु।।

(हरिवंश पुराण सर्ग 57 श्लोक 146)

उसी समय छह हजार रानियों के साथ दीक्षा लेकर राजीमती आर्यिकाओं के समूह की प्रधान बन गयी।

राजीमत्याश् चारुराजीवलक्ष्मी-राजीमत्याः पाणिपादस्य कान्त्या।
तापस्यान्तं ज्ञातयोऽवेत्य वृत्तं तापस्यान्तं मानसस्यापुरन्ते।।

(हरिवंश पुराण सर्ग 55 श्लोक 134)

हाथों और पाँवों की कांति से सुन्दर कमल सम्बंधी शोभा के समूह को धारण करने वाली राजीमति ने जो व्रत-चारित्र धारण किया है वह उसके ताप दुःख का अन्त करने वाला है। ऐसा जानकर अन्त में उसके कुटुम्बीजन मानसिक सन्ताप के अन्त को प्राप्त हुए।

रुक्मिणीसत्यभामाद्या महादेव्योऽष्ट सस्नुषाः।
लब्धानुज्ञा हरेः स्त्रीभिः सपत्नीभिः प्रवव्रजुः।।

(हरिवंश पु. सर्ग 61 श्लोक 40)

रुक्मिणी और सत्यभामा आदि आठ पट्टरानियों ने भी आज्ञा प्राप्त कर पुत्रवधुओं तथा अन्य सौतों के साथ दीक्षा धारण कर ली।

देव्यः शिवादयो बह्वयो देवकीं रोहिणीं विना।
वासुदेवस्त्रियो विष्णोः कन्याश्चपि प्रवव्रजुः।।

(हरिवंश पुराण सर्ग 61 श्लोक 10)

शिवा आदि देवियों देवकी और रोहिणी को छोड़कर वसुदेव की अन्य स्त्रियाँ तथा कृष्ण की पुत्रियों ने भी दीक्षा धारण कर ली।

प्रद्युम्नादि सुता देव्यो रुक्मिण्याद्याश्च चक्रिणम् ।
बंधूश्चा पृच्छय तैर्मुक्ताः प्रत्यपद्यन्त संयमम् ।।

(उत्तर पुराण पर्व 72 श्लोक 188)

यह सुनकर प्रद्युम्न आदि पुत्रों और रुक्मिणी आदि देवियों ने चक्रवर्ती श्रीकृष्ण तथा अन्य भाइयों से पूछा और उनकी आज्ञा के अनुसार संयम धारण किया।

(4) श्री वीरप्रभु तीर्थंकर से दीक्षा -

प्रापितै तत्पुरं वीरं वदिन्तुं निजबान्धवान्।
विसृज्य जातनिर्वेगा गृहीत्वात्रैव संयमम्।।
तपोवगममाहात्म्यादध्यस्थाद्गणिनीपदम्।
इतीहजन्मसंबन्धं श्रुत्वा तत्रानुचेटकः।।

(उत्तर पुराण पर्व 75 श्लोक 68-69)

उसी नगर में सब लोग महावीर स्वामी की वन्दना के लिए गये थे। चन्दना भी गई थी। वहाँ वैराग्य उत्पन्न होने से उसने अपने सब भाई बन्धुओं को छोड़कर दीक्षा धारण कर ली और तपश्चरण तथा सम्यग्ज्ञान के माहात्म्य से उसने उसी समय गणिनी का पद प्राप्त कर लिया।

2. केवली से दीक्षा के प्रमाण -

नरेन्द्रपत्न्यः श्रुतिशीलभूषा निर्वेदसंवर्धित् धर्मरागाः।
विशुद्धिमत्यः प्रतिपन्नदीक्षास्तादा बभूवुः परिपूर्णकामाः ।।
दीक्षाधिराज्यश्रियमभ्युपेता अनर्घ्यसत्संयमरत्नभाजः।
प्रीतिं परां प्रादुरदीनभावा दारिद्रययोषा इव रत्नलाभात्।।

(वरांगचरित्र अ. 31 श्लोक 1,2)

दीक्षा को धारण करके ही भूतपूर्व सम्राट वरांग की रानियों का अन्तिम महामनोरथ पूर्ण हो गया था। शास्त्रों का ज्ञान तथा शीलों का निरतिचार आचरण ही उनके सच्चे आभूषण हो गये थे। उनका वैराग्य मौलिक तथा स्थायी था। इसलिए उनके द्वारा उनके धार्मिक अनुराग को पूर्ण प्रेरणा हुई थी तथा उनकी निर्मल मति सर्वथा सत्य पथ पर ही चल रही थी।

प्रव्रज्या ग्रहण करते ही उन्हें दिगम्बर दीक्षा रूपी विशाल साम्राज्य की अनुपम लक्ष्मी प्राप्त हो गई थी। इस राज्य के साथ-साथ उन्हें संयम रूपी महारत्न भी मिले थे। जिनका मूल्य आंकना ही असंभव था। इस लाभ से वे परम प्रसन्न भी तथा उनके विचार तथा आचार में उस समय अबला सुलभ दीनता न थी। उनकी वही अवस्था थी जो कि दरिद्र स्त्री को अनायास रत्न मिल जाने पर होती है।

तपोधनानाममितप्रभावा गणाग्रणी संयमनायिका सा ।
मुनीन्द्रवाक्याच्छ्रमणार्जिकाभ्यो दिदेश धर्मं च तपोविधानम् ।।

(वरांगचरित्र अ. 31 श्लोक 6)

श्री वरदत्त केवली के संघ में एक प्रधान आर्यिका थी जिनका तपजन्य प्रभाव समस्त मुनियों तथा श्रमणों की अपेक्षा बहुत बढ़ा-चढ़ा था। वे आर्यिकाओं के गण की प्रधान थीं। संयम साधना की स्वामिनी थीं। जब मुनीन्द्र वरदत्त ने उन्हें नवदीक्षित आर्यिकाओं को उपदेश देने का संकेत दिया, तो उन्होंने उन सबको धर्म का रहस्य तथा तप की सकल विधि को क्रम से समझा दिया था।

3. आचार्यों को आर्यिका दीक्षा का उपदेश -

श्रावकानार्यिका संघं श्राविकाः संयतानपि।
सन्मार्गे वर्तयन्नेष गणपोषणमाचरेत् ।।

(आदि पुराण पर्व 38/169)

श्रुतार्थिभ्यः श्रुतं दद्याद दीक्षार्थिभ्यश्च दीक्षणम् ।
धर्मार्थिभ्योऽपि सद्धर्मं स शश्वत् प्रतिपादयेत् ।।

(आदि पुराण पर्व 38/170)

वह (गणाध्यक्ष) श्रावकों को, आर्यिका संघ को, श्राविकाओं को और संयमी साधुवर्ग को सन्मार्ग में प्रवृत्त कराते हुए गण का पोषण करे।

वह श्रुतज्ञान के इच्छुक को श्रुतज्ञान दें, दीक्षार्थियों को दीक्षा दें और धर्मार्थियों को निरन्तर समीचीन धर्म का प्रतिपादन करे।

4. आर्यिका दीक्षादायक आचार्य का लक्षण -

संवृत्तोऽङ्गोऽति गंभीरो, जिताखिलपरीषहः।
ज्ञानचरित्रवान् सूरिरार्याणा मितभाषणः ।।

(आचारसार 2/79)

इन्द्रियजयी, गंभीर, परीषहजयी, मितभाषी, सम्यग्ज्ञान और उत्कृष्ट चारित्र शील युक्त साधु ही आर्यिकाओं का आचार्य हो सकता है।

पियधम्मो दढधम्मो संविग्गोऽवज्जभीरु परिसुद्धो ।
संगहणुग्गहकुसलो सददं सारक्खणाजुत्तो ।।
गंभीरो दुद्धरिसो मिदवादी अप्पकोदुहल्लो य।
चिरपव्वइदो गिदिदत्थो अज्जाणं गणधरो होदि।।

(मूलाचार गाथा 183, 184)

जो धर्म के प्रेमी हैं, धर्म में दृढ़ हैं, संवेग भाव सहित हैं, पाप से भीरु हैं, शुद्ध आचरण वाले हैं, शिष्यों के संग्रह और अनुग्रह में कुशल हैं और हमेशा ही पापक्रिया की निवृत्ति से युक्त हैं। गंभीर हैं, स्थिर चित्त हैं, मित बोलने वाले हैं, किंचित् कुतूहल करते हैं, चिरदीक्षित हैं, तत्त्वों के ज्ञाता हैं, ऐसे मुनि/आचार्य आर्यिकाओं के आचार्य होते हैं।

5. आचार्यों द्वारा आर्यिका दीक्षा -

काश्चन क्षींण संसारा, विरक्ता गृह भारतः ।
विरज्य भव भोगेभ्यो गुरु पादान् समाश्रितः ।।
विनेद्यन्ति तान् भक्तया भीताः स्मो भवसागरात् ।
हस्तावलंबनं दत्वा भगवंस्तारय द्रुतम ।।

(सम्यक् चारित्र चिंतामणी 10/6.7)

जिनका संसार क्षीण हो गया है तथा जो गृहभार से विरक्त हो चुकी हैं ऐसी कुछ स्त्रियाँ संसार सम्बन्धी भोगों से विरक्त हो गुरुचरणों के पास जाकर उनसे भक्तिपूर्वक निवेदन करती हैं- हे भगवन् । हम संसार सागर से भयभीत हैं। अतः हस्तावलम्बन देकर शीघ्र ही तारो, पार करो।

अतो विरज्य भोगेभ्यो भवदन्तिक भागताः।
प्रार्थयामो वयं भूयो दीक्षां प्रदेहि नः।।

(सम्यक् चारित्र चिंतामणी 10/13)

अतः भोगों से विरक्त होकर आपके पास आये हैं तथा बार-बार प्रार्थना करते हैं कि हमें आर्यिका की दीक्षा दीजिये।

चर्यार्थ सहगन्तव्य नागरे निगमे तथा ।
अन्याभिः सह साध्वीभिः श्रावकाणां गृहेषु वै ।।

चर्या-आहार के लिये नगर अथवा ग्राम में अन्य आर्यिकाओं के साथ श्रावकों के घर जाना चाहिये।

(सम्यक चारित्र चिन्तामणी 10/23)

आर्यिकाणां व्रतं नूनं तुल्यमस्ति महाव्रतैः।
अतस्ताः योग्यमानेन प्रतिग्राक्र्याः सुदातृभिः ।।

(सम्यक् चारित्र चिंतामणी 10/31)

सचमुच आर्यिका का व्रत महाव्रतों के तुल्य है अर्थात् उपचार से महाव्रत कहा जाता है। अतः दानदाताओं को उन्हें उनके पद के योग्य सम्मान से पड़गाहना चाहिये।

इत्थमाचार्य वक्त्रेन्दु निःस्मृतां वचनावलीम् ।
सुधाधारायमाणा तां पीत्वाह्याप्याथिताश्चिरम् ।।
गृहीतवार्याव्रतं सद्यो जाताः शांति सुमूर्तयः ।
शुभ्रैकवसनाः साध्व्यो मुखविभ्रम वर्जिताः ।।

(सम्यक् चारित्र चिंतामणी 10/33,34)

इस प्रकार आचार्य महाराज के मुखचन्द्र से निकली अमृतधारा के समान आचरण करने वाली वचनावली को पीकर / श्रवण कर वे सब स्त्रियाँ चिरकाल के लिये संतुष्ट हो गईं। वे सब आर्यिका के व्रत ग्रहण कर शांति की मूर्तियाँ बन गईं। जो सफेद रंग की एक साड़ी धारण करती हैं, मुख के विभ्रम हावभाव आदि से रहित हैं।

याभिस्त्यक्ता मोहनिद्रा विशाला, याभ्योजाता नेमिपार्श्वादयस्ताः।
देवी तुण्यास्तीर्थाकृन्मातृतुल्याः, साध्व्यो मे स्युर्मोक्षमार्गप्रणेत्र्यः।।

(सम्यक् चारित्र चिंतामणी 10/37)

जिन्होंने मोह रूपी विशाल निद्रा का त्याग किया है, जिनसे नेमिनाथ तथा पार्श्वनाथ आदि महापुरुष उत्पन्न हुए हैं, जो देवों के समान तथा तीर्थंकरों की माताओं के समान हैं वे साध्वी-आर्यिकाएँ मेरे लिये मोक्षमार्ग पर ले जाने वाली हों।

6. मुनियों द्वारा आर्यिका दीक्षा -

जिनमति सेठानी ने समाधिगुप्त मुनि से दीक्षा ली-

श्रेष्ठिनी जिनमत्याख्या तदा तद्गुरुपादयोः।
युग्मं प्रणम्य मोहादिपरिग्रह पराङ्गमुख ।।
वस्त्रमात्रं समादाय लत्वा दीक्षां यथोचिताम् ।
संश्रिता भक्तितः कांचिदार्यिकां शुभमानसा ।।

(सुदर्शन चरित्र, अ. 5 श्लोक 87, 88)

जिनमति नामक सेठानी ने भी तब उन गुरु (समाधिगुप्त मुनीन्द्र) के चरणयुगल में प्रणाम कर मोहादि परिग्रह से पराङ्मुख होकर वस्त्र मात्र ग्रहण कर यथायोग्य दीक्षा लेकर भक्तिपूर्वक शुभ मन वाली किसी आर्यिका का आश्रय किया।

त्रिधा सर्व परित्यज्य वस्त्रमात्रपरिग्रहा ।
तत्र दीक्षां समादाय शर्मदां परमादरात् ।।
भूत्वार्यिका सती पूता, जिनोक्तं सुतपः शुभम् ।
संचकार जगच्चेतोरञ्जनम् दुःखभञ्जनम् ।।

(सुदर्शन चरित्र, अ. 11 श्लोक 89, 90)

मन, वचन, काय से सब त्यागकर, वस्त्र मात्र स्वीकार कर वहाँ परम आदर से सुख देने वाली दीक्षा ग्रहण कर मनोरमा सती ने पवित्र आर्यिका होकर जिनोक्त शुभ सुतप किया, जो कि संसार के चित्त को प्रसन्न करने वाला और दुःख का भञ्जन करने वाला है।

तीर्थंकर भगवंतों के समवशरण में केवली भगवान की साक्षी पूर्वक ही समस्त दिगंबर श्रमण-श्रमणी दीक्षा लेते हैं । गणिनी माताएँ किसी भी स्त्री को आर्यिका दीक्षा नहीं देती हैं। वे सभी जिन साक्षी में ही दीक्षा लेती हैं। गणिनी माताएँ तो उन्हें अपने संघरक्षण में रखती हैं तथा अन्य अवसरों पर यदि दीक्षा का प्रसंग आता है तो केवल आचार्य ही उन्हें आर्यिका दीक्षा देते हैं, ऐसा मूलाचार में कुन्दकुन्द आचार्य का कथन है। वहाँ उन्होंने आर्यिका दीक्षा प्रदाता आचार्य का स्वरूप तो कहा है किन्तु कहीं भी आर्यिका दीक्षा प्रदाता गणिनी का स्वरूप नहीं कहा है। अतः गणिनी अथवा आर्यिका स्त्रियों को दीक्षा दे, ये बात विचारणीय है। यद्यपि प्रथमानुयोग ग्रंथों में कतिपय प्रमाण भी उपलब्ध हैं। जो निम्न हैं।

7. गणिनी आर्यिकाओं से आर्यिका दीक्षा -

(1) गणिनी ब्राह्मी आर्यिका से -

दुःसंसारस्वभावज्ञा सपत्नीभिः सिताम्बरा ।
ब्राह्मीं च सुंदरीं श्रित्वा प्रवव्राज सुलोचना।।

(हरिवंश पुराण सर्ग 12 श्लोक 51)

दुष्ट संसार के स्वभाव को जानने वाली सुलोचना ने अपनी सपत्नियों के साथ सफेद वस्त्र धारण कर लिये और ब्राह्मी व सुन्दरी के पास जाकर दीक्षा ले ली।

(2) गणिनी राजीमति आर्यिका से -

पाण्डवाः संयमं प्रापन् सतामेषा हि बन्धुता ।
कुन्ती सुभद्रा द्रौपद्यश्च दीक्षां ताः परं ययुः ।।
निकटे राजिमत्याख्यगणिन्या गुणभूषणाः।
तास्तिस्रः षोडशे कल्पे भूत्वा तस्मात्परिच्युताः ।।

(उत्तर पुराण पर्व 72 श्लोक 264-265)

पाण्डवों ने अनेक लोगों के साथ संयम धारण कर लिया सो ठीक ही है क्योंकि सज्जनों का बंधुपना यही है। गुणरूपी आभूषणों को धारण करने वाली कुन्ती, सुभद्रा तथा द्रौपदी ने भी राजीमति गणिनी के पास उत्कृष्ट दीक्षा धारण कर ली। अन्त में तीनों के जीव सोलहवें स्वर्ग में उत्पन्न हुए और वहाँ से च्युत होकर निःसंदेह समस्त कर्ममल से रहित हो मोक्ष प्राप्त करेंगे।

(3) गणिनी चंदना आर्यिका से -

सत्यन्धरामहादेव्या सहाष्टौ सद्दृशः सुषाः।
सद्यो गन्धर्वदत्ताद्यास्तासामपि च मातरः।।
समीपे चन्दनार्याया जगृहुः संयमं परम्।
महानेकोभवद्धेतु र्बहुनामर्थसिद्धये।।

(उत्तर पुराण पर्व 75 श्लोक 683-684)

सम्यग्दर्शन को धारण करने वाली गन्धर्वदत्ता आदि आठों रानियों ने तथा उन रानियों की माताओं ने सत्यन्धर महाराज की महादेवी विजया के साथ चन्दना आर्या गणिनी के समीप उत्कृष्ट संयम धारण कर लिया सो ठीक ही है क्योंकि एक ही बड़ा पुरुष अनेक लोगों की अर्थ-सिद्धि का कारण हो जाता है।

(4) गणिनी सुप्रभा आर्यिका से -

सुप्रभागणिनीपार्श्वे दीक्षित्वा जीवितावधौ ।
सौधर्मकल्पे देवोऽभूच्चित्र विलसितं विधेः ।।

(उत्तर पुराण पर्व 62 श्लोक 508)

सुप्रभा नाम की गणिनी के समीप दीक्षा धारण कर ली अन्त में आयु समाप्त होने पर सौधर्म स्वर्ग में देवपद प्राप्त किया।

(5) गणिनी सुलक्षणा आर्यिका से -

निर्विद्य संसृतेः शांतिमति क्षेमंकराह्वयात् ।
तीर्थेशाद्धर्ममासाद्य सद्यः प्राप्य सुलक्षणाम् ।।

गणिनीं संयमं श्रित्वा संन्यस्येशानसंज्ञके ।
नाके निलिम्पो भूत्वा स्वकायपूजार्थमागमत ।।

(उत्तर पुराण पर्व 63 श्लोक 112, 113)

वज्रायुध के द्वारा कही गई सब बात को सुनकर शांतिमति संसार से विरक्त हो गई। उसने क्षेमंकर तीर्थंकर से धर्म श्रवण किया और शीघ्र ही- सुलक्षणा नाम की गणिनी आर्यिका के पास जाकर संयम धारण कर लिया, अंत में संन्यास मरण कर वह ऐशान स्वर्ग में देव हुई।

(6) गणिनी विमलमति आर्यिका से -

देव्यौ विमलमत्याख्यगणिनीं ते समाश्रिते ।
अदीक्षेतां सहैतेन युक्तं तत्कुलयोषिताम् ।।

(उत्तर पुराण पर्व 63 श्लोक 124)

इसी के साथ इसकी दोनों स्त्रियों ने विमलमति गणिनी आर्यिका के पास जाकर दीक्षा धारण कर ली सो ठीक ही है क्योंकि कुलीन स्त्रियों को ऐसा करना उचित है।

(7) गणिनी सुमति आर्यिका से -

सुमतिं गणिनीं प्राप्य प्रव्रज्यामाददे सती ।
हेतुरासन्नभाव्यानां मानश्च हित सिद्धये ।।

(उत्तर पुराण पर्व 63 श्लोक 175)

अंत में उस सती (सुवर्णतिलका) ने सुमति नामक गणिनी आर्यिका के पास दीक्षा ले ली सो ठीक ही है क्योंकि निकट भव्य जीवों का मान हित सिद्धि का कारण हो जाता है।

8. आर्यिकाओं द्वारा आर्यिका दीक्षा -

(1) आर्यिका बंधुमति से दीक्षा-

महद्भूषणं निर्मुक्ताः शीलभूषाः प्रवव्रजुः ।।

(पद्म पुराण पर्व 113 श्लोक 41)

हनुमान की पत्नियों ने बन्धुमति आर्यिका को प्रणाम करके उत्तम पूजा की और प्रव्रज्या दीक्षा ले ली।

(2) आर्यिका पृथ्वीमति से दीक्षा -

पृथ्वी मत्यार्यया तवद्दीक्षिता जनकात्मजा ।

(पद्म पुराण पर्व 105 श्लोक 78)

सीता पृथ्वीमति आर्यिका से दीक्षित हो गई।

दीक्षां जग्राहः सम्यक्त्वं धारयन्तीसुनिर्मलं ।

(पद्म पुराण पर्व 86 श्लोक 24)

कैकेयी ने पृथ्वीमती आर्या से दीक्षा ली।

(3) आर्यिका सुदर्शना से दीक्षा -

ततो नन्दयशा पुत्रिकाद्वयेनागमत्तपः।
सुदर्शनार्यिकाभ्यर्णे तूर्णनिर्णीतसंसृतिः ।।

(उत्तर पुराण पर्व, 70 श्लोक 189, 190)

नन्दयशा सेठानी भी अपनी दोनों पुत्रियों के साथ सुदर्शना नाम की आर्यिका के पास गई और शीघ्र ही संसार के स्वरूप का निर्णय कर उसने भी तप धारण किया।

(4) आर्यिका सुव्रता से दीक्षा -

सा सुव्रतार्यिकाभ्यर्णे शोकात्स्वविकृता कृतेः।
गृहीतदीक्षा विंध्याद्रौ स्थानयोगमुपाश्रिता।।

(उत्तर पुराण पर्व 70 श्लोक 408)

बड़ी होने पर उसने अपनी विकृत आकृति को देखकर शोक से सुव्रता आर्यिका के पास दीक्षा धारण कर ली और विंध्याचल पर्वत पर रहने लगी।

(5) आर्यिका जिनदत्ता से दीक्षा -

श्रुत्वा नृपोवणिङ्मुख्योप्यग्रहीष्टां सुसंयमम् ।
जिनदत्तार्यिकाभ्यर्णे श्रेष्ठिभार्या च दीक्षिता ।।

(उत्तर पुराण पर्व 71 श्लोक 206)

धर्म का स्वरूप सुनकर राजा शूरसेन और सेठ भानुदत्त दोनों ने उत्कृष्ट संयम धारण कर लिया। इसी प्रकार सेठ की स्त्री यमुनादत्ता ने भी जिनदत्ता नाम की आर्यिका के पास दीक्षा धारण कर ली।

जिनदत्तार्यिकाभ्याशे तद्भार्याश्च तपो ययुः।
हेतुरासन्नभव्यानां को वा न स्यात्तपोग्रहे ।।

(उत्तर पु.पर्व. 71 श्लोक 244)

उनकी स्त्रियों ने भी जिनदत्ता नामक आर्यिका के समीप तप ले लिया सो ठीक ही है क्योंकि निकट भव्य जीवों के तप ग्रहण करने में कौन-सा हेतु नहीं हो जाता अर्थात् वे अनायास ही तप ग्रहण कर लेते हैं।

आर्यिकाणाञ्च दीक्षायाः पृष्ट्वा मङ्गयपि कारणम् ।
उपाद्दे तमभ्यर्णे प्रव्रज्यामाप्तबोधिका ।।

(उत्तर पुराण पर्व. 71 श्लोक 247)

मंगी ने भी उन आर्यिकाओं से दीक्षा का कारण पूछा और यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर उन्हीं के समीप दीक्षा धारण कर ली।

(6) आर्यिका सुव्रता द्वारा दीक्षा-

इति तस्य वचः श्रुत्वा ते निर्वेगपरायणाः।।
नरेंद्रषट्सुता दीक्षां शङ्खो निर्नामकोऽप्ययुः।
तथा नन्दयशा रेवतीनामादित संयमम्।

(उत्तर पुराण पर्व, 71 श्लोक 286, 287)

इसी प्रकार पुत्रों के स्नेह से उत्पन्न हुई इच्छा से रानी नन्दयशा तथा रेवती धाय ने भी सुव्रता नामक आर्यिका के समीप संयम धारण कर लिया।

(7) आर्यिका जिनदत्ता से दीक्षा -

जिनदत्तार्यिकोपान्ते दीक्षामादाय सुव्रता ।
तपस्यन्ती चिरं घोरमुपोष्य कनकावलीम्।।

(उत्तर पुराण पर्व, 71 श्लोक 395)

एक दिन उसने जिनदत्ता आर्यिका के पास दीक्षा लेकर अच्छे- अच्छे व्रतों का पालन किया, चिरकाल तक तपस्या की और कनकावली नाम का घोर उपवास किया।

(8) आर्यिका क्षांता से दीक्षा -

इति श्रुत्वार्यिकावाक्यं निर्विण्णा सुकुमारिका।
तदन्ते सा प्रवव्राज संसारभयवेदिनी।।

(हरिवंश पुराण सर्ग 64 श्लोक 132)

क्षान्ता आर्यिका के उक्त वचन सुन सुकुमारिका भी विरक्त हो गयी और संसार से भयभीत हो उन्हीं के समीप दीक्षित हो गयी।

(9) आर्यिका राजीमति से दीक्षा -

कुन्ती च द्रौपदी देवी सुभद्राद्याश्च योषितः।
राजिमत्याः समीपे ताः समस्तास्तपसि स्थिताः।।

(हरिवंश पुराण सर्ग 64 श्लोक 144)

कुंती, द्रौपदी और सुभद्रा आदि जो स्त्रियाँ थीं वे सब राजीमति आर्यिका के समीप तप में लीन हो गयीं।

(10) आर्यिका सुभद्रा से दीक्षा

तयोर्नरपर्तिदीक्षामादात्तच्चारणान्तिके।
सुभद्रापादमासाद्य सापि संयममाददे।।

(उत्तर पुराण पर्व 71 श्लोक 423)

उन दोनों में से राजा महेन्द्र विक्रम ने तो उन्हीं चारण मुनिराज के समीप दीक्षा ले ली और रानी सुरूपा ने सुभद्रा नामक आर्यिका के चरण मूल में जाकर संयम धारण कर लिया।

(11) आर्यिका प्रियदर्शना से दीक्षा -

सम्पूर्ण यौवना यान्ती सा स्वयंवरमण्डपम् ।
यक्षेण बोधिता दीक्षामित्वाप्य प्रियदर्शना ।।

(उत्तर पुराण पर्व 72 श्लोक 35)

जब वह पूर्ण यौवनवती होकर स्वयंवर-मण्डप की ओर जा रही थी तब उसके पूर्वजन्म के पति कुबेर नामक यक्ष ने उसे समझाया, जिससे उसने प्रियदर्शना नाम की आर्यिका के पास जाकर दीक्षा धारण कर ली और आयु के अन्त में वह सौधर्म इन्द्र की मणिचूला नाम की रूपवती देवी हुई।

(12) आर्यिका सुव्रता से दीक्षा

इत्यवोचत्तदाकर्ण्य सुमतिर्नाम सार्थकम् ।
कुर्वती पितृनिर्मुक्ता प्राव्राजीत्सुव्रतान्तिके ।।
कन्यकाभिः शतैः सार्द्धं सप्तभिः सा महातपाः ।
त्यक्त प्राणानते कल्पे देवो भवदनूदिशे ।।

(उत्तर पुराण पर्व 63 श्लोक 23, 24)

इस प्रकार उस देवी ने कहा उसे सुनकर सुमति अपना नाम सार्थक करती हुई पिता से छुट्टी पाकर सुव्रता नाम की आर्यिका के पास सात सौ कन्याओं के साथ दीक्षित हो गई। दीक्षित होकर उसने बड़ा कठिन तप किया और आयु के अंत में मरकर आनत नामक तेरहवें स्वर्ग के अनुदिश विमान में देव हुई।

(13) आर्यिका गुणवती से दीक्षा-

गुणवत्यार्यिकाभ्याशे ब्राह्मण्यावितरे तदा ।
ईयतुः संयमं वृत्तमीदृक्सदसतामिदम् ।।

(उत्तर पुराण पर्व 72 श्लोक 236)

यह देख नागश्री को छोड़कर शेष दो ब्राह्मणियों ने भी गुणवती आर्यिका के समीप संयम धारण कर लिया, सो ठीक ही है। क्योंकि सज्जन और दुर्जनों का चरित्र ऐसा ही होता है।

इमे द्वे दीक्षिते केन हेतुनेत्यन्वयुङ्क्त ताम् ।
अथ साप्यब्रवीदेवं क्षान्तिः कल्याणनामिके ।।

(उत्तर पुराण पर्व 72 श्लोक 250)

वंदना कर प्रधान आर्यिका से पूछा- इन दोनों आर्यिकाओं ने किस कारण दीक्षा ली है। यह बात आप मुझसे कहिए।

(14) आर्यिका हिरण्यमति से दीक्षा -

माता ते दान्तमत्यन्ते दीक्षिता क्षान्तिरद्य ते।
सिंहसेनोऽहिना दष्टः करीन्द्रोशनिघोषकः ।।

(उत्तर पुराण पर्व 59 श्लोक 212)

आपकी माता ने दान्तमती के पास दीक्षा ली और फिर आपने हिरण्यमती माता से दीक्षा ली।

(15) आर्यिका गुणवती से दीक्षा -

सूर्यावर्त तपोयाते श्रीधरा च यशोधरा ।
दीक्षां समग्रहीषातां गुणवत्यार्यिकान्तिके ।।

(उत्तर पुराण पर्व 59 श्लोक 232)

सूर्यावर्त तप के लिए चले गये और श्रीधरा तथा यशोधरा ने गुणवती आर्यिका के समीप दीक्षा धारण कर ली।

9. आर्यिकाओं के उपचार से महाव्रत-

शंका- आप ऐसा कैसे कहते हो, कि उनके उपचार से महाव्रत पाये जाते हैं?

समाधान - आचारसार में आचार्यश्री वीरनंदी लिखते हैं-

देशव्रतान्वितिस्तासामारोप्यन्ते बुधैस्ततः ।
महाव्रतानि सज्जातिज्ञप्त्यर्थमुपचारतः ।।

(आचारसार श्लोक 2/89)

देशव्रत गुणस्थान में भी आर्यिकाओं की सज्जातित्व बताने के लिये ज्ञानी आचार्यों ने उन्हें उपचार से महाव्रती माना है।

(प्रवचनसार ग्रंथ की तात्पर्यवृत्ति 224-8) में भी कहा है कि-

उनके विभिन्न अंगों में सूक्ष्म जीव (मनुष्यों) की उत्पत्ति एवं विनाश होता है। यही कारण है कि उनके अहिंसा महाव्रत आदि उपचार से पाये जाते हैं।

(तासां कह होइ पव्वज्ज) तासां स्त्रीणां कथं भवति प्रव्रज्या दीक्षा अपि तु न भवति। यदि प्रव्रज्या न भवति तर्हि कथं पञ्च महाव्रतानि दीपन्ते? सत्यमेत् सज्जाति ज्ञापनार्थ महाव्रतानि उपचार्यन्ते स्थापना न्यासः क्रियते इत्यर्थः।

(सूत्र पाहुड 24 टीका)

उन स्त्रियों के प्रव्रज्या (नग्न) दीक्षा कैसे हो सकती है ?

प्रश्न– यदि उनके प्रवज़्या नहीं होती है तो उन्हें महाव्रत कैसे (क्यों) दिये जाते हैं ?

उत्तर – यह सत्य है किन्तु सज्जाति को बतलाने के लिये उनके महाव्रतों का उपचार किया जाता है। यथार्थ में महाव्रत न होने पर भी उनकी उनमें (आर्यिकाओं में) स्थापना की जाती है। तात्पर्य यह है, कि वे महाव्रती हैं उनमें ऐलक क्षुल्लक की भाँति अणुव्रत रूप ग्यारह प्रतिमाओं के नही, किन्तु निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि की तरह अट्ठाईस मूलगुणों के संस्कार किये जाते हैं।

शंका – यदि आपके मत में आर्यिकाओं को मोक्ष नहीं होता है तो उनके महाव्रतों का आरोपण क्यों किया जाता है ?

समाधान – उपचार से कुल व्यवस्था के निमित्त से (उन्हें महाव्रती के संस्कार दिये जाते हैं)। उपचार तो उपचार है। साक्षात् होने योग्य नहीं होता है। जैसे- यह देवदत्त तो अग्नि की तरह (क्रोधी) क्रूर है। जैसा कि आलाप पद्धति में कहा भी है कि मुख्य के अभाव में किन्तु प्रयोजन के होने पर उपचार की प्रवृत्ति पायी जाती है अतः आर्यिकाएँ उपचार से महाव्रती ही हैं। ऐसा जानना चाहिये।

महाव्रत पवित्रांगा महासंवेग-संगता।

(पद्म पुराण पर्व 105 श्लोक 80)

महावैराग्य से परिपूर्ण महाव्रतों को धारण करने से उसके सारे अंग पवित्र थे। आर्यिकाएँ तो उपचार से महाव्रती हैं, पर ऐलक क्षुल्लक महाव्रती नहीं हैं ।

– साड़ी धारी आर्यिका उपचार से महाव्रती है किन्तु ऐलक क्षुल्लक नहीं ?

शंका – सोलह हाथ प्रमाण एक साड़ी धारण करने वाली आर्यिकाओं के उपचार से महाव्रत कहे जा सकते हैं तो एक लंगोटी या लंगोटी व चादर धारण करने वाले ऐलक व क्षुल्लक को भी उपचार से महाव्रती कहना चाहिये ? क्योंकि उनके तो आर्यिकाओं से भी अल्प वस्त्र पाये जाते हैं।

समाधान – नहीं, ऐलक, क्षुल्लक उपचार से भी महाव्रती नहीं हैं।

कौपीनेऽपि सम्मूर्च्छत्वान्नार्हत्यार्यो महाव्रतम् ।
अपि भाक्तममूर्च्छत्वात् साटिकेऽप्यार्यिकार्हति ।।

(सागार धर्मामृत 37)

स्त्री पर्याय में सर्वोत्कृष्ट त्याग एक साड़ी पर्यन्त होता है। इसके आगे उनके सामर्थ्याभाव है तथा आगम में निषेध है, किन्तु ऐलक क्षुल्लक के वस्त्र-त्याग की आज्ञा होने पर भी वह उसे देह मूर्च्छा या वस्त्र मूर्च्छा के कारण त्याग नहीं करता है। अत: उन्हें उपचार से भी महाव्रत के संस्कार नहीं दिये जाते हैं।

कक्षपाटेऽपि मूर्च्छित्वादार्यो नार्हति तद्व्रतम् ।
आर्यिका साटकेऽमूर्च्छत्वाद्रभाक्तं च सदार्हति ।।

(धर्म संग्रह श्रावकाचार- 10/48)

अर्थात् मूर्च्छा के कारण कक्षपाट् में लंगोटी मात्र होने से आर्य (ऐलक) महाव्रत धारण के (उपचार से भी) योग्य नहीं हैं, किन्तु साड़ी में मूर्च्छा न होने से आर्यिका (उपचार से) महाव्रत धारण के योग्य कही गयी है।

शंका- श्रावक को भी सामायिक आदि के समय महाव्रती के तुल्य कहा गया है। यथा-

सामायिके सारम्भा परिग्रहा नैव सन्ति सर्वेऽपि ।
चेलोपसृष्ट मुनिरिव गृही तदा याति यतिभावम् ।।

(रत्नकरण्डक श्रावकाचार श्लोक 102)

समाधान - विधिवत् सामायिक की महिमा बताने के लिये ऐसा कहा गया है, न कि उन्हें उपचार से महाव्रत के संस्कार दिये जाते हैं। उन्हें तो केवल ग्यारह प्रतिमाओं के ही संस्कार दिये जाते हैं, किन्तु आर्यिकाओं को अट्ठाईस मूलगुणों के संस्कार दिये जाते हैं।

प्रश्न – मोक्षमार्ग में लिंग कितने प्रकार के माने गये हैं?

उत्तर – मोक्षमार्ग में लिंग तीन प्रकार के होते हैं। यथा–

एगं जिणस्स रुवं बीयं उक्किट्ठसावयाणं तु ।
अवरट्ठियाण तइयं चउत्थ पुण लिंगदंसणं णत्थि ।।

(दर्शन पाहुड गाथा 18)

अर्थात् तीन ही लिंग माने गये हैं।

भगवान का जैसा वीतराग नग्न रूप है वैसा 2. उत्कृष्ट श्रावक का 3. अपर (जघन्य) स्थान में स्थित आर्यिका का, किन्तु चौथा लिंग जैन दर्शन में नहीं माना गया है।

प्रश्न – दर्शन पाहुड की उक्त गाथा में दूसरा लिंग श्रावक का तथा तीसरा लिंग आर्यिकाओं का कहा तो क्या श्रावक आर्यिकाओं से बड़ा है ? यदि नही, तो ऐसा क्रम क्यों रखा ?

उत्तर – उत्कृष्ट से भी उत्कृष्ट श्रावक क्यों न हो, तो भी वह आर्यिकाओं से बड़ा नहीं हो सकता है क्योंकि वह अणुव्रती है और आर्यिका उपचार से महाव्रती है।

❁ ❁ ❁

बिना पिच्छी के गमन करने प्रायश्चित –

सप्तपादेषु निःपिच्छिः, कार्योत्सर्गेणशुद्ध्यति ।
गव्यूतिगमने शुद्धि, मुपवासं समश्नुते ।।

– चारित्रसार गाथा 40

अर्थ– बिना पिच्छि के सात कदम गमन करने का प्रायश्चित एक कायोत्सर्ग है। इससे अधिक गव्यूति (2 कोश) प्रमाण गमन करने का प्रायश्चित एक उपवास कहा गया है।

8

आर्यिकाओं के मूलगुण

शंका – आर्यिकाओं के वस्त्र होने से अचेलकत्व गुण, रजस्वला के समय स्नान करती हैं, तो उनके अस्नान गुण एवं बैठकर आहार करती हैं तो उनके ठिदि भोयण (खड़े होकर भोजन करना) ये तीन विशेष गुण नहीं पाये जाते हैं, तो उन्हें अट्ठाईस मूलगुण के संस्कार दिये जाते हैं या पच्चीस मूलगुणों के संस्कार दिये जाते हैं।

समाधान – आर्यिकाओं के एक साड़ी पहनना ही अचेलकत्व है। आर्यिका वस्त्ररहित शरीर वाली नहीं होतीं। वे एक साड़ी मात्र वस्त्र के साथ 'सावरण' (वस्त्रसहित) होती हैं। यह सूत्रप्राभृत ग्रन्थ (गाथा - 22) में कहा गया है– आर्यिका एक ही वस्त्र रखती हैं। इसलिए यह सिद्ध होता है, कि पर्याय विशेष होने से (स्त्री पर्याय के कारण) उनके द्वारा एक साड़ी धारण करना भी अचेलकत्व रूप ही है, उसी तरह उनके उपचार से अपरिग्रह महाव्रत स्वीकारा जाता है। इसी तरह उनमें 'अस्नान' मूलगुण की भी संगति हो जाती है। यद्यपि वे ऋतुकाल (रजस्वला) होने पर स्नान करती हैं, किन्तु उसे शुद्धि हेतु ही करती हैं। शारीरिक सुख व सौन्दर्य-वृद्धि आदि के लिए नहीं करतीं, इसलिए दोषयुक्त नहीं होतीं। यदि वे दोषयुक्त हो तो मुर्दे की हड्डी आदि के स्पर्श होने पर मुनियों द्वारा जो दण्ड स्नान किया जाता है। उससे उनका भी दोषयुक्त होना मानना पड़ेगा। दोनों (आर्यिका स्नान) स्थितियों में देहशुद्धि हेतु ही स्नान किया जाता है, उससे मूलगुण के उच्छेद की सम्भावना नहीं की जाती। इसी तरह 'स्थिति भोजन' मूलगुण के विषय में भी समाधान सुकर है। आर्यिका बैठकर आहार ग्रहण करती हैं। (मुनियों के) खड्गासन की तरह ही उनका बैठकर आहार ग्रहण करना उनके मूलगुण का उच्छेद नहीं करता। दोनों ही आसनों में आसन की

अस्थिरता होने पर अन्तराय होना माना जाता है। इसलिए उनका बैठकर आहार लेना भी स्थिति भोजन' मूलगुण के अनुरूप ही है- ऐसा मानना चाहिए। जिनागम में सन्देह नहीं करना चाहिए। गत दोष व मर्यादा के कारण वे उसका उल्लंघन नहीं करती हैं।

1. आर्यिकाओं को संयम निषेध-विधि -

शंका - उनके विभिन्न स्थानों में सूक्ष्म मनुष्य की उत्पत्ति एवं विनाश होता रहता है। अतः संयम कैसे संभव है? आचार्यश्री कुन्दकुन्द देव ने कहा भी है, कि -

लिंगंहि य इत्थीणं थणंतरे णाहिकख पदेसेसु ।
भणिदो सुहुमुप्पादो तासिं कह संजमो होदि ।।

(प्रवचनसार क्षेपक 224/7)

अर्थात् उनके लिंग (योनि) में, स्तनांतर में, नाभि में तथा कुच्छि के प्रदेश में सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति कही है। अतः उनके संयम कैसे हो सकता है ? इसी प्रकार उनके चित्त की अस्थिरता, महीने महीने में रजस्वला होने से उसमें सहसा सूक्ष्म मनुष्यों की उत्पत्ति होती है ।

सवासस्त्वा प्रत्याख्यान-गुणस्थितानां संयमातनुपत्तेः। भाव संयमास्तासां सवाससामप्य विरुद्ध इति चेत् न तासां भाव संयमोऽस्ति भावा संयमाविना भावि-वस्त्राद्युपादानान्यथानुपपत्तेः।

(धवला जी पु. 1-पृ. 335)

अर्थात् वस्त्र सहित होने से तथा प्रत्याख्यान गुणस्थान (पाँचवे गुणस्थान) में स्थित होने से स्त्रियों के भाव संयम की उत्पत्ति नहीं होती है। आर्यिकाओं के वस्त्र सहित होना ही श्रामण्यपने के विरुद्ध है ऐसा कहो तो उनके भाव संयम नहीं है, क्योंकि भाव असंयम के अविनाभावी वस्त्र का ग्रहण अन्यथा उनके बन नहीं सकता है।

समाधान - उक्त आगम वाक्य से ही अर्थ निकला कि आर्यिकाओं के सकल संयम नहीं पाया जाता है। इसका यह अर्थ नहीं कि उनके कोई भी संयम नहीं पाया जाता है। जब हम संयममार्गणा के केवल दो भेद करेंगे, तब संयमासंयम को भी संयम की कोटि में रखा जाएगा। कहा भी गया कि-

प्रापितै तत्पुरं वीरं वन्दितुं निजबान्धवान् ।
विसृज्य जातनिर्वेगा गृहीत्वात्रैव संयमम् ।।

(उत्तर पुराण पर्व 75/68)

गुणभद्राचार्य ने कहा है, कि चंदना ने भगवान महावीर स्वामी के चरणों में संयम धारण किया। यथा-

और भी देखें-

सत्यन्धर महदेव्या सहाष्टै सद्दृशः स्नुषाः ।
सद्यो गंधर्वदत्ताद्यास्तासामपि च मातरः ।।
समीपे चंदनार्याया जगृहुः संयमं परम् ।
महानेकोऽभवद्धेतुर्बहूनामर्थसिद्धये ।।

(उत्तर पुराण पर्व-75 श्लोक 683-684)

चंदना के समीप महाराजा सत्यन्धर की गंधर्ववत्ता आदि रानियों ने भी संयम धारण किया था।

गणिनीं संयमं श्रित्वा संन्यस्येशान संज्ञके।
नाके निलिम्पो भूत्वा स्वकायपूजार्थमागमत्।।

(उत्तर पुराण पर्व 63 श्लोक 113)

इत्यादि प्रकार से सिद्ध है आर्यिकाओं को भी देशसंयम रूप संयम ही पाया जाता है। सकल संयम रूप संयम नहीं। अतः आगम में सकल संयम रूप संयम का ही निषेध किया है, न कि सम्पूर्ण संयम का निषेध किया गया है।

2. आर्यिकाओं के कर्मों की निर्जरा निषेध-विधि :-

शंका- आर्यिकाओं की अविपाक निर्जरा होती है या नहीं?

जदि दंसणेण सुद्धा सुत्तज्झयणेण चावि संजुत्ता ।
घोरं चरदि य चरियं इत्थिस्स ण णिज्जरा भणिदा ।।

(प्रवचनसार गाथा - 224/8)

अर्थात् - यदि सम्यग्दर्शन से शुद्ध और आगमसूत्रों के अध्ययन से सहित हैं, घनघोर चारित्र का आचरण करती हैं, फिर भी स्त्रियों को निर्जरा नहीं कही है।

इसका तात्पर्य यह है, कि उनके सम्पूर्ण कर्मों की निर्जरा नहीं होती है अपितु अपने पद व पाँचवे गुणस्थान के योग्य होती ही हैं। अन्यथा निम्न आगम वाक्य गलत हो जाएँगे। यथा-

सम्यग्दृष्टि-श्रावक-विरतानंत-वियोजक-दर्शन मोह- क्षपकोपशम-कोपशांत-मोह-क्षपक-क्षीण-मोह-जिनाः क्रमशोऽसंख्येय- गुण-निर्जराः।

(तत्वार्थ सूत्र अ. 9 सू. 45)

अर्थात् (1) अविरत सम्यग्दृष्टि (2) देशव्रती श्रावक (3) महाव्रती मुनि (4) अनंतानुबंधी चतुष्क विसंयोजक मुनि (5) दर्शनमोह क्षयकारी मुनि (6) उपशम श्रेणीवाले मुनि (7) उपशांतमोह (11वें गुणस्थानवर्ती) मुनि, (4) क्षपकश्रेणी वाले मुनि (9) क्षीणमोह (12वे गुणस्थानवर्ती) मुनि (10) तेरहवे गुणस्थानवर्ती सयोग केवली

(जिनके उक्त स्थानों की उत्पत्ति के समय) असंख्यात गुणी कर्मों की निर्जरा होती है।

यही बात सिद्धांत चक्रवर्ती श्री नेमिचंद्राचार्य इस प्रकार कहते हैं-

सम्मत्तुपपत्तीये सावय विरदे अणंतकम्मंसे।
दंसण मोहक्खवगे कसाय उवसामगे य उलसंते ।।
खवगे या खीणमोहे जिणेसु दव्वा असंख गुणिदकमा।
तव्विवरीया काला संखेज्ज गुणक्कमा होंति ।।

(गोम्मटसार जीवकाण्ड गाथा 66-67)

(1) सम्यक्त्व की उत्पत्ति के समय (कारणलब्धि में) (2) देशव्रती श्रावक के (3) महाव्रती (4) अनंतानुबंधी को विच्छेद करने वालों की (5) दर्शनमोह का क्षय करने वालों की (6) उपशम श्रेणी वालों के (7) उपशांतमोह (11वाँ) गुणस्थानवर्ती के (8) क्षपक श्रेणी वालों के (9) क्षीण मोह (12वाँ) गुणस्थानवर्ती के (10) सयोगकेवली जिन (तेरहवाँ गुणस्थानवर्ती) के असंख्यात गुणी निर्जरा होती है।

इन आगम वाक्यों से ज्ञात होता है कि करणलब्धि से निर्जरा होती है और उससे असंख्यात गुणी अधिक कर्म असंख्यात गुणी कर्म/निर्जरा देशव्रती गुणस्थानवर्ती के होती है आदि। इसका मतलब यह है कि पंचम गुणस्थानवर्ती आर्यिकाओं के असंख्यात गुणी कर्म निर्जरा तो होती, पर सम्पूर्ण कर्मों की निर्जरा एकमात्र अयोगकेवली गुणस्थानवर्ती मुनि ही करते हैं अथवा छठवें आदि गुणस्थानवर्ती मुनि के जैसी निर्जरा होती है वैसी आर्यिकाओं के नहीं हो सकती किन्तु पंचम गुणस्थान के योग्य कर्मनिर्जरा नियम से होती हैं।

पंच तिय चउविहेहिं, अणुगुण सिक्खावयेहिं संजुत्तो।
वुच्चंति देसाविरया सम्माइट्ठी झडिया कम्मा ॥

(पंच संग्रह प्राकृत गाथा 135)

पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत से संयुक्त होना विशिष्ट संयमासंयम है। इसके धारक देशविरत या संयतासंयत कहलाते हैं। असंख्य गुणश्रेणि रूप कर्मों की निर्जरा (समाप्ति) करने वाले सम्यग्दृष्टि हैं।

3. आर्यिकाओं के ध्यान निषेध-विधि -

प्रश्न - आर्यिकाओं के ध्यान होता है या नहीं ?

समाधान - उत्कृष्ट ध्यान की सिद्धि नहीं होती। यथा-

चित्तासोहि ण तेसिं ढिल्लं भावं तहा सहावेण।
विज्जदि मासा तेसिं इत्थीसु ण संकया झाणं ॥

(सूत्र पाहुड गाथा 26)

अर्थात चित्त की स्थिरता स्त्रियों के नहीं होती है तथा स्वभाव से परिणामों में शिथिलता होती है। प्रत्येक माह में मासिक धर्म होने से स्त्रियों के ध्यान की भी शंका नहीं करना चाहिए। इसका अर्थ यह लेना चाहिए कि उन्हें शुक्लध्यान अथवा निर्विकल्प धर्मध्यान नहीं पाया जाता है और सविकल्प रूप धर्मध्यान भी नहीं पाया जाता है क्योंकि-

तदविरतदेशविरत प्रमत्त संयतानाम्।

(तत्त्वार्थ सूत्र - 9/36)

वह धर्मध्यान अविरत सम्यग्दृष्टि, देशविरत और प्रमत्तसंयतों में पाया जाता है।

कहा भी है कि-

धर्म्यध्यानं चतुर्विकल्पमवसेयम्। तदविरतदेशविरत प्रमत्ता - प्रमत्तसंयतानां भवति।

(सर्वार्थ सिद्धि ग्रंथ 9/36)

अर्थात् चार प्रकार के धर्मध्यान जानना चाहिए। यह अविरत-सम्यग्दृष्टि, देशविरत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीवों के होता है ।

कश्चिदाह - धर्म्यमप्रमत्त संयतस्येवेति तन्न किं कारणम्। पूर्वेषां विनिवृत्तिप्रसंगात् । असंयतसम्यग्दृष्टिसंयतासंयत प्रमत्तसंयतानामपि धर्मध्यान- मिष्यते सम्यक्त्व प्रभवत्वात् ।

(तत्त्वार्थ राजवर्तिक - 9/36/13)

प्रश्न – धर्मध्यान तो अप्रमत्तसंयतों के ही होता है?

उत्तर – नहीं, क्योंकि ऐसा मानने से पहले के गुणस्थानों में धर्मध्यान के अभाव का प्रसंग आ जाएगा, किन्तु सम्यक्त्व के प्रभाव से असंयत-सम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और प्रमत्तसंयतों में धर्मध्यान होना इष्ट है।

और भी देखें- धवला टीका में कहा है कि -

असंजदसम्मादिट्ठि संजदासंजद.... धम्मज्झाणस्स पवुत्ती होदित्ति जिणोवएसादो ।

(धवला जी पु. 13/5, 4, 26/50)

अर्थात् असंयतसम्यग्दृष्टि, देशसंयत आदि जीवों के धर्मध्यान की प्रवृत्ति होती है, ऐसा जिनेन्द्र भगवान का उपदेश है । अतः देशसंयत गुणस्थानवर्ती आर्यिकाओं के धर्मध्यान पाया जाता है । अतः जिनेन्द्र भगवान के इस उपदेश में शंका नहीं करना चाहिए यह बात सिद्ध हुई ।

4. आर्यिकाओं को तद्भव से निर्वाण (मोक्ष) का निषेध :-

प्रश्न- आर्यिकाओं को उसी भव से निर्वाण/मोक्ष होता है या नहीं ?

सन्ति धुवं पमदाणं मोहपदोसा भयं दुगंछा य ।
चित्ते चित्त माया तम्हा तासिं ण णिव्वाणं ।।

(प्रवचनसार प्रक्षेपक गाथा - 224/4)

अर्थात् स्त्रियों के मोह, प्रदोष (भय), जुगुप्सा (ग्लानि), चित्त में प्रतिक्षण माया (छल-कपट) नियम से नित्य पाये जाते हैं । इसलिये उनका उसी भव में निर्वाण नहीं होता है।

सुणहाण गद्दहाण य गोपसुमहिलाण दीसदे मोक्खो ।
जे सोधंति चउत्थं पिच्छिज्जंता जणेहि सव्वेहिं ।।

(शील पाहुड गाथा - 29)

अर्थात् कुत्ते, गधे, गाय और स्त्रियों जैसे जानवरों की मुक्ति किसने देखी है ? जो चौथे मोक्ष पुरुषार्थ का सेवन करता है उसे मोक्ष मिलता है।

महाव्रतों का अभाव होने से स्त्रियों को मुक्ति नहीं होती ।

(मोक्ष पाहुड/टी./12/313/11 जै. सि. को. भाग 3)

ण वि सिज्झइ वत्थधरो जिणसासण जइ वि होइ तित्थयरो ।

(सूत्र पाहुड गाथा 23)

अर्थात् जिनशासन में कहा गया है कि वस्त्रधारी व्यक्ति को सिद्धि (मुक्ति/निर्वाण) नहीं मिलती, चाहे वह तीर्थंकर ही क्यों न हो ?

स्त्री के सवस्त्र लिंग में हेतु-स्त्रियाँ कभी दोष के बिना नहीं होती इसलिये उनका शरीर वस्त्र से ढका रहता है और विरक्त अवस्था में वस्त्र सहित लिंग धारण करने का ही उपदेश है ।।5।।

प्रति मास चित्तशुद्धि विनाशक रक्त स्रवण होता है ।। शरीर में बहुत से सूक्ष्मजीवों की उत्पत्ति होती है ।

उनके काँख, योनि और स्तन आदि अवयवों में बहुत सूक्ष्म जीव उत्पन्न होते रहते हैं। इसलिये उनके पूर्ण संयम नहीं फल सकता ।।7।। इसलिये जिनेन्द्र भगवान ने स्त्रियों के लिये सआवरण लिंग का निर्देश किया है।

प्र.सा./मू./प्रक्षेपक गाथा/225/5-9 जै. सि. को. भा. 3.

तात्पर्य यह निकला कि स्त्रियों के तद्भव से मोक्ष नहीं होता किन्तु अन्य भव से मोक्ष होता है। जैसा कि -

यदि उपरोक्त दोषाः सन्ति स्त्रीणां तर्हि सीता रुक्मिणी कुन्ती द्रौपदी सुभद्रा प्रभृतयो जिन दीक्षा गृहीत्वा विशिष्ट तपश्चरणेन कथं षोडश स्वर्गे गता इति चेत्। परिहारमाह-तत्र दोषो नास्ति तस्माद् स्वर्गाददृगत्य पुरुषवेदेन मोक्षं यास्यन्त्यग्र। तद्भवमोक्षो नास्ति भवन्तरे भवतु को दोष इति।

स्त्री को तीर्थंकर कहना युक्त नहीं - किंतु आपके मत में मल्लि तीर्थंकर स्त्री कहा, सो भी अयुक्त है क्योंकि तीर्थंकर पूर्वभव में 16 कारण भावना भाते हैं। ऐसे सम्यग्दृष्टि स्त्रीवेद कर्म का बंध भी नहीं करते, तब वे स्त्री कैसे बन सकते हैं और भी यदि मल्लि तीर्थंकर या कोई अन्य स्त्री होकर निर्वाण को प्राप्त हुआ है तो आप लोग स्त्री रुप प्रतिमा की भी आराधना क्यों नहीं करते

(प्रवचनसार तात्पर्यवृत्ति/प्रक्षेपक-गाथा 225/8)

प्रश्न- यदि स्त्रियों के पूर्वोक्त सभी दोष होते हैं तो सीता, रुक्मिणी, कुन्ती, द्रौपदी, सुभद्रा आदि सतियाँ जिनदीक्षा ग्रहण करके विशिष्ट तप के द्वारा 16वें स्वर्ग में कैसे गयीं ?

उत्तर - इसमें कोई दोष नहीं है, क्योंकि स्वर्ग से आकर आगे पुरुषवेद से मोक्ष को प्राप्त करेंगी। स्त्री के तद्भव मोक्ष नहीं है, परन्तु भवान्तर से मोक्ष हो जाने में क्या दोष है अर्थात् भवान्तर से मोक्ष जाने में कोई दोष नहीं है।

सम्यग्दर्शनशुद्धाया द्रौपद्यास्तपसः फलात् ।
अरणाच्युत देवत्वपूर्विका सिद्धिरिष्यते ।।

(हरिवंश पुराण-सर्ग 64 श्लोक 142)

अर्थात् सम्यग्दर्शन से शुद्ध द्रौपदी तप के फलस्वरूप आरणाच्युत युगल में देव होगी और उसके बाद मनुष्य पर्याय से मोक्ष जाएगी।

परम्परा से निर्वाण प्राप्ति -

सिज्झइ तइयम्मि भवे पंचमए कोवि सत्तमट्ठमए ।
भुंजिवि सुरमणुयसुहं पावेइ कमेण सिद्ध पयं ।।

(वसुनंदी श्रावकाचार गाथा 539)

अर्थात् देशव्रती भी तीसरे, पाँचवे, सातवे या आठवें भव में देवताओं और मनुष्यों का सुख भोगकर सिद्ध पद प्राप्त करता है।

प्रश्न - यदि वस्त्रधारी आर्यिकाओं के मोक्ष नहीं होता, तो उन्हें उपचार से भी महाव्रती क्यों कहा ?

उक्त प्रश्न के उत्तर में इस प्रकार कहा है-

अथमतं-यदि (अर्जिकानां) मोक्षो नास्ति तर्हि भवदीयमते किमर्थं अर्जिकानां महाव्रतारोपणं। परिहारमाह-तदुपाचारेण कुल व्यवस्था निमित्तं न चोपचारः साक्षाद् भवितुमर्हति...। किन्तु यदि तद्भवे मोक्षो

भवति स्त्रीणां तर्हि शतवर्ष दीक्षिताया अर्जिकाया अद्यदिने दीक्षितः साधुः कथं वंद्यो भवति। सैव प्रथमतः किं वन्द्या भवति साधोः

(प्रवचनसार तात्पर्यवृत्ति गा. 224-8)

प्रश्न - यदि स्त्री के मोक्ष नहीं होता, तो आर्यिकाओं को महाव्रतों का आरोप किसलिए किया जाता है ?

उत्तर - साधुसंघ की व्यवस्था मात्र के लिये उपचार से वे महाव्रती कही जाती हैं और उपचार में साक्षात् होने की सामर्थ्य नहीं है, किन्तु यदि तद्भव से स्त्री मोक्ष गई होती, तो १०० वर्ष की दीक्षिता आर्यिका के द्वारा आज का नवदीक्षित साधु वंद्य कैसे होता ? वह आर्यिका ही पहले उस साधु की वंद्या क्यों न होती।

प्रश्न - तो फिर स्त्रियों में चौदह गुणस्थान होते हैं यह कथन कैसे बन सकता हैं ?

उत्तर – नहीं, क्योंकि भाव स्त्री में अर्थात् स्त्री वेद युक्त मनुष्यगति में चौदह गुणस्थान के सद्भाव मान लेने में कोई विरोध नहीं आता है।

प्रश्न – बादर कषाय गुणस्थान के ऊपर भाववेद नहीं पाया जाता है इसलिये भाववेद में 14 गुणस्थानों का सद्भाव नहीं हो सकता है ?

उत्तर – नहीं, क्योंकि यहाँ पर वेद की प्रधानता नहीं है किन्तु गति प्रधान है और वह पहले नष्ट नहीं होती हैं।

प्रश्न – यद्यपि मनुष्यगति में 14 गुणस्थान संभव है फिर भी उसे वेद विशेषण से युक्त कर देने पर उसमें 14 गुणस्थान संभव नहीं हो सकते ?

उत्तर – नहीं, क्योंकि विशेषण के नष्ट हो जाने पर भी उपचार से उस विशेषण युक्त संज्ञा को धारण करने वाली मनुष्य गति में 14 गुणस्थानों का सद्भाव मान लेने में कोई विरोध नहीं आता है। (ध.1/1, 1, 93/334/4 जै.सि.को.भा.3)

और भी देखें-

प्रथमसंहनन नाभावात्स्त्री सप्तमनरकं न गच्छति एवं निर्वाणमपि।
पुंवेदं जे वेदंता पुरिसा खवग सेढिमारुढ।
सेसोदयेण वि तहा, झाणुवजुत्ता य ते दु सिज्झंति।

इति गाथा कथितार्थाभिप्रायेण भावस्त्रीणां कथं निर्वाणमिति चेत् ? तासां भावस्त्रीणां प्रथमसंहननमस्ति द्रव्यस्त्री वेदाभावा त्तदभव - मोक्ष - परिणाम-प्रतिबन्धक-तीव्रकामोद्रेकोऽपि नास्ति। द्रव्यस्त्रीणां प्रथम संहननं नास्तीति कस्मिन्नागमे कथितमास्त इति चेत्।

(प्रवचनसार तात्पर्यवृत्ति टीका गा. 224/8)

प्रश्न– जिस प्रकार प्रथम संहनन के अभाव से स्त्री सप्तम् नरक नहीं जाती है, उसी प्रकार निर्वाण को भी प्राप्त नहीं करती है। सिद्ध भक्ति में कहा है कि द्रव्य से पुरुषवेद को अथवा भाव से तीनों वेदों को अनुभव करता हुआ जीव क्षपकश्रेणी पर आरूढ़ ध्यान से संयुक्त होकर सिद्धि प्राप्त करता है। इस गाथा में कहे गये अभिप्राय से भाव स्त्रियों को निर्वाण कैसे हो सकता है ?

उत्तर – भावस्त्री को प्रथम संहनन भी होता है और द्रव्यस्त्री वेद के अभाव से उसके मोक्ष परिणाम का प्रतिबंधक तीव्र कामोद्रेक भी नहीं होता है। परन्तु द्रव्यस्त्री को प्रथम संहनन नहीं होता है, क्योंकि आगम में उसका निषेध किया है। और भी देखें-

वे मध्यम अन्तरात्मा रूप मोक्षमार्गी तो हैं, पर उस पर्याय से मोक्ष नहीं होता। श्वेताम्बर मत में स्त्री मुक्ति मानी गई है। अतः उसका खण्डन करते हुए वीरनंदी आचार्य कहते हैं-

मुक्तिश्चेदस्ति किं नासां प्रतिमाः स्तवनान्यपि ।
क्रियन्तेऽ पूज्याश्चेत्तासां मुक्तेर्दत्तो जलाञ्जलिः ।।

(आचारसार 2 श्लोक 88)

यदि इन स्त्रियों को मुक्ति है, तो उनकी प्रतिमा स्तवन भी क्यों नहीं किये जाते हैं, यदि ये अपूज्य हैं तो उनकी मुक्ति की जलांजलि दे दी । अर्थात् अपूज्य को मुक्ति प्राप्ति की चर्चा व्यर्थ है ।

भावार्थ – यदि उन स्त्रियों को मुक्ति होती है तो उनकी प्रतिमा और स्तोत्र क्यों नहीं हैं। यदि कहो कि वह पूज्य हैं तो सत्य है। मुक्ति के लिये तिलांजलि दे दी। अर्थात् पूज्य होने मात्र से मुक्ति की पात्र नहीं हैं ।

गानाक्रन्दनसन्मार्जनाद्यवद्य क्रियोज्झिताः ।
जातिकीर्त्यञ्चिताचाराश्चार्वीक्षान्त्यार्जवान्विताः ।।

(आचारसार 2 श्लोक 91)

गीत, आक्रन्दन, सन्मार्जन आदि सावद्य क्रियाओं से रहित जाति कीर्ति से पूजनीय है चारित्र जिनका, ऐसे क्षमा और आर्जव से युक्त होती हैं।

5. आर्यिकाएँ उन्मार्गी नहीं, मोक्षमार्गी हैं:-

प्रश्न – आर्यिकाएँ उन्मार्गी हैं या मोक्षमार्गी ?

उत्तर– आर्यिकाएँ उन्मार्गी नहीं मोक्षमार्गी हैं कहा भी है कि-

णिच्चेलपाणिपत्तं उवइट्ठं परम जिणवरिंदेहिं ।
एक्को हि मोक्खमग्गो सेसा य अमग्गया सव्वे ।।

(सूत्र पाहुड गाथा 10)

अर्थात् तीर्थंकर परमदेव ने नग्न मुद्रा के धारी निर्ग्रंथ मुनि को ही पाणीपात्र में आहार लेने का उपदेश दिया है। यह एक निर्ग्रंथ मुद्रा ही एकमात्र मोक्षमार्ग है। इनके सिवाय शेष अमार्ग है, मोक्षमार्ग नहीं है, ऐसा कहा है। और भी देखें-

णग्गो हि मोक्खमग्गो सेसा उम्मग्गया सव्वे ॥

(सूत्र पाहुड गाथा 23)

नग्नवेष ही (साक्षात्) मोक्षमार्ग है, शेष सब उन्मार्ग हैं, मिथ्यामार्ग हैं।

शेषाः सीतपटादीनां मार्गः सर्वेऽपि उन्मार्गकाः कुत्सिता मिथ्यारूपा मार्ग जानीया विद्वद्भिरित्यर्थः ।

(सूत्र पाहुड टीका 23)

समाधान - उन्मार्ग से यहाँ मात्र मिथ्यादृष्टि उन्मार्गी हैं, ऐसा अर्थ लेना चाहिये तथा रत्नत्रयधारी मुनि ही मोक्षमार्गी हैं। पर चतुर्थ- पंचम गुणस्थानवर्ती भी एकदेश मोक्षमार्गी ही हैं, उन्मार्गी नहीं है। जैसा कि कहा है कि-

भावलिंगसहितं निर्ग्रन्थयति लिङ्ग गृहीलिङ्ग चेति द्वयमपि मोक्षमार्गे व्यवहार नयो मन्यते ।

(समयसार तात्पर्य वृत्ति-गाथा 14/507)

अर्थात् भावलिंग सहित निर्ग्रंथ यति का लिंग और चतुर्थ, पंचम गुणस्थानवर्ती गृहस्थ श्रावक का लिंग है। इसलिये दोनों को (द्रव्य भाव) ही मोक्षमार्ग में व्यवहार नय से माना गया है।

6. आर्यिकाओं को क्षायिक सम्यग्दर्शन-

प्रश्न - आर्यिकाओं को क्या क्षायिक सम्यग्दर्शन हो सकता है?

उत्तर- हाँ, हो सकता है। यथा-

क्षायिक सम्यक्त्वं तु असंयतादि चतुर्थगुणस्थान मनुष्याणां असंयत-देशसंयतोपचार मानुषीणां च कर्मभूमिवेदक सम्यग्दृष्टि नामेय ।

(गोम्मटसार जीवप्रबोधिनी टीका गाथा 704)

अर्थात् क्षायिक सम्यग्दर्शन कर्मभूमिज वेदक सम्यग्दृष्टि असंयतादि चार गुणस्थानवर्ती मनुष्यों को तथा असंयत, देशसंयत या उपचार से महाव्रतधारी मनुष्यनीयों को (उत्पन्न) हो सकता है।

आचार्य प्रभाचंद्र महाराज के मतानुसार द्रव्यस्त्री को नहीं हो सकता है यथा-

मानुषीणां भाववेद स्त्रीणां न द्रव्यवेद स्त्रीणां तासां क्षायिका संभवात् ।

(सर्वार्थ सिद्धि टिप्पण 17.4 पे. 390)

अर्थात् मानुषी का अर्थ भाववेदी स्त्री है, द्रव्यवेदी स्त्री नहीं है, क्योंकि द्रव्य वेदी स्त्रियों के लिए क्षायिक सम्यक्त्व संभव नहीं है।

7. आर्यिकाओं को ग्यारह अंग का ज्ञान :-

प्रश्न- आर्यिकाओं को क्या अंगों का ज्ञान हो सकता है ?

उत्तर- हाँ, कहा है कि

द्वादशाङ्गधरो जातः क्षिप्रं मेघेश्वरो गणी ।
एकादशाङ्गभृज्जाता सार्यिकापि सुलोचना ।।

(हरिवंश पुराण सर्ग 12 श्लोक 52)

अर्थात् मेघेश्वर जयकुमार शीघ्र ही द्वादशांग के पाठी होकर आदिनाथ भगवान के गणधर हो गये और आर्यिका सुलोचना भी ग्यारह अंगों की धारक हो गई।

8. आर्यिकाओं की समाचार विधि मुनियोंवत् :-

मुनि व आर्यिकाओं के एक समान मूलगुण होने से मूलाचार आदि में समान वर्णन है तथा ऐलक, क्षुल्लक, क्षुल्लिकाओं की समान ग्यारह- ग्यारह प्रतिमा होने से रत्नकरण्ड आदि श्रावकाचारों में वर्णन है। यही कारण है कि आर्यिकाओं व श्राविकाओं की चर्या का वर्णन करने वाला कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं है। मूलाचार में मुनि व आर्यिकाओं के अहोरात्रिक समाचार समान कहे गये हैं।

मूलाचार में समाचार का स्वरूप इस प्रकार से कहा है कि-

समदा समाचारो सम्माचारो समो य आचारो।
सव्वेसिं सम्माणं सामाचारो दु आचारो..।।

(मूलाचार गाथा 123)

अर्थात् 1. समता भाव समाचार है।

2. सम्यक् (अतिचार रहित जो) मूलगुणों का आचरण है, वह समाचार है।

3. समस्त मुनियों का समान अहिंसादि रूप जो आचरण है, वह समाचार है।

4. सर्वक्षेत्र में हानि - वृद्धि रहित कायोत्सर्गादि द्वारा समान परिणाम रूप आचरण समाचार है।

9. समाचार के भेद :-

दुविहो समाचारो ओघो वि य पदविभागिओ चेव।
दसहा ओघ भणिओ अणेगहा पदविभागी य ।।

इच्छा मिच्छाकारो, तधाकारो य आसिआ णिसिही ।
आपुच्छा पडिपुच्छा छंदण सणिमंतणा य उपसंपा ।
उग्गम सूरप्पहुदी समणाहोरत्तमंडले कसिणे ।
जं आचरंति सददं एसो भणिदो पद विभागी ।

(मूलाचार गा. 124, 125, 130)

समाचार दो प्रकार का है औधिक व पदविभागी। औधिक समाचार के दस भेद हैं और पदविभागी के अनेक भेद हैं।

औधिक समाचार विधि के दस भेद निम्न प्रकार से हैं-

1. इच्छाकार 2. मिथ्याकार 3. तथाकार 4. आसिका 5. निषीधिका 6. आपृच्छा 7. प्रतिपृच्छा 8. छंदन 9. सन्निमंत्रण 10. उपसंपत

जिस समय सूर्य उदित होता है वहाँ से लेकर समस्त दिन-रात की परिपाटी में मुनिगण नियमादि का निरंतर आचरण करें, सो यह प्रत्यक्ष रूप पदविभागी समाचार कहा है।

10. मुनियों व आर्यिकाओं की समाचार विधि समान है :-

मुनियों व आर्यिकाओं की समाचार विधि समान होती है-

एसो अज्जाणंपि अ सामाचारो जहक्खिओ पुव्वं ।
सव्वह्मि अहोरत्ते विभासिदव्वो जहाजोग्गं ।।

(मूलाचार गाथा-187)

अर्थात् जैसे पूर्व में समाचार विधि मुनियों की कही है, वैसी ही आर्यिकाओं को भी दिन-रात की सभी विधि को यथायोग्य कहना / जानना चाहिये। उक्त समाचार विधि से सम्पन्न मुनिराज वन्दनीय कहे गये हैं।

आर्यिकाओं की अहोरात्रिक चर्या मुनिवत् ही होती है। यही कारण है कि मुनिराज वंदनीय हैं-

जो संजमेसुसहिओ, आरम्भ-परिग्गहेसु विरओ वि ।
स होइ वंदणीओ, ससुरा-सुर-माणुसे लोए ।।
जे बावीस-परीसह सहंति सत्तीसएहिं संजुत्ता ।
ते होंति वंदणीया कम्मक्खय णिज्जरा-साहू ।।

(सूत्र पाहुड गाथा 11-12)

अर्थात् जो मुनि संयम से सहित हैं तथा आरम्भ और परिग्रह से विरत हैं वही सुर असुर और मनुष्यों से युक्त लोक में वन्दनीय हैं। जो बाईस परिषह सहन करते हैं सैकड़ों शक्तियों से सहित हैं तथा कर्मों के क्षय और निर्जरा करने में कुशल हैं, ऐसे मुनि वंदना करने योग्य हैं और भी कहा है कि

पंचमहव्वयजुत्तो तिहि गुत्तिहि जो स संजदो होई ।
णिग्गन्थ मोक्खमग्गो सो होदि हु वंद णिज्जो य ।।

(सूत्र पाहुड गाथा 20)

अर्थात् जो पाँच महाव्रतों, तीन गुप्तियों से सहित है वह संयमी है। ऐसा निर्ग्रन्थ ही मोक्षमार्ग है, वही वंदनीय है।

❀ ❀ ❀

9

आर्यिका-नवधा भक्ति

आर्यिकाओं की आहार के समय विधि/नवधा भक्ति होती है-

अन्यदा सुव्रताख्यायै गणिन्यै विधिपूर्वकम् ।
दत्वाऽन्नदानमेतस्या वमने सत्युपोषितात् ।।

(उत्तर पुराण सर्ग 62 श्लोक 498)

अर्थात् एक दिन आपने सुव्रता गणिनी आर्यिका को विधिपूर्वक आहार दिया ।

युगमानमहीपृष्ठन्यस्तसौम्यनिरीक्षणा।
तपःकारणदेहार्थं भिक्षां चक्रे यथाविधि ।।

(पद्मपुराण पर्व 109 श्लोक 14)

युगप्रमाण पृथिवी पर जो आर्यिका अपनी सौम्य दृष्टि रखकर चलती थी, जो तप के कारण शरीर की रक्षा के लिए विधिपूर्वक भिक्षा ग्रहण करती थी।

उत्तर पुराण एवं पद्मपुराण ग्रंथों की गाथाओं में आये विधि शब्द का अर्थ नवधा भक्ति है।

देखें मूलाचार ग्रंथ की टीका- यथा-

विधिना दत्तं प्रतिग्रहोच्चस्थान -पादोदकार्चना-प्रणमनमनोवचन-काय-शुद्ध्यशन शुद्धिर्भिदत्तमुपनीत

(मूलाचार गाथा आचारवृत्ति 482-483)

विधि से दिया गया हो अर्थात् पड़गाहन करना, उच्च स्थान देना, पाद-प्रक्षालन करना, अर्चना करना, प्रणाम करना, मन-वचन- काय की शुद्धि तथा आहार की शुद्धि यह नवधा भक्ति की विधि कहलाती है।

अतः स्पष्ट हो जाता है कि आर्यिकाओं की पूर्ण नवधा भक्ति होती है, तभी वे आहार ग्रहण करती हैं।

तत्त्वार्थ सूत्र में कहा है कि-

विधिद्रव्य दातृपात्र विशेषात्तद्विशेषः ।

(तत्वार्थ सूत्र 7/39)

अर्थात् विधि (नवधा भक्ति), द्रव्य (आहार सामग्री), दातृ, आहार दान करने वाला पात्र जिन्हें आहार दिया जाता है, इनकी विशेषता से फल में भी विशेषता प्राप्त होती है।

1. विधि - नवधा भक्ति

विधि की परिभाषा बताते हुए सर्वार्थसिद्धि ग्रन्थ में कहा है कि-

प्रतिग्रहादि क्रमो विधिः प्रतिग्रहादितवादरानादर कृतो भेदः। तपः स्वाध्याय परिवृद्धि हेतुत्वादिर्द्रव्य विशेषः। अनसूया विषादादिर्दातृ विशेषः।

मोक्ष कारण गुण संयोग : पात्र विशेषः। ततश्च पुण्यफल विशेषः क्षित्यादि विशेषाद् बीज फल विशेष वत् ।

(सर्वार्थसिद्धि - 7/39/728)

अर्थात् विधि विशेष - प्रतिग्रहादि (पड़गाहन आदि) नवधा भक्ति को विधि कहते हैं। उस विधि में आदर और अनादर होने से जो भेद होता है वह विधि विशेष है।

विधिना दत्तं प्रतिग्रहोच्चस्थानपादोपदकार्चना- प्रणमनमनोवचन- काय-शुद्धयशन शुद्धिर्भिदत्तमुपनीत.... ।

(मूलाचार-गाथा आचारवृत्ति टीका 482-483)

विधि से दिया गया हो अर्थात् पड़गाहन करना, उच्च स्थान देना, पाद-प्रक्षालन करना, अर्चना करना, प्रणाम करना, मन-वचन-काय की शुद्धि तथा आहार की शुद्धि यह नवधा भक्ति ही विधि कहलाती है।

द्रव्य विशेष– जिससे तप और स्वाध्याय की वृद्धि होती है, वह द्रव्य विशेष है।

दातृ विशेष – अनुसूया और विषाद आदि का न होना, दाता की विशेषता है।

पात्र विशेष – मोक्ष में कारणभूत गुणों से युक्त रहना पात्र की विशेषता है। जैसे पृथ्वी में विशेषता होने से उससे उत्पन्न हुए बीज में विशेषता आ जाती है, वैसे ही विधि आदि की विशेषता से, दान से प्राप्त होने वाले पुण्य फल में विशेषता आ जाती है।

प्रतिग्रह आदि का क्रम-

> **प्रतिग्रहण मत्युच्चैः स्थानेस्य विनिवेशनम् ।**
> **पादप्रधावनं चार्चा नतिः शुद्धिश्च सा त्रयी ।।**
> **विशुद्धिश्चाशनस्येति नव पुण्यानि दानिनम् ।**
> **स तानि कुशलो भेजे पूर्व संस्कार चोदितः ।।**

(महापुराण पर्व 20/86-87)

अर्थात् प्रतिग्रह-पड़गाहन करना, उच्चासन, पादप्रक्षालन, पूजा, नमस्कार, मन शुद्धि, वचन शुद्धि, कायशुद्धि और आहार-जल शुद्धि ये नव विधि पुण्य या भक्ति है।

प्रश्न- इन नव विधि/पुण्य/भक्ति को विस्तार से समझाइये ?

उत्तर - वसुनंदि श्रावकाचार में कहा है कि

(1) प्रतिग्रह/पड़गाहन - पात्र को अपने घर, द्वार पर आता देख अथवा अन्यत्र से विमार्गण कर, नमस्कार हो ठहरिये अर्थात्

आचार्य, उपाध्याय, मुनि हो तो हे स्वामी ! नमोऽस्तु-3, अत्र-3, तिष्ठ-3 ।

आर्यिका हो तो हे माताजी ! वंदामि-3 अत्र-3 तिष्ठ-3 ।

ऐलक, क्षुल्लक हों तो हे स्वामी ! इच्छामि-3 अत्र-3 तिष्ठ-3 ।

क्षुल्लिका हो तो हे माताजी ! इच्छामि-3 अत्र-3 तिष्ठ-3 ।

णेऊण णिययगेहं णिरवज्जाणु तह उच्चठाणम्मि ।
ठविऊण तओ चलणाणधोवणं होइ कायव्वं ।।
पाओदयं पवित्तं सिरम्मि काऊण अच्चणं कुज्जा ।
गंधक्खय-कुसुम-णेवज्ज-दीव धूवेहिं य फलेहिं ।।
पुप्फंजलिं खिवित्ता पयपुरओ वंदण तओ कुज्जा ।
चइऊण अट्ट रुद्दे मणसुद्धी होइ कायव्वा ।।

णिट्ठुर-कक्कस वयणाइवज्जणं तं वियाण वचिसुद्धिं ।
सव्वत्थ संपुडंगस्स होइ तह कायसुद्धी वि ।।
चउदसमल-परिसुद्ध जं दाण सोहिऊण जइणाए ।
संजमिजणस्स दिज्जइ सा णेया एसणासुद्धी ।।

(वसुनंदी श्रावकाचार - गाथा 227-231)

ऐसा कहकर प्रतिग्रह/पड़गाहन करना चाहिये। जब वे आकर खड़े हो जायें तो आचार्य, उपाध्याय, मुनि तथा आर्यिका माताजी की तीन परिक्रमा लगाकर मनशुद्धि, वचनशुद्धि, कायशुद्धि मम गृह में प्रवेश कीजिये। ऐसा कहें तथा दरवाजे के बाहर प्रासुक पानी (जल) से पैर धो लें। आगंतुक पात्र भी अपने कमण्डल के जल से पैर धो लें। यह पहली विधि/भक्ति है।

(2.) उच्चासन - अपने घर में ले जाकर निर्दोष तथा ऊँचे पाटे आदि पर बैठने की प्रार्थना करना, कि हे स्वामी ! उच्चासन ग्रहण कीजिये। यह दूसरी विधि है।

(3.) पाद प्रक्षालन - तदनंतर प्रासुक जल से थाली आदि में उनके पैर धोकर महाव्रती मुनि, आर्यिकाओं के पवित्र चरणोदक को माथे लगाना चौथी भक्ति है।

(4.) अर्चना/पूजा - पश्चात् किसी थाली में स्वस्तिक चिन्ह बनाकर पूजा करें अर्थात् मुनि/आर्यिका की पूजा में सर्वप्रथम लवंग आदि पुष्प हाथ में लेकर विनय के साथ बोलें कि -

(1) हे स्वामी/माताजी अत्र अवतर अवतर संवोषट् इति आह्वाननं (यह कहकर पुष्प ठोने या थाली में रखें और पुनः पुष्प लेकर बोलें कि)

(2) हे स्वामिने! माताजी अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम् (पुष्प ठोने/थाली में रखें तथा पुनः पुष्प लें)

(3) हे स्वामिन्! माताजी अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं (बोलकर पुष्प को ठोने/थाली में रखें। पश्चात् जल का कलश हाथ में लेकर बोलें कि)

(4) ॐ ह्रूँ परम पूज्य (नाम याद हो तो नाम लें अन्यथा महाराज/मातु बोलें)... महाराजस्य/मातुः चरणाग्रे जन्म-जरा-मुत्य रोग विनाशनाय जलम् निर्वपामीति स्वाहा (मंत्र का जाप करने के बाद जल के लोटे में जल डालें और हाथ में लेकर चंदन डालें

(5) ॐ ह्रूँ परमपूज्य ... महाराजस्य / मातु चरणाग्रे संसार ताप विनाशनाय चंदनम् निर्वपामीति स्वाहा (चंदन के पात्र में चंदन चढ़ायें पश्चात् अक्षत अर्थात् सफेद चावल लेकर बोलें)

(6) ॐ ह्रूँ परमपूज्य महाराजस्य/मातुः चरणाग्रे अक्षय पद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा (पश्चात् पुष्प लेकर बोलें)

(7) ॐ ह्रूँ परमपूज्य महाराजस्य/मातुः चरणाग्रे कामबाण विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा (द्रव्य चढ़ाने वाली थाली में पुष्प चढ़ायें पश्चात नैवेद्य लेकर बोलें)

(8) ॐ ह्रूँ परमपूज्य... महाराजस्य/मातुः चरणाग्रे क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा (द्रव्य चढ़ाने की थाली में नैवेद्य चढ़ायें पश्चात् दीप, पीले चिटक या बिना जला हुआ दीप लेकर बोलें)

(9) ॐ ह्रूँ परमपूज्य महाराजस्य / मातु चरणाग्रे मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा (द्रव्य चढ़ाने की थाली में दीपक चढ़ायें पश्चात् धूप हाथ में लेकर बोलें)

(10) ॐ ह्रूँ परम पूज्य महाराजस्य/मातुः चरणाग्रे अष्ट कर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा (द्रव्य चढ़ाने की थाली में धूप चढ़ायें पश्चात् फल लेकर बोलें)

(11) ॐ ह्रूँ परमपूज्य......महाराजस्य / मातुः चरणाग्रे मोक्षफल प्राप्त्ये फलं निर्वपामीति स्वाहा (फल को थाली में द्रव्य के साथ रखकर सभी सामग्रियों को एक साथ मिला लें और कहें)

(12) ॐ ह्रूँ परमपूज्य......महाराजस्य / मातुः चरणाग्रे अनर्घ पद प्राप्त्ये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा। (द्रव्य की थाली में अर्घ चढायें, यदि आपको अर्घ की चार पंक्तियाँ याद हैं तो उन्हें बोलकर या उदक चंदन तंदुल पुष्पकै... श्लोक बोलकर अर्घ चढ़ायें।

(13) ॐ हूँ परमपूज्य महाराजस्य/मातृ चरणाब्रे अनर्घ पद प्राप्त्ये जयमाला पूर्ण अर्घ निर्वपामीति स्वाहा (द्रव्य चढ़ाने की थाली में अर्घ अर्पित करें)।

यदि ऐलक, क्षुल्लक, या क्षुल्लिका हो, तो उन्हें 'उदक चंदन तंदुल पुष्पकै' का श्लोक बोलकर ही ...ॐ हूँ परमपूज्य...... ऐलक/क्षुल्लक/क्षुल्लिका - महाराजस्य/मातुः चरणाब्रे अर्घ निर्वपामीति स्वाहा। (द्रव्य चढ़ाने वाली थाली में अर्घ चढ़ायें पश्चात् पुष्प हाथ में लेकर बोलें) यह चौथी भक्ति है।

(5) **नमस्कार** - गवासन/पंचांग बैठकर नमस्कार करना यह पाँचवी विधि है।

(6) **मनशुद्धि** - आर्त-रौद्र ध्यान छोड़ना छठवीं विधि मनशुद्धि है।

(7) **वचनशुद्धि** - निष्ठुर और कर्कश वचन का त्याग सातवीं विधि वचनशुद्धि है।

(8) **कायशुद्धि**- स्नान आदि करके शुद्ध वस्त्र पहनकर शरीर को चारों ओर से स्वच्छ रखना ही काय शुद्धि है, यह आठवीं विधि है।

(9) एषणा (अन्न/जल) शुद्धि - तपस्वियों को (46 दोषों और) चौदह मलदोषों से रहित यत्नपूर्वक शोधकर संयमियों को आहार देना यह नौवीं विधि एषणा शुद्धि है।

अतः स्पष्ट हो जाता है, कि आर्यिकाओं की पूर्ण नवधा भक्ति होती है, तभी वे आहार ग्रहण करती हैं।

प्राचीन सभी संघों में आर्यिकाओं की नवधा भक्ति प्रचलित थी, है और रहेगी।

आज तक चली आई आगम परम्परा एवं प्राचीन आचार्य परम्परा में आर्यिकाओं की नवधा भक्ति का ही प्रचलन है। किसी भी ग्रन्थ में आर्यिकाओं के पाद प्रक्षालन का तथा पूजन का निषेध नहीं मिला। इसी प्रकार आर्यिकाओं की सप्तधा भक्ति होना चाहिये। ऐसा भी कोई प्रमाण नहीं मिला। अपितु अहोरात्रिक समाचार विधि मुनिवत् ही होती है। ऐसा प्रमाण है। परम पूज्य आचार्य आदिसागर जी अंकलीकर, आचार्य शान्तिसागर जी दक्षिण, आचार्य शान्तिसागर जी छाणी (परमपूज्य आचार्य विद्यासागरजी के संघ के अलावा) के सभी संघों में आर्यिकाओं की नवधा भक्ति ही होती आई है तथा वर्तमान में प्रचलित है।

1. ब्र. भूरामल (प.पू. आचार्य ज्ञानसागर जी) जब आचार्य शिवसागर जी के संघ में थे तब उन्होंने आर्यिकाओं की स्वयं नवधा भक्ति की है।

2. मुनि दीक्षा के बाद भी आचार्य ज्ञानसागर जी जब तक आचार्य शिवसागर जी के संघस्थ रहे तब तक कभी भी आर्यिकाओं की नवधा भक्ति का निषेध नहीं किया।

3. परम पूज्य आचार्य धर्मसागर जी से जब ज्ञानसागर जी मिले तब भी उन्होंने आर्यिका नवधा भक्ति का निषेध नहीं किया।

4. आचार्य विद्यासागर जी के गृहस्थिक पिता श्री मल्लप्पा माँ श्रीमती जी एवं बहिन शांता, स्वर्णा ने दीक्षा की भावना प्रकट की, तब आचार्यश्री विद्यासागर जी ने स्वयं उन्हें परमपूज्य धर्मसागर जी से दीक्षा लेने का सुझाव दिया। तदनुसार वहाँ सभी की दीक्षाएँ हुई थी। उस समय पिताश्री का नाम मुनि मल्लिसागर जी तथा माता बहिनों का नाम क्रमशः समयमति माताजी, प्रवचनमति माताजी एवं नियममति माताजी रखा गया था और सभी की नवधा भक्ति होती थी।

5. आचार्य ज्ञानसागर जी के दूसरे शिष्य आचार्य कल्प विवेकसागर जी थे। उन्होंने आर्यिका विशालमति, विज्ञानमति, विद्युत्मति आदि को आर्यिका दीक्षा दी। तब भी उनमें नवधा भक्ति थी और वह 1990 तक होती रही। लेकिन उन्होंने कभी भी उनसे या किसी अन्य से नवधा भक्ति का निषेध नहीं किया।

6. पथरिया में 1990 के पंचकल्याणक तथा गजरथ में परम पूज्य आचार्यश्री विद्यासागर जी तथा परम पूज्य आचार्यश्री विरागसागर जी दोनों संघ उपस्थित थे। आर्यिका विशालमति माताजी भी ससंघ आई थीं तब बहुत-सी ब्रह्मचारिणी दीदियों ने प.पू. आचार्यश्री विद्यासागर जी से पूछा था कि आर्यिका विशालमति माताजी की नवधा भक्ति होती है तो हम लोग भी करेंगे या नहीं ? उत्तर में आचार्यश्री ने कहा था कि ज्यादा ऊहापोह नहीं करना चाहिये, जिनके संघ की जो पद्धति है वैसा ही करना चाहिये। तब बहिनों ने उनकी आहार के समय नवधा भक्ति की थी।

श्रवणबेलगोला में 1993 में आचार्य वर्धमानसागर जी का तथा आचार्य विद्यासागर जी के शिष्य मुनि योगसागर जी आदि का एक साथ वर्षायोग हुआ, पर इस विषय में कभी भी कोई ऊहापोह नहीं हुआ था। सागर में भी महासागर जी आदि, गढ़ाकोटा में क्षमासागर जी और पद्मपुरा में प्रमाणसागर जी मिले, पर इस विषय में किसी ने कोई चर्चा नहीं की।

जिस संघ की जो परम्परा है किसी ने किसी का विरोध नहीं किया। पर आज समस्या बढ़ती जा रही है। कतिपय महाराज-माताजी श्रावकों को निर्देश देते हैं कि किसी भी संघ की आर्यिकाओं की नवधा भक्ति न करें तथा न करने के नियम भी दिलाते हैं। जो करेगा उसके चौके में नहीं पड़गूँगा ऐसा भय भी दिखाते हैं। जो वस्त्रधारियों की नवधा भक्ति करता है वह मिथ्यादृष्टि है, वह नरक जायेगा आदि कहते हैं।

यदि हम कुछ विचार करें तो पायेंगे कि ऐसा कहने वालों का आगम वाक्यों पर तथा अपनी गुरु परम्परा पर किंचित भी विश्वास नहीं है। वे उन्हें स्वयं मिथ्यादृष्टि ठहरा रहे हैं अथवा नरक पहुँचा रहे हैं। तो क्या वे सभी मिथ्यादृष्टि थे और नरक गये ? नहीं, तो कभी ऐसे वाक्य न बोलें अन्यथा आप स्वयं ही मिथ्यादृष्टि कहे जायेंगे।

कालान्तर में जब मेरे (परमपूज्य गणाचार्य श्री विरागसागरजी) समक्ष तद् विषयक आगम प्रमाण विषयक चर्चा आई, तब मैंने आगम चक्खु साहू, नामक पुस्तक लिखी थी। प्रिंट होने के पूर्व मैंने लगभग 15-20 संघों में उसे भेजा था और सभी से अपने-अपने संघों में प्रचलित परम्परा के प्रमाण भी माँगे थे।

तब प.पू. आचार्यश्री विमलसागर जी, प.पू. आचार्य सन्मतिसागरजी, प.पू. आचार्य विद्यासागर जी, पू. आचार्य सुमतिसागर जी, प.पू. आचार्य श्रेयांससागर जी, प.पू. आचार्य कुंथुसागर जी, प.पू. आचार्य वर्धमानसागर जी, प.पू. आचार्य देवनंदि जी एवं गणिनी आर्यिका विजयमती माताजी, गणिनी आर्यिका ज्ञानमती माताजी, गणिनी आर्यिका सुव्रतामती माताजी, गणिनी आर्यिका सुपार्श्वमती माताजी, गणिनी आर्यिका ज्ञानमती माताजी (प.पू. आचार्य सुमतिसागर जी महाराज की शिष्या), आर्यिका विशुद्धमति माताजी (शिष्या, आचार्य निर्मलसागर जी), आर्यिका आदिमती माताजी, आर्यिका श्रेयांसमति माताजी ने लेख की बहुत-बहुत प्रशंसा की। कतिपय सुझाव दिए थे, जिन्हें पुस्तक में समाविष्ट किया गया था।

साथ ही पत्र में यह भी कहा गया था कि विधिपरक प्रमाण हमको जो प्राप्त हुए हैं, वे मैंने इस लेख में प्रस्तुत किये हैं। यदि और भी प्राप्त हों तो आप बतायें, हम उन्हें भी ससम्मान देंगे। निषेध परक एक भी प्रमाण हमें आगम में कहीं स्पष्ट रूप से पढ़ने में नहीं आये, यदि तद् विषयक भी कोई प्राचीन आगम प्रमाण मिलते हों तो उन्हें भी अवश्य बतायें। हम उनको भी इस पुस्तक में सम्मान देंगे, किन्तु कोरी युक्ति या तर्क नहीं देंगे। विशेषकर प.पू. आचार्यश्री विद्यासागर जी महाराज के पास भी एक बार यह

लेख ब्र. रमेश (वर्तमान में आचार्य विशदसागर जी) के द्वारा भेजा गया था। दूसरी बार ब्र. श्री लखमीचंद (घुवारा) के द्वारा भेजा गया था। तब आपने उसे श्रमण मुनि श्री अभयसागर जी के पास रखवाया था और कहा था कि मैं बाद में देख लूँगा। परन्तु फिर बाद में कोई समाचार प्राप्त नहीं हुए थे। अतः 6 माह बाद पुस्तक प्रकाशित हुई थी।

एक प्रश्न जरूर उत्पन्न होता है कि जिन संघों में आर्यिकाओं की नवधा भक्ति नहीं होती है उनके यहाँ पड़गाहन, उच्चासन, मनशुद्धि, वचनशुद्धि, कायशुद्धि, आहार-जलशुद्धि तथा नमस्कार ये सात भक्तियाँ तो होती ही हैं, पर सात भक्तियाँ करने का विधान किस आगम का विधान है उसे सामने लाना चाहिये कि मात्र संघ विशेष का विधान है यह स्पष्ट होना चाहिये।

आर्यिकाओं की नवधा भक्ति, अर्घ, पाद प्रक्षालन, वंदना, पूजा आदि के स्पष्ट आगम प्रमाण दिये हैं। पर किसी आगम में स्पष्ट निषेध के भी प्रमाण मिले हैं अथवा उन्हें वंदामि, नमस्कार, श्रीफल आदि चढ़ाने में कौन-कौन से दोष आते हैं, क्या इसके आगम प्रमाण हैं ?

दूसरी बात यह है कि जब हम सिद्धान्त की गहराई में निष्पक्ष होकर देखेंगे तो पायेंगे कि न तो वस्त्र पूजनीय है और न ही केवल नग्नपना, अपितु पूजनीय तो केवल रत्नत्रय है। रत्नत्रय ही आत्मा का स्वभाव है, धर्म है, गुण है। चाहे वह एक देश हो या सर्वदेश।

क्षायिक सम्यग्दृष्टि तथा द्वादशांग का पाठी सौधर्मेन्द्र तीर्थंकरों के पंचकल्याणकों में स्वयं चतुर्थ गुणस्थानवर्ती तीर्थंकर बालकुमार के गर्भकल्याणक एवं जन्मकल्याणक की अष्टद्रव्य से पूजा करता है। तो क्या वह मिथ्यादृष्टि है, क्या वह नरक जायेगा, क्या देवगति में नरकायु का बंध संभव है, क्या देव नरक जा सकते हैं? नहीं, तो कभी आगम ज्ञान के बिना आगम विरुद्ध अनर्गल बात न करें।

और तो क्या वर्तमान में भी सभी प्रतिष्ठाचार्य और सभी दिगम्बराचार्य मुनि, आर्यिकाएँ, श्रावक-श्राविकाएँ पंचकल्याणक में गर्भ, जन्मकल्याणक मनाने वाले मिथ्यादृष्टि हो जायेंगे। नरक जायेंगे तब तो पंचकल्याणक भी बदलना पड़ेगा और उसमें से गर्भ, जन्मकल्याणक हटाना पड़ेगा, उस समय अष्ट द्रव्य से की जाने वाली पूजन को हटाना पड़ेगा। तब तो नित्य की जाने वाली तीर्थंकरों की पूजा में से गर्भ, जन्म कल्याणकों के अर्घ हटाने पड़ेंगे। आरती की वह पंक्ति- 'छट्ठी ग्यारह प्रतिमाधारी' को बदलना पड़ेगा।

कल्लाण परम्परया, लहन्ति जीव विशुद्ध सम्मत्तं।
सम्मद्दंसण रयणं, अग्घेदि सुरा सुरे लोए।।

(दर्शन पाहुड गाथा 33)

अथवा रत्नकरण्ड श्रावकाचार की वह गाथा-

मातङ्गो धनदेवश्च, वारिषेणस्ततः परः।
नीली जयश्च सम्प्राप्ताः, पूजातिशय मुत्तमम् ।।

(रत्नकरण्डक श्रावकाचार श्लोक 64)

यमपाल चाण्डाल, धनदेव सेठ, वारिषेण, वणिक पुत्री नीली और राजपुत्र जयकुमार क्रम से पाँचों व्रतों में उत्तम पूजा के अतिशय (प्रसिद्धि) को प्राप्त हुए हैं।

इस गाथा को भी बदलना पड़ेगा, प्रथमानुयोग के ग्रन्थ बदलने पड़ेंगे, कल्पद्रुम विधान बदलना पड़ेगा और क्या-क्या बदलोगे ?

जिनेन्द्र देव, जिनागम, आचार्य परम्परा को बदलने की अपेक्षा स्वयं की मान्यता को बदल लेना श्रेष्ठ है। आर्यिकाओं की जैसी नवधा भक्ति अभी तक प्रचलित थी। उसे वैसी ही करते जाना श्रेष्ठ है। अथवा जिसकी जो परम्परा है वैसी ही करना श्रेष्ठ है। उसमें किसी प्रकार की ऊँची-नीची बात न करें, आपसी विसंवाद न करें, समाज में संघों में राग-द्वेष के विघटन के बीज न बोयें, एक रहें, वात्सल्य से रहें। समाज को सही दिशा निर्देशन दें। पूजादि न करने के नियम न दिलायें और यदि कोई दिलाये भी तो ध्यान रखें कि पाप आदि के त्याग का ही नियम दिया/लिया जाता है, पूजा-भक्ति के त्याग का नियम नहीं दिलाया जाता है और नहीं लिया जाता है। यदि कोई डर भय से दिलाये भी और ले भी ले तो जो नियम आगम व पूर्वाचार्यों की परम्परा से विरुद्ध होता है वह मान्य नहीं होता है।

पड़गाहन करना, उच्चासन, वंदामि करना, मनशुद्धि, वचनशुद्धि, कायशुद्धि और आहार-जलशुद्धि नवधा भक्ति के अंग हैं। फिर जो नवधा भक्ति के लिये मना करते हैं। उन्हें भी पड़गाहन आदि क्रियाएँ श्रावकों से नहीं कराना चाहिये। आगम में भक्ति का उल्लेख कहीं नहीं है। नवधा भक्ति का ही उल्लेख है।

यदि आर्यिकाओं की पूजन करने का निषेध करते हैं तो आर्यिकाओं को परम पूजनीय, वंदनीय आदि शब्दों का प्रयोग भी नहीं किया जाना चाहिये। इससे कथनी और करनी में अंतर आता है।

यदि कोई कहे कि गर्भ, जन्म कल्याणक में जो वस्त्रधारियों की अष्टद्रव्य से पूजन या अर्घ चढ़ाया जाता है वह एक प्रकार से उनका सम्मान है। तो यहाँ पर भी आर्यिकाओं की जो अष्ट्रव्य से पूजन की जाती है तो उसे भी सम्मान मानने में हमें कोई विरोध नहीं है। आप अष्टद्रव्य से पूजन को सम्मान भी कह सकते हैं।

आर्यिकाओं की चर्या का वर्णन करने वाला अलग न तो कोई ग्रन्थ है और न ही कोई अधिकार आया है।

जिस प्रकार श्राविकाओं की चर्या श्रावक की तरह होती है। अतः श्रावकाचार कोई स्वतंत्र ग्रन्थ नही हैं तथा क्षुल्लिकाओं की चर्या भी क्षुल्लक की ही तरह होती है। इसलिये उनका कोई स्वतंत्र व्याख्यान करने वाला अलग ग्रन्थ नहीं है। उसी प्रकार यदि कहीं कोई अन्तर या विशेषता है तो आचार्यों ने उसका अलग से वर्णन किया है। पर उनकी नवधा भक्ति नही करना चाहिये, सप्तधा भक्ति करना चाहिये। ऐसा कहीं एक भी प्रमाण उपलब्ध नहीं है। विधि अर्थात् नवधा भक्ति के प्रमाण आगम में हैं तथा अभी तक चली आई प्राचीन सभी आचार्य परम्परा से (मात्र आचार्यश्री विद्यासागर जी महाराज के संघ के अलावा) आर्यिकाओं की नवधा भक्ति होती आई है, वर्तमान में हो रही है तथा भविष्य में होती रहेगी। तो यह बात सहज सिद्ध हो जाती है कि उनकी नवधा भक्ति आगमसम्मत ही है। सभी परम्परा के सभी आचार्य संघों में उसका प्रचलन है।

अतः सुधी श्रावक और श्राविकाओं को चाहिये कि आगम को देखें, पढ़ें तथा अभी तक चले आये आचार्य संघों की परम्परा को प्रमाणित मानें। इतने वर्षों से चली आई परम्परा भी प्रमाणित है।

❀ ❀ ❀

आर्यिकाओं की नवधा भक्ति को दोष मानते हैं किन्तु आर्यिकाएँ व ब्रह्मचारिणी अन्य संघ के मुनिराजों को नमस्कार तक नहीं करती हैं, तो क्या यह दोष नहीं हैं ?

अशुद्धि (अशौच) के परिपेक्ष्य में शंका समाधान

1. आहार विषयक शंका-समाधान

शंका - आचार्यश्री। आर्यिकाएँ अशुद्धि के समय आहार कैसे करें।

समाधान - रजोदर्शन होते ही उस दिन से आर्यिकाओं को 3 दिन तक उपवास, आचाम्ल या नीरस करना चाहिए। यही उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य विधि है। यथा-

क्षात्या पुष्पं प्रथश्चन्त्य तदि दनात् स्याच्चतर्दिनम् ।
आचाम्ल नीरसाहार कर्त्तव्या चाथवा क्षमा ।।

(प्रायश्चित्त चूलिका गाथा 134)

शंका - आचार्यश्री ! क्या ऐसी अवस्था में आवश्यकता पर एक या दो रस ले सकते हैं ?

समाधान - नहीं, बिल्कुल नहीं, क्योंकि जघन्य विधि ही नीरस है, फिर भी परिस्थिति विशेष पर गुरुआज्ञा प्रधान होती है।

2. मौन विषयक शंका-समाधान

शंका - आचार्यश्री ! मौन के विषय में ?

समाधान - तीन दिन तक पूर्णतः मौन ही रखना चाहिए।

शंका - आचार्यश्री ! क्या लिखकर या दाँतों को दबाकर बात की जा सकती है ?

समाधान - नहीं, पेन, कॉपी तो वैसे ही नहीं छू सकते क्योंकि वे ज्ञान के उपकरण हैं फिर लिखकर चर्चा तो सम्भव ही नहीं है तथा दाँतों को दबाकर बोलना तो बोलना ही है, मौन नहीं। अतः दाँतों को दबाकर कभी नहीं बोलना चाहिए।

शंका - आचार्यश्री ! पत्रिका या अन्य कोई कहानी आदि की पुस्तकें पढ़ सकते हैं क्या ?

समाधान - नहीं, कोई भी पत्रिका या कहानियों की पुस्तक या अखबार भी क्यों न हो तो भी उसे नहीं पढ़ना चाहिए क्योंकि उसमें भी द्रव्यश्रुत के वर्ण (अक्षर) लिखे रहते हैं।

3. वसतिका विषयक शंका-समाधान

शंका - क्या वे ऐसी परिस्थिति में गृहस्थों के घर रुक सकती हैं ?

समाधान - जहाँ तक सम्भव हो उन्हें आर्यिका संघ नहीं छोड़ना चाहिए, आर्यिका संघ में भी किसी एकान्त स्थान में ही रहना चाहिए। इससे मर्यादा एवं संरक्षणता रहती है।

4. अशौच के समय भी आर्यिका, आर्यिका है

शंका - आचार्यश्री एक ही समय में आर्यिका, आर्यिका व्रत समाप्त हो जाते हैं उस समय आर्यिका नहीं मानी जाती है/रहती ?

समाधान - ऐसा कौन कहता है कि अशौच के समय आर्यिका, आर्यिका नहीं रहती। यदि आर्यिका न रहे तो फिर क्या रहती है ? उन्हें फिर क्या कहना चाहिए, क्षुल्लिका या ब्रह्मचारिणी ? यदि क्षुल्लिका या ब्रह्मचारिणी रूप से माना जाएगा तो फिर प्रत्येक माह की अशुद्धि के बाद उनकी पुनः दीक्षा होनी चाहिए और दीक्षा भी इसी विधि से होनी चाहिए जो पूर्व में हुई थी। किन्तु ऐसा कहीं देखा नहीं गया है। प्रायश्चित्त ग्रन्थों में भी (टिप्पण नं. 36) उसे आर्यिका ही मानकर आर्यिकाओं के प्रकरण में उनके प्रायश्चित्तों का वर्णन किया है, श्राविकाओं के प्रकरण में नहीं। अतः सिद्ध है कि अशौच के समय भी आर्यिका, आर्यिका ही रहती हैं। हाँ यह बात अलग है कि मासिक

धर्म के समय अशक्यनुष्ठान वश व्रतों में दोष लगते हैं जो कि प्रायश्चित्त द्वारा शुद्ध हो जाते हैं।

शंका – किन्तु आपने ही एक दिन कहा था कि शुद्धि हो जाने के पश्चात् आचार्य आदि उन्हें पुनः व्रत देते हैं।

समाधान – हाँ शुद्धि के पश्चात् उन्हें पुनः व्रत दिये जाते हैं अर्थात् उन दिनों में कतिपय व्रतों में दोष लगता है। वे व्रत खण्डित हो जाते हैं। जिन्हें शुद्धि के बाद प्रायश्चित्त रूप व्रत दिये जाते हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं, कि उस समय आर्यिका, आर्यिका न रहे, अपितु वह आर्यिका ही रहती है। यह तो उनकी पर्यायगत सहज प्रक्रिया है उस समय भी उनका भाव संयम यथावत बना रहा है। आगम उस समय भी उसे आर्यिका के रूप में स्वीकार करता है। यही कारण है कि उन्हें अपने षट् कर्तव्यों को ही मौन से करना चाहिए। ऐसा विधान है।

5. शुद्धि के बाद प्रायश्चित्त लें –

आवासयाणि मौणेण चेव तिस्से सदासमुद्दिट्ठा।
वदरोहणं पिय पच्छाकायव्वं गुरु समासम्मि ॥

(प्रायश्चित्त चूलिका श्लोक 135)

अर्थात् अशौच के समय आर्यिकाओं को अपने सभी आवश्यक कर्तव्यों को मौन से करना चाहिए। ऐसा कहा गया है तथा शुद्ध हो जाने पर गुरु से व्रतों को धारण करना चाहिए।

यही बात टीका में कही गयी है।

पुष्पं दृष्ट्वा षडावश्यक क्रिया मौनेन कर्तव्या।
पश्चात् गुरुणां सन्निधौ व्रतारोपणम् ॥

यही बात प्रायश्चित्त संग्रह में कही है–

तदा तस्याः समुद्दिष्टा मौनेनावश्यक क्रिया।
व्रतारोपः प्रकर्तव्य पज्चाश्च गुरु सन्निधौ ॥

(प्रायश्चित्त संग्रह (छेद पिण्डम्) गाथा 293)

अर्थात् रजस्वला के समय आर्यिका समता - वंदना आदि आवश्यक क्रियाओं को मौनपूर्वक करें तथा शुद्ध हो जाने के पश्चात् गुरु के समीप जाकर व्रत ग्रहण करें।

6. अशौच के समय तीसरा वस्त्र न लें -

अशौच के समय कभी भी तीसरा वस्त्र धारण न करें, जैसे कहा भी है -

एकस्य वत्थजुयलस्सेवकस्य गोणिया एक कंथाए ।
पासुग जलेण पक्खालवम्मि एक्को विउस्सगो ।।

(प्रायश्चित्त चूलिका)

अर्थात् युगल दो वस्त्र (साड़ियों) में से एक साथ एक ही रखना चाहिए और ऋतु समय एक गोणी इस तरह कुल दो ही वस्त्र रखने चाहिए। इन दोनों वस्त्रों को तथा एक कंधा अर्थात् चटाई आदि को शुद्ध 'प्रासुक जल' से धोना चाहिए। यदि वे तीसरा वस्त्र रखती हैं तो उनके प्रायश्चित्त के विषय में कहा है।

वस्त्रयुग्म सुबीभत्सलिंग प्रच्छादनाय च ।
आर्याणां संकल्पेन तृतीये मूल मिष्यते ।।

(प्रायश्चित्त संग्रह (छेद पिण्डम्) गा, 76)

आर्यिकाओं को अपने अंग को ढाँकने के लिए दो वस्त्र रखना चाहिए। इन दो वस्त्रों के अलावा तीसरा वस्त्र धारण करने पर उनके लिए पंचकल्याणक प्रायश्चित्त कहा गया है।

यहाँ यह दृष्टव्य है कि आर्यिकाओं को अपने अंग को ढाँकने के लिए दो वस्त्र रखना चाहिए। इन दो वस्त्रों के अलावा तीसरा वस्त्र धारण करने पर उन्हें प्रायश्चित्त कहा गया है।

7. यदि तीसरा वस्त्र लें तो प्रायश्चित -

पंचकल्याणक प्रायश्चित्त के विषय में कहा है कि

णिव्वियडी परिमंडलमायामं एयठाण खमणमिदि ।
कल्याणमेग मेदेहिं पंचहिं पंचकल्लाणं ।।

(प्रायश्चित्त चूलिका)

अर्थात् जिसमें लगातार (क्रम भंग हुए बिना) पाँच उपवास, पाँच एकासन, पाँच पुरुमण्डल (उपवास का तृतीय हिस्सा), पाँच निविकृति (नीरस) और पाँच आचाम्ल (कांजीक) होते हैं, उसे पंचकल्याणक नामक प्रायश्चित्त कहतें हैं।

यहाँ दो वस्त्र से मासिक समय का वस्त्र न लेकर दो साड़ी रूप अर्थ किया जाए तो ऋतु समय में उन्हें अवश्य ही तृतीय वस्त्र लेना पड़ेगा। जिसका प्रायश्चित्त द्वितीय गाथानुसार 25 दिन तक चलेगा। 25 दिन बाद पुनः प्रायश्चित्त लेना पड़ेगा। ऐसा करने से प्रायश्चित्त अखण्ड बना रहेगा। अतः वस्त्रयुग्मम् का अर्थ एक साड़ी और दूसरा वस्त्र ही होना चाहिए, अन्य नहीं।

जो आर्यिकाएँ (जीवरक्षा हेतु) तीसरा वस्त्र रखती हैं उन्हें क्या कभी यह पंचकल्याणक नामक प्रायश्चित्त दिया जाता है? यदि नहीं तो क्यों ? और यदि प्रत्येक माह में इतना प्रायश्चित्त दिया भी जाए तो और न भी दिया जाए तो क्या आचार्य स्वयं दोषी नहीं ठहरेंगे ? क्या फिर उनकी यह वृत्ति आगमानुसार कही जा सकेगी ? (नहीं)

8. पिच्छी छोड़ने या ना छोड़ने विषयक शंका-समाधान -

शंका - आचार्यश्री ! आर्यिकाएँ मासिक धर्म के समय अशुद्ध रहती है तो फिर उन्हें पिच्छि छोड़ना चाहिए क्योंकि अशुद्ध व्यक्ति पिच्छि लेने का वैसे ही पात्र नहीं है ?

समाधान - पिच्छि छोड़ने जैसी अशुद्धि उनके नहीं होती है अन्यथा अवश्य ही कोई न कोई आचार्य इस विषय में अपनी कलम उठाते। किन्तु किसी भी आचार्य ने पिच्छि छोड़ने के विषय में आगम में कुछ नहीं कहा है। अथवा जिन आर्यिकाओं को अशौच विषयक बीमारी (प्रदर आदि) हैं वे प्रायः दीर्घकाल तक भी पिच्छि नहीं ले सकेंगी. क्योंकि उनके निरन्तर अशुद्धि बनी रहने की संभावना रहती है। दूसरी बात पिच्छि कोई देव-शास्त्र या गुरु तो है नहीं और न ही कोई उन जैसी पूज्य है कि जिसके लेने से धर्म की किसी तरह से अविनय या अवज्ञा हो सके।

शंका - देव-शास्त्र-गुरु, परमेष्ठी या धर्म नहीं हैं किन्तु धर्म का एक साधन तो है?

समाधान - तो क्या हो गया। यदि उसे अशुद्धावस्था में लेना अनुचित समझा जाए तो फिर (आभ्यन्तर) संयम धर्म को भी अनुचित मानना पड़ेगा और ऐसा मानने

पर फिर पंचम गुणस्थान न रह सकेगा। सम्यग्दर्शन जो धर्म का अवयव है उसको भी अनुचित मानना पड़ेगा। जिससे अनेक दोष आयेंगे। अतः जीवरक्षा/प्राणी संयम के पालनार्थ उसे रखना ही उचित है।

शंका - फिर तो लोग उन्हें पूज्य मानकर उनका आदर करेंगे ?

समाधान - तो क्या हो गया ? क्या उनका गुणस्थान पाँचवा नहीं रहा ? जो कि लोग उनका आदर न करें, किन्तु ऐसा नहीं अपितु उनका यथायोग्य आदर उचित ही है। अतः पिच्छि रखना ही चाहिए।

शंका - लेकिन कुछ आचार्य पिच्छि छोड़ने को कहते हैं ?

समाधान - यदि ऐसा है तो बताओ। यदि कोई आर्यिका आहारादि के समय अशुद्ध हो जाए या रास्ते में विहारादि के समय अशुद्ध हो जाए, जहाँ कोई अन्य आर्यिका आदि न हो तो पिच्छि कहाँ छोड़ेगी।

अथवा अन्य कोई आर्यिका के समक्ष अशुद्ध हो जाने पर पिच्छि को दूसरी आर्यिका सम्हाल सकती है, यदि ऐसा कहो तो उनके वह पिच्छि क्या परिग्रह के रूप में नहीं हो जायेगी? क्या फिर एक आर्यिका दो पिच्छि लेकर चल सकेंगी या रख सकेंगी ? अथवा यह कहो कि अपनी वसतिका में रख लेती है तो फिर उसकी चोरी, कुत्ता-बिल्ली आदि द्वारा हरण का विकल्प नहीं बना रह सकता है ? अथवा कदाचित् कोई उसे चुरा ले गया या हरण कर ले गया तो फिर दुःख भी होगा। फिर दूसरी पिच्छि की याचना भी करनी पड़ेगी अथवा कुछ पिच्छियाँ पहले से ही अधिक रखना पड़ेंगी। जिससे परिग्रह का दोष आयेगा। अतः स्पष्ट है कि उन्हें पिच्छि नहीं छोड़नी चाहिए।

शंका - आचार्यश्री ! इस विषय में प्राचीन आचार्यों का क्या अभिमत रहा ?

समाधान - सभी प्राचीन आचार्य इस विषय में एकमत थे कि आर्यिका को पिच्छि नहीं छोड़ना चाहिए।

आचार्यश्री ! आज की चर्चा बहुत महत्त्वपूर्ण रही। मुझे समझ में आया कि पिच्छि नहीं छोड़ना चाहिए यद्यपि इस विषय में पिच्छि छोड़ने वाली आर्यिकाएँ भी बोलती हैं कि पिच्छि छोड़ते समय दुख होता है तथा बिना पिच्छि के वे दिन बहुत कठिनता से कटते है तथा उन दिनों में निष्पिच्छि रहने पर बहुत शर्म भी लगती है। वे भी छोड़ना नहीं चाहती किन्तु गुरुआज्ञा से छोड़ना पड़ जाती है।

हाँ, आचार्यश्री । आपने ठीक ही समझाया है कि पिच्छि नहीं छोड़ना चाहिए। यदि पिच्छि छोड़ते हैं तो फिर थाली में भी भोजन करना चाहिए। हाथ में भोजन क्यों करते हैं ? क्योंकि जैसे पिच्छि दया का प्रतीक है उसी तरह करपात्र भी अयाचिकता आदि का प्रतीक है। पिच्छि ग्रहण करने से लोग उन्हें आर्यिका समझते हैं। वे हाथ में आहार लेती हैं, अन्य स्त्रियाँ नहीं। यदि करपात्र में आहार करती हैं तो फिर पिच्छि रखने में कोई बाधा नहीं होनी चाहिए।

आचार्यश्री - अशौच के समय पिच्छि छोड़ने पर भी वे स्वयं अपने आपको एवं अन्य माताजी, बहिनें, गृहस्थ आदि भी उन्हें आर्यिका या माताजी ही मानती हैं। किन्तु निष्पिच्छि आर्यिका या माताजी तो होती नहीं है। अतः फिर उन्हें आर्यिका या माताजी भी नहीं कहना चाहिए।

हाँ आचार्यश्री ! बात ठीक है। यदि पिच्छि छोड़ी जाती है तो फिर उनकी पुनः विधिवत् दीक्षा होनी चाहिए। जैसे कोई महाराज पिच्छि छोड़कर उसी तरह से साधना करते रहें और दो-तीन दिन बाद पिच्छि धारण करें तो उनके गुरु उन्हें पुनः दीक्षा देते हैं। उसी तरह आर्यिकाओं की भी दीक्षा होनी चाहिए। अथवा कोई कहे कि आर्यिकाओं की कोई भी दीक्षा नहीं होती है। दीक्षा के समय भी सारा उपक्रम औपचारिक होता है तो फिर वह क्यों या अन्य समय क्यों नहीं ? इत्यादि।

आचार्यश्री ! फिर छोटे-बड़े का भी विभाग समाप्त हो जाना चाहिए। जैसे माना कि बड़ी आर्यिका अशौच के तीन दिन पूर्ण कर चतुर्थ दिन शुद्ध होकर आयी हैं और उन्होंने व्रत प्रायश्चित्त आदि को ग्रहण कर लिया है तो भी अब उनकी परिगणना आदि में ही नहीं, अंत में होना चाहिए। उन्हें बड़ी माताजी नहीं, किन्तु छोटी माताजी कहना चाहिए क्योंकि उन्होंने तत्काल में ही व्रत स्वीकार किया है, जबकि अन्य आर्यिका के पूर्व से ही व्रत थे, तो ऐसा क्यों नहीं ?

यदि पिच्छि संयम का उपकरण है तो फिर कमण्डल भी शौच का उपकरण है। अतः उसे भी छोड़ना चाहिए। फिर जैसे जीवरक्षा के लिए कोमल वस्त्र या साड़ी ली जाती है उसी तरह शुद्धि के लिए स्टील आदि के डिब्बे ले लेना चाहिए और कमण्डल छोड़ना चाहिए। किन्तु वह क्यों नहीं छोड़ा जाता ? क्या वह धर्म का उपकरण नहीं है ? यदि पिच्छि संयम का उपकरण है तो फिर कमण्डल भी शौच का उपकरण है।

शंका - कतिपय लोग कहते हैं अशुद्धि के समय आर्यिका चांडालनी, धोवन आदि की तरह मानी जाती हैं ?

समाधान - यह सब बातें गृहस्थ को कही जाती है किसी भी आगम ग्रंथों में आर्यिकाओं को ऐसा नहीं कहा गया है। इसलिये कहीं की बात, कहीं जोड़कर आगम व पूर्वाचार्यों के विरुद्ध अपनी बात सिद्ध करने की कोशिश नहीं करनी चाहिए।

आश्चर्य है कि आचार्य श्री शान्तिसागरजी, आचार्य श्री वीरसागरजी, आचार्य श्री शिवसागरजी की उपकारी गुरु परम्परा मानते हैं पर उनके परम्परा को गलत कह स्वतंत्र परम्परा चलाते हैं। उनके अनुसार न चलने वाले को गलत कहते हैं।

शंका - आर्यिकाओं की अशुध्दि के समय नवधा भक्ति होनी चाहिए या नहीं ?

समाधान - ऐसा ही प्रश्न उदगाँव के वर्षायोग में मैंने प. पू. तपस्वी सम्राट आचार्य श्री सन्मतिसागरजी से किया था तब उत्तर में प. पू. आचार्य श्री ने कहा था पहले यह बताओ कि उस समय वे आर्यिका है या नहीं। मैंने कहा आर्यिका ही है तब उन्होंने कहा-कि यदि वे उक्त दिनों उपवास करें, तब तो नवधा भक्ति की आवश्यकता नहीं है और उपवास न कर नीरस आहार लें तो उनकी नवधा भक्ति होती ही है बिना नवधा भक्ति के वे आहार नहीं लेती हैं।

शंका - आर्यिकाओं को अशौच के समय पिच्छी छोड़ने की परम्परा कब से प्रारम्भ हुई।

समाधान - सन् 1987 तक आर्यिका चर्या की सभी संघों में एक सी परम्परा थी, आगमिक थी किन्तु 1987 में जब नैनागिरि में प.पू. आचार्य श्री विद्यासागर जी ने सर्वप्रथम आर्यिका दीक्षा दी तब से उनके संघ में मूल संघ की परम्परा से हटकर आर्यिकाओं विषयक दो बातें पृथक से प्रारम्भ हुई।

1. आर्यिकाओं की नवधा भक्ति नहीं होना, केवल सात भक्ति होना।

2. अशुद्धि के समय पिच्छि छोड़ना अर्थात् बिना पिच्छि के रहना। यद्यपि इस परिवर्तन से प्राचीन संघों में सामान्य रूप से चर्चा हुई, पर खास प्रतिक्रिया नहीं हुई केवल इतना सोचकर सभी शांत रहे कि यह उनके संघ की परम्परा है। विसंवाद नहीं करना चाहिये आदि। पर प्राचीन परम्परा गलत थी या है। जब यह बात प्रारंभ हुई तब फिर साधकों ने अपनी-अपनी कलम उठाना शुरू किया, फलस्वरूप आगम प्रमाण से युक्त साहित्य प्रकाशित हुआ। यथा-

1. गणिनी आर्यिका ज्ञानमति माताजी द्वारा लिखित पुस्तक 'आर्यिका'।

2. आर्यिका विशुद्धमति माताजी द्वारा लिखित पुस्तक 'आर्यिका, आर्यिका है श्राविका नहीं।

मेरे (परम पूज्य गणाचार्य विरागसागर जी महाराज) द्वारा लिखित पुस्तक '**आगम चक्खू साहू**' '**आर्यिका चर्या**'।

4. पंडित श्री हेमन्त काला द्वारा लिखित पुस्तक '**क्या आर्यिका पूज्य है**' आदि। सभी ने यथासंभव आगम प्रमाण व प्राचीन आचार्य संघों में प्रचलित परम्परा आगमिक है, सत्य है, प्रमाणित है, सिद्ध किया है। यहाँ तक तो दोनों पक्ष की बातें वीतराग थी, सज्जनोचित थीं, सुपाच्य थीं। पर बाद में उक्त वार्ताएँ राग-द्वेष से प्रभावित होने लगीं और समाज को अपने लपेट में लेने लगीं। यथा-

(1) जिन-जिन संघों में आर्यिकाओं की नवधा भक्ति होती है उन्हें चौका नहीं लगाना चाहिये तथा उन्हें आहार नहीं देना चाहिये।

(2) आर्यिका आदि की नवधा भक्ति नहीं करने का नियम लो। कतिपय लोगों ने कहा कि हमारे यहाँ सभी संघ आते हैं हम नियम नहीं लेंगे तो उन्हें धमकी दी, कि हम तुम्हारे चौके में नहीं आयेंगे, बात और बढ़ी।

(3) जो आर्यिकाओं की नवधा भक्ति करता है व कराता है वह मिथ्यादृष्टि है।

(4) वह तो नियम से नरक जायेगा।

(5) ये बीसपंथी परम्परा है। यदि उपरोक्त लोगों द्वारा आगम के प्रमाण माँगे जाते तो वे नहीं दे पाते। इन सब बातों ने समाज में बिखराव खड़ा कर दिया है, मतभेद खड़े होने लगे और फूट प्रारम्भ होने लगी। जबकि मूलसंघ की परम्परा वालों में आचार्य कल्प विवेकसागर जी से दीक्षित आर्यिका विशालमति माताजी, आर्यिका विज्ञानमति माताजी की नवधा भक्ति होती तो ये सब तथा इनके गुरु क्या मिथ्यादृष्टि थे या नरक गये इसे आप स्वीकार करते है ? नहीं ना/तो फिर ऐसे शब्द का प्रयोग नहीं करना चाहिये।

सोचो ऐसी बातें करके कहीं आप अपने पैर पर कुल्हाड़ी तो नहीं पटक रहे हो। अपनी गुरु परम्परा को मिथ्यादृष्टि व नरकगामी कहते हो और फिर उनकी जय-जयकार भी करते हो।

परम पूज्य आचार्य ज्ञानसागर जी (ब्र. भूरामल जी) ने संघ में क्या आचार्य शिवसागर जी की संघस्थ आर्यिकाओं की नवधा भक्ति नहीं की थी। परमपूज्य आचार्य विद्यासागर जी ने ब्र. विद्याधर की अवस्था में परम पूज्य आचार्य देशभूषणसागर जी महाराज की संघस्थ आर्यिकाओं की नवधा भक्ति नहीं की थी ? आचार्यश्री विद्यासागर जी महाराज की गृहस्थिक माँ श्रीमती जी की आचार्य धर्मसागर जी से आर्यिका दीक्षा हुई। आर्यिका समयमति थी तब उनकी नवधा भक्ति होती थी तथा आचार्य श्री की गृहस्थिक बहनें शान्ता/आर्यिका प्रवचनमति जी तथा स्वर्णमाला आर्यिका नियममति जी की नवधा भक्ति होती थी। अशुद्धि के समय में भी नवधा भक्ति होती थी। उस समय वे पिच्छि नहीं छोड़ती थी। कभी भी किसी को ऐसा नहीं कहा कि उन्हें चौका मत लगाओ या आहार मत दो। उन्होंने एकता और संगठन का ही पाठ पढ़ाया। जब कभी कोई संघ मिले उनसे वात्सल्य भाव रखा। यदि कभी इस विषय को लेकर कहीं कोई चर्चा हुई तो आगम प्रमाण दिये तथा जब उनसे आर्यिका चर्या के आगम प्रमाण माँगे तो केवल कोरे तर्क ही दिये गये, पर आगम के एक भी स्पष्ट प्रमाण नहीं दिये गये। साथ ही यह कहा गया कि पुराने संघों के आचार्य पढ़े-लिखे नहीं थे, उन्हें शास्त्रों का ज्ञान नहीं था। समाज भी भोली-भाली थी आदि।

पर ये तो प्रत्यक्ष स्ववचन बाधित बात थी उन्होंने तो आगम व परम्परा के प्रमाण दिये हैं। पर आप ही आगम के प्रमाण नहीं दे सके। फिर भी इस विषय में आगम मंथन और चर्चाएँ होनी चाहिये। पर वे भी साध्वोचित तरीके से होना चाहिये। विजिगीसु कथा (राग-द्धेष से परिपूर्ण) नहीं होना चाहिये।

आर्यिका नवधा भक्ति के विषय में मैंने आगमानुसार सप्रमाण चर्चा की। यथा (1) यहाँ तो मैं केवल अशुद्धि के समय पिच्छि छोड़ना चाहिये या नहीं। तथा (2) अशुद्धि के समय आर्यिकाओं की नवधा भक्ति होनी चाहिये या नहीं। इसे आगम व आचार्य परम्परा की प्रधानता से चर्चा करूँगा। वह इस प्रकार है-

पिच्छि तो कोई जिनवाणी या जिनवाणीवत् ज्ञान का उपकरण नहीं है, कि जिसे अशुद्धि के समय में अथवा लघुशंका या दीर्घ शंका के समय भी लिये रहने में कोई बड़ा दोष आता है अथवा संयम का विनाश होता है। अपितु नहीं लेने में जरूर सबसे बड़े तीन दोष आते हैं-

(1) **'अज्जा पिच्छिकरा'** आर्यिका पिच्छिधारी होती है इस वाक्य का लोप होता है।

(2) पिच्छिधारी- जानकर बिना पिच्छि के सात कदम या इसके बिना न चलें। इससे आगम वाक्य का उल्लंघन होता है।

(3) अशुद्धि के समय तो अधिक मात्रा में जल आदि का प्रयोग होने से, मल-मूत्र क्षेपण करने से प्रतिष्ठापन / उच्चार समिति का विनाश होता है।

(4) कमण्डल आदि उठाने रखने से आदान-निक्षेपण समिति का विनाश होता है।

(5) यदि पिच्छि किसी श्रावक के घर रख दी जाये और वह उसकी सुरक्षा करने में असमर्थ रहा। शुद्धि के समय उपस्थित न रह सका तो पराधीनतावश इंतजारी करनी पड़ेगी, जिससे परिणामों में क्रोध, क्लेश या संक्लेशता भी हो सकती है।

(6) कदाचित् उसके घर से कोई उठा ले जाये, तब फिर नई पिच्छि की याचना करनी पड़ेगी।

(7) कोई बच्चे उससे खेलने लगें, खींचातानी कर तोड़ दें तो भी विनष्ट हो सकती है।

(8) अथवा गृहस्थ अपनी गृहस्थी के कामों में लीन हो और ऐसे समय में दिन या रात में कुत्ता बिल्ली पिच्छि को ले जायें तो भी उक्त दोष आयेगा।

(9) यदि ऐसा कहो कि बैग, पेटी, संदूक आदि में रख दें, यदि वे उचित माप के न रहे तो पिच्छि अस्त-व्यस्त हो जायेगी।

(10) कभी-कभी अशुद्धि का तो कोई पता ही नहीं चलता। यदि रास्ते में ही हो गई तो क्या वह अशुद्ध नहीं होगी तो अवश्य होगी ही होगी।

(11) यदि विहार में या आहार आदि से आते समय, मंदिर आते- जाते समय या शौच आदि को आते-जाते समय में अशुद्धि हो गई। जब उन्हें पता चला तब तक पिच्छि बनी रही और जो कोई श्राविका- ब्रह्मचारिणी आदि साथ में हो और उनके हाथ में शास्त्र हो तो। यदि वे शास्त्र रखने जायेंगी और आयेंगी तब तक क्या माताजी पिच्छि लिये रहेंगी ? यदि लिये रहे तो अशुद्धि में भी पिच्छि लिये रहने में कोई बाधा नहीं है।

(12) यदि कहे कि वहीं कहीं रखकर खड़ी रहेंगी। तब यदि हवा का झौंका आ गया और पिच्छि उड़ने लगी तो क्या वे उस पिच्छि के साथ-साथ जायेंगी।

(13) वह पिच्छि उड़कर किसी गंदे स्थान पर नदी, कुआँ, तालाब में गिर जाये तो क्या वे देखती रहेंगी।

(14) यदि वे किसी को बुलायेंगी तो उन्हें मौन खोलना पड़ेगा। जबकि अशुद्धि के समय उनका मौन होता है।

(15) यदि विहार में अशुद्धि हो गई और उन्होंने किसी श्राविका या श्रावक को पिच्छि दे दी। तब वह पिच्छि लेकर चलेगा और आर्यिका बिना पिच्छि के चलेगी। तब तो देखने वालों को बड़ा ही अटपटा लगेगा।

(16) पिच्छि छोड़ने के बाद भी अहिंसा पालने के भाव तो रहेंगे ही, फिर क्या जीवरक्षा के लिये कोमल अन्य वस्त्र ग्रहण करेगी।

(17) ऐसा कोमल वस्त्र पहले से ही लेकर रखेंगी / चलेंगी तो फिर उनका एक साड़ी व्रत खण्डित हो जायेगा।

(18) जीवरक्षार्थ कोमल वस्त्र रखने का कोई आगम प्रमाण है तो बतायें। युक्ति केवल वही प्रमाणित होती है जो आगमानुसार है। जिसका कोई आगम प्रमाण न हो तथा आगम से बाधित हो तो वह युक्ति नहीं, किन्तु युक्ताभास है।

(17) यदि वस्त्र किसी से माँग लेती हैं तो याचना करनी पड़ेगी अथवा तत्काल वस्त्र की व्यवस्था बनाना कठिन है।

(20) यदि तत्काल कोमल वस्त्र की व्यवस्था नहीं हो पाई तब फिर बिना कोमल वस्त्र के भी रहना पड़ेगा।

(21) प्रायश्चित्त ग्रन्थों में अशुद्धि का केवल एक वस्त्र (गोनी) रखने का विधान है, दूसरे का नहीं। फिर तीसरा वस्त्र तो क्या वे आगम आज्ञा का लोप नहीं हुआ।

(22) जब कोई आर्यिका बिना पिच्छि के केवल रुमाल और कमण्डल लेकर चलती है तो उनमें तथा एक साधारण ब्रह्मचारिणी में कोई खास अन्तर नहीं दिखता है।

(23) यदि अशुद्धि के समय पिच्छि नहीं रखी जाती है तब फिर करपात्र में आहार क्यों लिया जाता है। एक आगम प्रश्न खड़ा रहता है।

(24) कतिपय लोगों का कहना है कि अशुद्धि के समय पिच्छि इसलिये नहीं रखती है कि शुद्धि के बाद पिच्छि से शास्त्र आदि छूना पड़ता है। तब तो फिर अशुद्धि के समय वस्त्र पूज्य होना चाहिये।

कमण्डल भी रखने में पिच्छि की तरह दोष आयेंगे अतः जब पिच्छि के स्थान पर रुमाल रखा जा सकता है तो फिर कमण्डल के स्थान पर स्टील आदि का डिब्बा ब्रह्मचारिणी दीदियों की तरह भी रखा जाना चाहिये। वह क्यों नहीं रखा जाता है। आदि-आदि।

9. आर्यिकाओं को अशुद्धि के समय पिच्छी छोड़ने का आगमिक विधान नहीं है।

शंका - आचार्यश्री ! आर्यिकाओं को अशौच (मासिक धर्म) के समय पिच्छि छोड़ना चाहिए या नहीं ? इस विषय में आगम प्रमाण क्या है ?

समाधान - अभी तक उपलब्ध साहित्यों में मुझे कहीं एक भी शास्त्र में पिच्छि छोड़ने का विधान पढने में नहीं मिला। साथ ही पिच्छि संयम/दया का उपकरण है उसे ग्रहण करने पर फिर कभी भी उसके बिना साधु या आर्यिकाओं को गमन नहीं करना चाहिये। यदि करते है तो उसका निम्न प्रायश्चित्त कहा है।

10. बिना पिच्छि के चलने का प्रायश्चित

सप्तपादेषुः निःपिच्छिः कायोत्सर्गाद् विशुद्ध्यति।
गव्यूति गमने शुद्धिमुपवासं समश्नुते ॥

(प्रायश्चित्त सूत्र)

बिना पिच्छि सात कदम चलने पर एक कायोत्सर्ग आदि। अधिक (गव्यूति प्रमाण) गमन करने पर उपवास प्रायश्चित्त कहा है। अतः उन्हें बिना पिच्छि के गमन नहीं करना चाहिए।

11. आर्यिकाओं को पिच्छि रखने का प्रमाण -

शंका - आचार्यश्री। आर्यिकाओं को पिच्छि रखने का क्या किसी आगम में प्रमाण आया है ?

समाधान - हाँ, आचार्यश्री भद्रबाहु स्वामी ने क्रियासार में लिखा है **'अज्जापुण होदि पिच्छकरा।'** हाँ उपेक्षा (परिहार विशुद्धि) संयमी जनों को पिच्छि की कोई आवश्यकता नहीं होती क्योंकि उनसे जीव विराधना नहीं होती है। यथा

उपेक्षासंयमिनां न पुस्तक कमण्डलु प्रभृतयः अतस्ते ।
परम जिन मुनयः एकान्ततो निस्पृहाः अत एव बाह्योपकरण निर्मुक्ताः ।।

(नियमसार तात्पर्य वृत्ति गाथा 64)

अतः चाहे कोई मुनि हों या आर्यिका किन्तु उन्हें किसी भी समय निष्पिच्छि नहीं रहना चाहिए।

शंका – परमपूज्य आचार्यश्री विमलसागर जी से पूछा कि पूज्य गुरुदेव आर्यिकाओं की अशुद्ध अवस्था में नवधा भक्ति होना चाहिये तथा उन्हें उन दिनों में पिच्छि रखना चाहिये या नहीं ?

उत्तर – बेटा ! रजोधर्म से युक्त होने पर क्या आर्यिका, आर्यिका नहीं रहेगी। ऐसा तो कहीं भी किसी भी शास्त्र में वर्णन देखने में नहीं आया है। प्रायश्चित्त ग्रन्थों में यह जरूर कहा गया कि जिन व्रतों में दोष लगे हों, उन्हें गुरुजन प्रायश्चित्त देकर पुनः स्थापित करें।

आर्यिकाओं की नवधा भक्ति के विषय में पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध है। प्रत्यक्ष रूप से भी प्रायः संघ में आर्यिकाओं की अशुद्धि में भी नवधा भक्ति होती थी व हो रही है। अब वे अशुद्धि के समय भी पिच्छि नहीं छोड़ती है। देखें अभी तक चली आई सभी आचार्य संघों में आर्यिकाओं की नवधा भक्तियाँ –

1. आचार्य आदिसागर जी 2. आचार्य शान्तिसागर जी (दक्षिण) 3. आचार्य शान्तिसागर जी (छाणी), 4. आचार्य वीरसागर जी, 5. आचार्य महावीरकीर्ति जी 6. आचार्य देशभूषण जी 7. आचार्य शिवसागर जी 8. आचार्य सुबलसागर जी 9. आचार्य पायसागर जी 10. आचार्य विमलसागर जी 11. आचार्य सन्मतिसागर जी (तपस्वी सम्राट) 12. आचार्य धर्मसागर जी 13. आचार्य सुमतिसागर जी 14. आचार्य सुपार्श्वसागर जी 15. आचार्य जयकीर्तिसागर जी 16. आचार्य समंतभद्रसागर जी 17. आचार्य श्रेयांससागर जी 18. आचार्य अजितसागर जी 19. आचार्य चंद्रसागर जी 20. आचार्य संभवसागर जी 21. आचार्य कुंथुसागर जी 22. आचार्य सीमंधरसागर जी 23. आचार्य कल्पश्रुतसागर जी 24. आचार्य अजितसागर जी 25. आचार्य वर्धमानसागर जी 26 आचार्य विद्यानंदी जी 27. आचार्य कल्प विवेकसागर जी (शिष्य–आचार्य ज्ञानसागर जी) 28. आचार्य भरतसागर जी (शिष्य–आचार्य विमलसागर जी) 29. आचार्य भरतसागर जी (आचार्य सुमति सा.)

सन्मतिसागर जी (सिंहरथ) 31. आचार्य कनकनंदी जी 32. आचार्य पुष्पदन्त सागरजी 33. आचार्य विराग सागरजी 34. आचार्य दयासागरजी 35. आचार्य अभिनन्दनसागरजी 36. आचार्य पद्मनंदीजी 37. आचार्य देवनंदीजी 38. आचार्य कुशाग्रनंदीजी 39. आचार्य गुणनंदीजी 40. आचार्य गुणधरनंदीजी 41. आचार्य चैत्यसागरजी 42. आचार्य सुविधिसागर जी 43. आचार्य सुनीलसागर जी 44. आचार्य सिद्धांतसागर जी 45, आचार्य देवसेनसागर जी 46. आचार्य वरदत्तसागर जी 47. आचार्य धर्मसेनसागर जी 48, आचार्य अनेकांत सागर जी 49. आचार्य रयणसागर जी 50. आचार्य उदारसागर जी 51. आचार्य सुबाहुसागर जी 52. आचार्य निर्मलसागर जी 53. आचार्य सुधर्मसागर जी 54. आचार्य पार्श्वसागर जी 55. आचार्य रयणसागर जी 56. आचार्य विशदसागर जी 57. आचार्य ज्ञानसागर जी 58. आचार्य विभवसागर जी 59. आचार्य विमर्शसागर जी 60. आचार्य विनम्रसागर जी 61. आचार्य विमदसागर जी इसी प्रकार गणिनी आर्यिका संघों में प्रचलित आर्यिकाओं की नवधा भक्तियाँ-

1. गणिनी आर्यिका विजयमति माताजी 2. गणिनी आर्यिका ज्ञानमति माताजी 3. गणिनी आर्यिका सुपार्श्वमति माताजी 4. गणिनी आर्यिका विशुद्धमति माताजी 5. गणिनी आर्यिका सुव्रतामति माताजी 6. गणिनी आर्यिका अनंगमति माताजी 7. गणिनी आर्यिका मंगलमति माताजी 8. गणिनी आर्यिका प्रज्ञश्री माताजी 9. गणिनी आर्यिका सुप्रकाशमति माताजी 10. गणिनी आर्यिका सुभूषणमति माताजी 11. गणिनी आर्यिका प्रशांतमति माताजी 12. गणिनी आर्यिका आदिमति माताजी 12. गणिनी आर्यिका श्रेयांसमति माताजी 13. गणिनी आर्यिका यशस्विनीमति माताजी 14. गणिनी आर्यिका गौरवमति माताजी 15. गणिनी आर्यिका सुरत्नमति माताजी 16. गणिनी आर्यिका निर्मलमति माताजी 17. गणिनी आर्यिका विशाश्री माताजी जी 18 गणिनी आर्यिका विभाश्री माताजी 19. गणिनी आर्यिका विंन्ध्यश्री माताजी 20. गणिनी आर्यिका विज्ञाश्री माताजी 21. गणिनी आर्यिका विशिष्टश्री माताजी। 22. आर्यिका विदुषीश्री माताजी 23. आर्यिका विबोधश्री माताजी 24. आर्यिका विविक्तश्री माताजी 25. आर्यिका विश्वासश्री माताजी 26. आर्यिका विशाखाश्री माताजी 27. आर्यिका विकाम्याश्री माताजी 28. आर्यिका विरम्या श्री माताजी आदि।

उक्त सभी साधु-साध्वी चतुर्विध संघ साथ रहे हैं व समर्थक हैं। सभी संघों में नवधा भक्ति होती थी व हो रही है। सभी संघों में अशुद्धि में भी आर्यिका, आर्यिका ही

होती हैं, पिच्छि साथ रखती हैं। उनकी आहारचर्या में नवधा भक्ति होती है (केवल आचार्य विद्यासागर जी संघ में आर्यिकाओं की नवधा भक्ति नहीं होती है। अशुद्धि में पिच्छि नहीं रखती है) किन्तु जिन संघों में उक्त बातों में परिवर्तन हुआ है। वह केवल एक ही संघ है अथवा कदाचित् अनुसरण भी किसी ने किया हो, ऐसा एकाध ही कोई हो सकता है। बाकी सभी संघ प्राचीन आगमिक धारणा पर मजबूत हैं।

शंका - आचार्यश्री ! वर्तमान में ऐसे कितने संघ हैं जिनमें अशौच के समय आर्यिकाएँ पिच्छि नहीं छोड़ती हैं ?

समाधान - कुछेक संघ के अलावा किसी भी संघ में आर्यिकाएँ अशौच के समय पिच्छि नहीं छोड़ती हैं।

शंका - किन्तु ऐसा क्यों ?

समाधान - अपने-अपने विचार।

शंका - आचार्यश्री ! किन्तु इसमें आगम प्रमाण क्या है ?

समाधान - अभी तक कहीं किसी भी शास्त्र में पिच्छि छोड़ने का विधान पढ़ने में नहीं आया। हाँ, यदि भूल से भी छूट जाये तो उसके प्रायश्चित्त का विधान है। जिसे आप पहले ही देख चुके हैं।

शंका - किन्तु पूज्य आचार्य विद्यासागर जी का कहना है कि अशौच के समय आर्यिका को पिच्छि छोड़ देना चाहिए ?

समाधान - श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने साधुओं के लिए आगम चक्खु साहू ऐसा कहा है अतः मूल आगम में यदि पिच्छि छोड़ने का कहीं विधान आया हो तो उसे देखकर स्वीकार किया जा सकता है अन्यथा नहीं।

शंका - आचार्यश्री ! कोई-कोई बातें आगम में वर्णित नहीं हैं, उन्हें युक्ति से तो स्वीकार करना चाहिए ?

समाधान - जैनागम में युक्ति भी आगमानुसार ही प्रमाणित मानी गयी है। श्री धवला जी में कहा है कि -

अगमानुसारि जुत्ति-न च जुत्यानुसारि आगम ।

(धवला पुस्तक)

अर्थात् आगमानुसार युक्ति है, युक्ति के अनुसार आगम नहीं।

शंका – आचार्यश्री ! कुछ लोगों का कहना है कि आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज के संघ में क्षुल्लिकाश्री अजितमति माताजी अशौच समय में पिच्छि छोड़ती थीं ?

समाधान – अगर क्षुल्लिका जी पिच्छि छोड़ती भी होंगी तो भी कोई बाधा नहीं है। क्योंकि क्षुल्लक क्षुल्लिकाओं को आगम दृष्टि से मयूर पिच्छि का कोई आवश्यक विधान नहीं है। वे कोमल वस्त्र आदि का भी प्रयोग कर सकते हैं। ऐसा शास्त्रों में उल्लेख है।

शंका – यदि क्षुल्लिका कोमल वस्त्र आदि रख सकती है तो आर्यिका भी रख लें, इसमें बाधा क्या है ?

समाधान – नहीं ! नहीं। ऐसा नहीं कहना चाहिए। क्योंकि

आर्यिका और क्षुल्लिका में बहुत अन्तर है। क्षुल्लिका श्राविका है और आर्यिका श्राविका नहीं है। यदि आर्यिका भी पिच्छि छोड़ने लग जाए तो फिर क्षुल्लिका और आर्यिका में क्या अन्तर रहेगा ? अर्थात् कुछ नहीं तथा आर्यिका को पिच्छि रखने का ही विधान है, अन्य वस्त्र नहीं। अतः वे पिच्छि छोड़ नहीं सकती हैं और यदि छोड़ती है तो फिर वह अतिचार ही नहीं अनाचार कहलाएगा। व्रत का सर्वदेश खण्डन होगा। फिर दया/ करुणा कैसे रहेगी ? यदि आप कहेंगे करुणा/अहिंसा के पालनार्थ एक कोमल वस्त्र रखती हैं तो फिर उनका पाँचवा व्रत अपरिग्रह व्रत एवं अचेलक्य विशेष गुण नहीं रह सकेगा, क्योंकि उनका एक वस्त्र/साड़ी का ही नियम है। वही उनका अचेलक्य विशेष गुण है।

शंका – (बीच में ही टोकते हुए) आचार्यश्री ! अशौच के समय तो वैसे ही उन्हें दूसरा वस्त्र रखना पड़ता है।

समाधान – जो साड़ी आर्यिका पहने हुए हैं उसी का नियम है अन्य जो दूसरे दिन पहनी जाएगी उस समय इसका प्रत्याख्यान (त्याग) किया जाता है। पुनः दूसरे दिन जो साड़ी पहनी जाएगी तब इसका प्रत्याख्यान किया जाता है। दो साड़ी का एक साथ कभी भी प्रयोग नहीं किया जा सकता है अशौच के समय में, दूसरे वस्त्र का प्रयोग करना चाहिए। किन्तु तीसरे वस्त्र का प्रयोग नहीं करना चाहिए। यदि प्रयोग करते हैं तो फिर आर्यिका व्रत दूषित होता है।

शंका - अच्छा तो तीसरा वस्त्र न लेकर अपनी साड़ी से भी जीव मार्जन आदि किया जा सकता है, क्या ऐसा नहीं कर सकते हैं ?

समाधान - नहीं । पिच्छि और वस्त्र में बहुत अन्तर है। जो जीवरक्षा पिच्छि से परिमार्जन द्वारा सम्भव है वह वस्त्र से नहीं हो सकती है। अन्यथा आर्यिका को पिच्छि की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी। क्योंकि पिच्छि के जो पाँच गुण होते हैं वे वस्त्र में सम्भव नहीं हैं। अत: साड़ी से मार्जन करने का विधान न तो कहीं पढ़ने में आया है और न कहीं देखा गया है। यदि साड़ी से जीव रक्षा की जाती है तो उतने समय तक के लिए अलग रखी गयी पिच्छि परिग्रह रूप ठहरेगी क्योंकि उसमें मूर्च्छा तो रहती ही है अथवा दो-तीन आदि आर्यिकाओं की यदि पिच्छि बदल जाए तो विषाद आदि भी सम्भव है।

तो फिर क्यों पिच्छि छुड़वाई जाती है, जबकि छोड़ने का किसी भी ग्रंथ में प्रमाण भी नहीं है या प्रायश्चित्त ग्रंथों में भी उसका वर्णन ही नहीं है। तो क्यों छुड़वाना चाहिए क्योंकि ऐसी अवस्था में पिच्छि रखने पर भी कोई दोष नहीं आते हैं। निष्पिच्छ संघ जो कि जैनाभास कहा जाता है उसमें और दिगम्बर वेश में कोई भी अंतर नहीं रहेगा अथवा कोई दोष आते हैं तो कहो कौन-कौन से दोष आते हैं ? आर्यिका, आर्यिका ही है और आर्यिका को ही उपर्युक्त प्रायश्चित्त का विधान है, जिसे हम पूर्व में देख चुके हैं। यदि आप कहो कि लोग उन्हें नमस्कार करेंगे तो भी कोई दोष नहीं है क्योंकि ऐसी हालत में भी यदि कोई नमस्कार कर ले तो भी कहीं निषेध नहीं आया है और ऐसा कर लेने पर उसका प्रायश्चित्त का भी रहस्य ग्रन्थों में उल्लेख है। सम्यग्दर्शन ज्ञान या देशचारित्र समाप्त नहीं होते, पाँचवा गुणस्थान ही रहता है। अतः उन्हें नमस्कार कर लेने पर भी कोई दोष नहीं है। हाँ, आर्यिकाओं को नमस्कार करने वालों की अपेक्षा नहीं रखना चाहिए, उनसे विरक्त रहना चाहिए। अपनी मर्यादा हेतु ऐसे दिनों में किसी भी पुरुष का मुख नहीं देखना चाहिए और यदि दिख गया तो कोई निषेध नहीं है। किन्तु स्वयं स्वेच्छा से नहीं देखना चाहिए। क्योंकि कभी-कभी आहार-विहार आदि में पुरुषों का दिखना सम्भव रहता है फिर भी यथाशक्य सावधान रहना चाहिए।

अतः यह बात सिद्ध हो जाती है कि पिच्छि रखने में कोई दोष नहीं है। फिर तीसरा वस्त्र रखने पर दोष ही दोष है। फिर उसका प्रायश्चित्त कभी समाप्त ही नहीं हो पायेगा। इसलिये तीसरे वस्त्र को रखना उचित नहीं ठहरता और न ही उसके प्रायश्चित्त की व्यवस्था बन सकती है। यदि आप कहो कि समान दोष होने पर भी सभी को एक जैसा प्रायश्चित्त नहीं दिया जा सकता है ? तो फिर आखिर किसी न किसी में यह सम्भव है।

तात्पर्य यही निकलता है कि तीसरा वस्त्र नहीं रखना चाहिए। हाँ यदि कोई आर्यिका सक्षम है तो उसे तीन दिन तक लगातार उपवास करते हुए स्थित रहना चाहिए ताकि पिच्छि न छूना पड़े। यदि इतना संभव न हो तो पिच्छि नहीं छोड़ना चाहिए।

अशौच के समय यदि कोई आर्यिका पिच्छि छोड़ती है तो शुद्धि के पश्चात् कौन उन्हें पिच्छि देगा ? यदि आर्यिका पिच्छि देंगी तो फिर पिच्छि देने वाली आर्यिका को ही गुरु मानना पड़ेगा। क्योंकि जो पिच्छि देगा वह व्रत प्रायश्चित्त भी देगा और फिर वही गुरु होगा, जिससे महत् दोष आयेंगे।

पिच्छि छोड़ने पर फिर आर्यिका, आर्यिका न रहेगी। जिससे आर्यिका व्रत की अवधि मासिक धर्म के पूर्व तक ही माननी पड़ेगी। अर्थात् एक माह का भी आर्यिका व्रत नहीं बन सकेगा।

अतः आगम में कहे गये आर्यिका के पादप्रक्षालन व पूजा-अर्घ आदि विषयक आगम प्रमाण को देखकर भी उस पर तर्क आदि कर उसका निषेध नहीं करना चाहिये।

प्रथमतः आगम को देखना चाहिये कि जैसा कोई कह रहा है वैसा प्रमाण किसी आगम में है। यथा-

* आर्यिकाओं की पूजा मिथ्यात्व है।

* आर्यिकाओं का पाद प्रक्षालन मिथ्यात्व है।

* आर्यिकाओं की नवधा भक्ति मिथ्यात्व है।

* आर्यिकाओं को रजस्वला अवस्था में पिच्छि छोड़ना चाहिए।

इन विषयों में एक भी आगम प्रमाण है तो उसे दें। यदि वह आर्षवाक्य है तो हम उसे भी उसी प्रकार से स्वीकार करेंगे जैसे कि अन्य प्रमाणों को स्वीकार करते हैं। और यदि वे आगम और आचार्य वाक्य है तो हम उसे और जो प्रमाण हमने आगम के दिये हैं इन दोनों को उभयवाक्य प्रमाण के अनुसार दोनों को प्रमाण मानेंगे क्योंकि वे आचार्य व आगम वचन भी जिनवचन हैं।

अथवा यूँ कहा जाए कि एक ही विषय संबंधी विधि निषेध वाक्य तो परस्पर विरुद्ध वाक्य हैं। अतः दोनों में एक ही तो सत्य होगा। आपका कहना सत्य है पर उसके निर्णय की सामर्थ्य हमारे क्षयोपशमिक- ज्ञान में कहाँ है ? क्योंकि यह तो

केवलीज्ञानगम्य है। जब भगवान के समवसरण में इसका समाधान हो जाएगा तब हम उसे मान लेंगे और जो गलत होगा उसे छोड़ देंगे।

तब तक उभय वाक्य दिगम्बराचार्य के हैं और निर्ग्रन्थ दिगम्बराचार्य सत्य महाव्रतधारी तथा पापभीरू होते हैं। वे गलत (असत्य) व्याख्या/ लेखन कर नहीं सकते हैं। अगर किसी विषय में आगम के दो प्रमाण मिलें तब तक हमें दोनों स्वीकार करना चाहिये। यही हमारे सम्यग्दृष्टि का सूचक है।

आगम में तर्क नहीं :-

प्रश्न - यदि कोई आगम देखकर भी तर्क करे तो ?

उत्तर - **'आगमोऽतर्कगोचरः'** आगम तर्क का विषय नहीं होता । आगम प्रमाण है, केवल तर्क ही प्रमाण नहीं है। आगमानुसारो अर्थात् आगम के अनुसार तो युक्ति होती है किन्तु युक्ति के अनुसार कोई आगम नहीं होता अर्थात् जो युक्ति आगम की सिद्धि करे वह युक्ति/तर्क भी प्रमाणित है किन्तु जो केवल वचन हैं वे केवली वचन हैं वे किसी युक्ति की अपेक्षा नहीं रखते अथवा जिस युक्ति से उसे हम समझना चाहें संभव है वह युक्ति ही हमारे क्षायोपशमिक ज्ञान के कारण गलत हो और जो सही युक्ति हो वह हमारे ज्ञान में नहीं आ रही हो अथवा युक्ति लगाने का तरीका ही हमें न आ रहा हो।

अतः युक्ति गलत हो सकती है, पर आगम गलत नहीं हो सकता है। इसलिये उसी युक्ति को प्रमाण मानना चाहिए जो आगम की सिद्धि करे किन्तु जिस युक्ति से आगम बाधित होने लगे उस युक्ति/तर्क को प्रमाणित नहीं समझना चाहिए, उसे छोड़ देना चाहिए। आगम वाक्य केवली वाक्य हैं और युक्ति वाक्य हमारे तुच्छज्ञान की उपज है। अतः युक्ति गलत हो सकती है, पर आगम गलत नहीं हो सकता है।

प्रश्न - यदि कोई आगम वाक्य हमारी युक्ति से गलत ठहरे तब तो उसे गलत ही मानना चाहिये। केवल बाबा वाक्य प्रमाणं तो नहीं हो सकता ?

उत्तर - धवला जी में जहाँ आचार्य वीरसेन महाराज के लिये दो आचार्य के दो मत मिलते हैं, तब वे यथासम्भव उनकी सिद्धि करते हैं पर वो किसी को गलत / असत्य नहीं कहते हैं। अपितु जहाँ कोई आर्षवाक्य को आचार्य वीरसेन के मुख से असत्य कहलवाना चाहता है तब वे कहते हैं- आचार्य/आगम वाक्य को गलत कहने में **'ऐलाच्चाइरिय जिब्भा ण हिललज्जई'** अर्थात् आचार्य/आगम वाक्य के विरुद्ध ऐलाचार्य (वीरसेन) की जिह्वा नहीं हिल सकती है।

सम्माइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहदि ।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा ।।

(गोम्मटसार जीवकाण्ड गाथा 27)

अर्थात् जो उपदिष्ट प्रवचनों पर श्रद्धा नहीं करता किन्तु गुरु के नियोग से असद्भाव का ही श्रद्धा करता है कि ऐसा हमारे गुरु का उपदेश है तो भी जब तक उसको आगम प्रमाण नहीं मिल जाते तब तक सम्यग्दृष्टि है।

आगम के प्रमाण देखकर भी जो उसे न माने सो मिथ्यादृष्टिः-

यदि आगम प्रमाण मिल जाने पर भी यदि कोई उसे न माने और अपनी पुरानी मान्यता न छोड़े तो ?

इसके उत्तर में सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्राचार्य कहते हैं कि

सुत्तादो तं सम्मं, दरसिज्जन्तं जदा ण सद्दहदि ।
सो चेव हवइ मिच्छाइट्ठी जीवो तदो पहुदी ।

(गोम्मटसार जीवकाण्ड गाथा 28)

अर्थात् आगम को अच्छी तरह देखकर और समझकर भी जो उसे नहीं मानता है वह उसी समय से मिथ्यादृष्टि हो जाता है।

ऐसे व्यक्ति के प्रति फिर हमें क्या करना चाहिए।

'विपरीतवृत्तौ माध्यस्थभावं' आगम को न मानने वाले, आगम के विपरीत चलने वालों के प्रति माध्यस्थ भाव रखना चाहिए किन्तु अनावश्यक राग-द्वेष नहीं करना चाहिए क्योंकि राग-द्वेष से बैर- विरोध और इससे दीर्घ संसार होता है।

अंत में मैं यही कहना चाहता हूँ कि ये सब बातें साधुओं को आपस में बैठकर ही करना चाहिये। इसमें श्रावकों को नहीं बतलाना चाहिये। अथवा जिस संघ की या गुरु की जो आज्ञा हो प्रत्येक दीक्षित शिष्य को उसे ही पालन करना चाहिये। पर सभी श्रावकों को केवल एक ही संदेश देना चाहिये कि जिस संघ की जो परम्परा हो, गुरु आज्ञा हो, उस पद्धति से उनकी आज्ञा का पालन करना चाहिये।

इस प्रकार आर्यिका चर्या की समाचार विधि तथा उनके विषय में आवश्यक तथ्यों को आगम प्रमाण देने का मैंने यह यत्किंचित् प्रयास किया है।

सविस्तृत आगम से तथा मेरे द्वारा लिखित **'आगम चक्खु साहू आर्यिका चर्या'** पुस्तक से जानना चाहिए। इसमें जो है सब पूर्वाचार्यों का है। अभी तक चली आ रही अखण्ड आचार्य परम्परा का है, मेरा कुछ भी नहीं।

मैंने जो भी लिखा जिन, जिनागम तथा जिन पथानुगामी आचार्यों की भक्तिवशात् लिखा। उक्त प्रमाणों से भिन्न चर्या करने वालों के द्वारा यदि मुझे कोई आगम प्रमाण मिलेंगे तो मैं उसे भी ससम्मान स्वीकार करूँगा। मेरा किसी से विद्वेष भाव नहीं है।

अंत में एक बात और कहना चाहूँगा, कि वर्तमान में कतिपय साधक समाज में भ्रम-भ्रांति फैला रहे हैं कि आर्यिका पूजा मिथ्यात्व है, आगम विरुद्ध है। ऐसा कहकर लोगों को नियम दिलाते हैं कि आर्यिका पूजा, पाद-प्रक्षालन परिक्रमा नहीं करेंगे। (जिन संघों में ऐसा होता है) उनके लिए चौका नहीं लगाएँगे। उन्हें कोई न पड़गाहे उपवास करे तो कर लेने दो आदि- ऐसा न करें। अपितु जिनके गुरु संघ की जो परिपाटी है हम उसी के अनुसार उन्हें सविनय भक्तिपूर्वक आहारदान दें, व्यवधान न करें, इसी में एकता निर्जुगुप्सा (साधर्मी से ग्लानि/घृणा न करना) वात्सल्य तथा प्रभावना निहित रहेगी और सम्यग्दर्शन रह सकेगा अन्यथा नहीं: केवल विघटन होगा, सामाजिक फूट होगी, आपसी विद्वेष बढ़ेगा तथा अन्य लोगों में चर्चा का विषय बनेगा।

अतः हमारे समाज को आचार्यगण तथा समाज के गणमान्य प्रतिष्ठित श्रावक-श्राविकायें, सभी संघों के प्रति उन्हें गुरुपद तथा गुरु (दीक्षा गुरु) आज्ञानुसार चलने की प्रेरणा दें। उनकी आज्ञा उल्लंघन कराके उन्हें स्वच्छंद न बनाएँ और न ही संघ व समाज में वैमनस्यता फैलने दें। सभी निरन्तर-

गुणीजनों को देख हृदय में मेरे प्रेम उमड़ आवे।
बने जहाँ तक उनकी सेवा करके यह मन सुख पावे ।।
रहे सदा सत्संग उन्हीं का ध्यान उन्हीं का नित्य रहे।
उन्हीं जैसी चर्या में यह चित्त सदा अनुरक्त रहे।।

इत्यलं विस्तरेण

स्त्रियों के अशौच विषयक विज्ञान की मान्यताएँ

अशौच (मासिक धर्म) के समय स्त्री की चमडी में मिनोकोलीन नामक विष उत्पन्न होता है इसकी समानता केमीकल फार्मूला के अनुसार ''ओक्षी कोलेस्टीन'' से की गयी है। जिसके स्पर्श से अनेक रोग उत्पन्न हो जाते है। अमेरिका के प्रसिद्ध ''जान हॉपकिन्स'' यूनिवर्सिटी की प्रयोगशाला में महिला चिकित्सकों ने मासिक धर्म वाली स्त्रियों पर विभिन्न प्रयोग कर यह निष्कर्ष निकाला कि मासिक धर्म वाली स्त्रियों के लिए हर काम वर्ज्य हैं।

यूरोपीय वैज्ञानिक डॉ. एस. एल. शीकम के अनुसार 'मिनोकीलन विष' तथा वैज्ञानिक एस. आई. विशक के अनुसार मोनोपॉक्सिन विष अशौच स्त्रियों के पसीना, श्वसनवायु तथा त्वचा से निकलता है।

विदेशों में अशौच (मासिक धर्म) की पालना :

1,2. दक्षिण अमेरिका एवं आयरलैण्ड में रहनें वाली स्त्रियाँ मासिक धर्म के समय झोपड़ी में रहती है। तीन दिन तक अपने मस्तक को भी नही छूतीं।

3. 'मिस्टर क्रेजर' के संशोधन पूर्ण इतिहास और 'अमेरिकन सरक्लूयर' के वृत्तांत से ज्ञात होता है कि रेड इण्डियन स्त्रियाँ मस्तक को उत्तम अंग मानती है अतः छूती नहीं और भी कोई चीज, दूध, आदि को भी नहीं छूती है। यदि छू जाए तो वे चीजें बिगड़े बिना नहीं रहती।

4. लेबनान देश के किसान वर्ग में ऐसी मान्यता फैली हुई है कि अशौच (मासिक धर्म) वाली स्त्री खेत में प्रवेश नहीं कर सकती है। यदि भूल से आ जाये तो पेड़-पौधे की हरियाली पर रियेक्शन हो जाता है। ऐसी स्त्रियों को वहाँ घोड़ों पर भी बैठना मना है।

5. जर्मन में शराब के गोदामों में रजोधर्म वाली स्त्रियों का प्रवेश निषेध है क्योंकि उनके प्रवेश मात्र से उसका स्वाद बिगड़ जाता है।

6. फ्रांस सम्राट नेपोलियन बोनापोर्ट के देश में रजस्वला स्त्रियों को शक्कर की फैक्ट्री में प्रवेश नहीं दिया जाता है क्योंकि उनके प्रवेश से शक्कर काली पड़ जाती है।

7. दक्षिण फ्रांस में भी रेशम की फैक्ट्री में मासिक धर्म वाली स्त्रियों को वहाँ खड़ा नहीं रहने दिया जाता है क्योंकि उनकी उपस्थिति मात्र ही रेशम की सोफ्टनेस ह्रास कर देती है। स्त्री सेंट आदि की शीशियों को भी यदि वें छू लें तो उसकी सुगंध घट जाती है।

8,9,10. भूटान, सिक्किम तथा तिब्बत में मासिक धर्म वाली महिलाये अपने पति से दूर रहती है। उनका चेहरा भी नहीं देखती, बालकों को अन्य किसी गाय आदि के दूध पर निर्भर रखती है। उनके लिए पूजा-स्थल पर जाने की भी मना ही है। घर में संकुचित स्थान हो तो वे अपने स्वजन सम्बन्धी के यहाँ अलग कमरे में रहती है।

11. अफ्रीका - कोर्गो नदी के तट पर रहनेवाली स्त्रियाँ अशौच के समय रोजिंदा निवास स्थान का त्याग कर ब्लड-बूथ (एक स्थान) में जाकर रहती है। वहाँ पर किसी का स्पर्श भी नहीं होने देती। ऐसी स्त्रियों की पहचान के लिए छाती पर त्रिकोण बांधा जाता है।

12. न्यूजीलैन्ड - इस देश की स्त्रियां अशौच (मासिक धर्म) में आते ही जमीन से अंधेरे पिंजरे में ४ दिन बिताती है जमीन पर पैर नहीं रखती। जमीन पर चरने से उसका जहर चारों ओर फैल जाता है।

13. सिरिया देश में ऐसी स्त्रियों के लिए अलग कमरा रखा जाता है वे रसोई अथवा अचार नहीं बना सकती है। चार दिन तक मात्र आराम ही करती है।

14. इटली में अभी तक ऐसी अवस्था वाली महिलाओं को मधु, फल और शराब को स्पर्श करने की अनुमति नहीं है।

15. नायका - यहाँ की सरकार द्धारा मासिक धर्म युक्त स्त्रियों को देवालय में प्रवेश निषिद्ध घोषित है।

16. सायगोन – अफीम के कारखानों में अशौच में स्त्रियों का प्रवेश नहीं होता है।

17. इग्लैंड –'नोट'नाम का लेखक लिखता है कि वैसेज और वेस्टेज नाम के क्षेत्र में ऐसी महिलायें भोजन न बना सकती, न परोस सकती है।

18. अमेरिका में कई जातियों में अशौच वाली स्त्रियों को मकान की छत पर बिठाते है। तथा ऐसी स्त्री का ओपरेशन नहीं किया जाता है।

19. नाइजीरिया – यहाँ की सरकार ने रजस्वला स्त्रियों के लिए मंदिर प्रवेश की सख्त निषेध किया था।

20. नेपाल – यहाँ ऐसी स्त्रियाँ 3 दिन तक अलग कमरे में छोटी सी खिड़की द्वारा उन्हें खाना-पानी दिया जाता है। वे छोटे बच्चों को दूध भी नहीं पिलाती है।

21. कोचीन – यहाँ की ऐसी महिलायें गाय को नहीं दोहती हैं अग्नि से दूर रहती है। ऊंचे पलंग पर सोती है। फूल के पौधों से दूर रहती है। आकाश के चन्द्र-तारे भी नहीं देख सकती है तथा वाद्ययंत्र नहीं बजा सकती हैं।

- भारतीय जैन धर्म एवं वैदिक धर्म की दृष्टि से भी मासिक धर्म वाली स्त्रियों को सभी प्रकार के पूजा, पाठ, मंत्रोच्चारण, जाप, स्नान, भगवत् दर्शन आदि निषिद्ध है यहाँ तक ही नहीं उन्हें गृहकार्य एवं पति दर्शन भी निषिद्ध है उन्हें एकांत स्थल में मौन से सात्विकता से रहने का विधान है, भोजन भी अत्यंत साधारण जो पौष्टिक न हो, उसे ही लेने का विधान है।

- मुस्लिम धर्म में भी कुरान शरीफ में हुक्म के मुताबिक मुस्लिम स्त्रियों को मासिक धर्म की कालावधि तक नमाज पढने की सख्त मुमानियत (प्रतिबन्ध) है, नमाज पढना उनके लिए जायज नहीं है। उन्हें छह दिन तक अलग रहना पड़ता है। यदि उसे कोई छू ले तो उसको 40-50 दिन तक पश्चाताप करना पड़ता है।

- नवनीत गुजराती डायजेक्ट के सितम्बर 1962 के अंक में एक बात छपी थी कि मुसलमानों के पवित्र तीर्थ मक्का में स्थित ''पवित्र अखंड'' नामका पत्थर, जो मुसलमानों में अत्यंत पवित्र माना जाता है वह काला पड़ गया क्योंकि किसी ऋतुमती स्त्री ने उसका स्पर्श कर लिया था जो आज भी ज्यों का त्यों है।

- यहूदी धर्म – में तो ऐसी स्त्रियों को धान्य, सोना, चांदी, रुपया तथा फर्नीचर तक को छूना निषिद्ध है। अशौच को सभी धर्म, देश या विदेशों में जरूर किसी न किसी रुप में स्वीकारते है। अतः साधारणतः सभी स्त्रियों को अशौच के नियमों का पूर्णतः पालन करना चाहिए।

परिशिष्ट

आगम और आचार्य परम्परा के सन्दर्भ में निम्नलिखित बिन्दुओं का समाधान

- पू. गणिनी आर्यिका विजयमती
(प.पू.आ.विमल सागरजी महाराज की विदुषी शिष्या)

प्रश्न : आर्यिका गुरु संघ में रह सकती है या नहीं ?

उत्तर : आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने कहा है कि शिष्यों का संग्रह व अनुग्रह करना 'सिस्साणुग्गह कुसलो' आचार्य भक्ति में कहा है । श्री सुदत्ताचार्य के संघ में मुनि, आर्यिका, क्षुल्लक, क्षुल्लिकायें सभी थे । आर्यिकाओं का प्रायश्चित देने का और उनका नेतृत्व करने का अधिकार अनुभवी, प्रौढ कुशल, आचार्य को दिया है तथा नव दीक्षित, लघुव्यस्क को आर्यिकाओं के गणधर-आचार्य बनने का निषेध किया है। देखिये -

पियधम्मो दृढधम्मो संविग्गो अवज्जभीरु परिसुद्धो ।
संग्गहजुग्गह कुसलो सददं सारक्खणा जुत्तो ।। 222 मूलाचार ।।
गम्भीरो दुद्धरिसो मिदवादी उप्पकोदुहल्लो य ।
चिर पव्वइदो गिहिदत्थो अज्जाणं गणधरो होदि ।। 223 मूलाचार ।।

प्रश्न : ऐलक, क्षुल्लक, आर्यिकाओं की नवधा भक्ति कब, कितनी और कैसे ?

उत्तर : णवकोटि परिसुद्धं असणं बादाल दोस परिहीणं ।
संजोजणाय हीणं पमाण सहियं विहिसुदिण्णा ।।548।। (पिण्डशुध्दि अधि. मू.)

अर्थात् नवकोटि से परिशुद्ध भोजन, जो कि 42 दोषों से रहित है, संजयोग से हीन है, प्रमाण सहित और विधिपूर्वक दिया गया है ।

''विधिनादत्तंप्रतिग्रहोच्चस्थानपादोदकार्चनाप्रणमन मनो वचन काय शुद्धयमन शुद्धिभि दत्तमुपनीतं, श्रद्धा भक्ति तुष्टि विज्ञानालुब्धता क्षमाशक्तियुक्तेन दत्रिति ।।''

विधि से दिया गया हो अर्थात् प्रतिग्रहण करना, उच्चासन देना, पाद प्रक्षालन करना, अर्चना(पूजा), प्रणाम करना, मन, वचन, काय शुद्धि एवं आहार शुद्धि यह नवधा भक्ति विधि है । इस विधि से तथा श्रद्धा, भक्ति, तुष्टि, विज्ञान, अलोभ, क्षमा और शक्ति इन सात गुणों से युक्त दाता द्वारा दिया गया आहार लेते हैं । मुनि व आर्यिकाओं का समान आचरण होता है । कहा है –

एसो अज्जानपि असमाचारो जहक्खिओ पुव्वं ।। मू.

अतः मुनिराज के समान ही आर्यिकाओं की नवधा भक्ति होनी चाहिये ।

त्रिविधे पात्रे त्रिविधेषु पात्रेषु महाव्रतसम्यक्त्व विराजित मुत्तमपात्रं श्रावकव्रतसम्यक्त्व पवित्रमध्यमपात्रं, सम्यक त्वैकेन निर्मली कृतं जघन्य पात्रं इति त्रिविध पात्रेभ्यो दानं ददाति ।।...

नव प्रकार पुण्योपार्जन विधिभिः सहितः । तिविहेपत्तम्हि सया सद्धार गुणेहि संजुदोणाणी दाणं जो हेदि सयं नव दाण विहीहि संजुत्तो ।।360।।

स्वामी कातिकियानुप्रेक्षा में कहा है कि तीन प्रकार के पात्रों में महाव्रती उत्तम पात्र, व्रती श्रावक मध्यम, केवल सम्यग्दृष्टि श्रावक जघन्य पात्र कहलाता है । नवविध पुण्योपार्जन की विधिपूर्वक दान जघन्य पात्र । इस प्रकार तीनों प्रकार के पात्रों को नव प्रकार पुण्योपार्जन की विधि सहित दे देना चाहिये । अतः आर्यिकाओं की नवधा भक्ति होना ही चाहिये ।

जाते तिथि नियत नहीं रहे न घर के मांहि ।
सो मुनि ऐलक क्षुल्लक अतिथि कहे जगमांहि ।।
इनके आवन काल सो खड़ा रहे निज द्वार ।
भोजन देवे हर्ष कर नवधाभक्ति उच्चार ।।
पड़गावे धोवे चरण गंधोदक शिरनाय ।
ऊँचे धर पूजा करें शुद्ध मन वच तन गाय ।।

आवन बेला टल गई जी मैं देय दान फिर काम ।
समविभाग व्रत अतिथि को ऐसे करे सुनाम ।।

(बुधजन कृत तत्वार्थ बोध)

उक्त आगमोक्त विधि में विशेषता यह है कि आहार का नियम नहीं होता हैं । गुरु आज्ञा ही मान्य होती हैं । शेष मुनि और आर्यिका की नवधाभक्ति समान है । ऐलक की प्रदक्षिणा लगाई जाती है । खड़े होकर मुनिव्रत विधि होती है । क्षुल्लक क्षुल्लिकाओं को अर्घ चढ़ाने की परम्परा चली आ रही है । शेष देश, काल, क्षेत्र के कारण विशेष व्यवस्थायें गुरु आज्ञा प्रमाण बनायी जाती हैं जो कालावधि के लिये होती है ।

प्रश्न : यज्ञोपवीत के विषय में जैनागम में क्या विधान है ?

उत्तर : पूज्यां वार्ता च दत्ति च स्वाध्यायं संयमं तप ।
श्चुतोपासक सूत्रत्वात् सः तेभ्यः समुपादिशत् ।।
कुलधर्मोयमित्येषा मर्हत्पूजादि वर्णनम् ।
तदा भरत राजर्षिरन्ववोच दनुक्रमात् ।।

यज्ञोपवीत को धारण करने वाले को ही श्री जिनेन्द्र देव की पूजा, मुनियों को दान, स्वाध्याय वार्ता, संयम, तप आदि षट्कर्म करना चाहिये । गृहस्थों का यह कुल धर्म है । उनको भगवान की पूजा का वर्णन भरत महाराज ने अनुक्रम से कहा, ऐसा श्रीमज्जिनसेनाचार्य ने आदि पुराण में पृ. 1346 पर लिखा है ।

यावज्जीवरमिति त्यक्त्वा पंच पापानि शुद्ध धी ।
जिनधर्म श्रुते गाह्यः स्यात्कृतोपनयनो द्विजः ।।

जिसने जीवन पर्यन्त के लिये पाँचों पापों का त्याग किया है और जो यज्ञोपवीत धारण किये हैं वह द्विज है वही जिनधर्म सुनने योग्य है ऐसा सागर धर्मामृत में पं. आशाधर जी ने लिखा है ।

कंठे हारलतां विभ्रन् कटिसूत्र कटी तटे ।
शूद्रोऽपि उपस्कराचार-वपुशुद्धाऽस्तु तादृशः ।
जात्या हीनोऽपि कलादिलब्धौ ह्यात्यास्ति धर्म भाक् ।।22।।

(सागार धर्मामृत)

उपकरण आचार और शरीर की शुद्धि होने से शुद्र भी जैन धर्म का अधिकारी हो सकता है क्योकिं काललब्धि आदि के मिलने पर जाति से हीन आत्मा भी धर्म का अधिकारी होता है (किन्तु मुनिदीक्षा हेतु ही वर्ण योग्य माने गये हैं। अहिंसाणुव्रत का पालन करने वालों में जैन शास्त्रों में यमपाल चाण्डाल का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है -

सम्यग्दर्शन संपन्न मपि मातङ्ग देहजम् ।
देवा देवं विदुर्भस्म गूढाङ्गारान्त रौजसम् ॥28॥ रत्नकरण्ड श्रा.
ब्रह्म सूत्रोपवीतांगं सगांगौधमिवान्दिशट् ।

आदिपुराण के पृ. 580 पर भगवान ऋषभदेव का वर्णन करते हुये लिखा है कि भगवान के कंठ में दिव्यहार, कमर में करधनी व वक्षस्थल पर यज्ञोपवीत था तथा इसी ग्रन्थ के पृष्ठ 534 पर देखिये-

चौलोप नयना दीननुक्रमात् ।
क्रिया विधीन-विधानज्ञः सृष्टे वाक्य निसृष्टवान् ॥

श्री ऋषभदेव ने भरत के अन्न, प्राशन, चौलकर्म, यज्ञोपवीतादि समस्त संस्कार स्वयं किये।

प्रश्न : (मासिक धर्म के समय) आर्यिकाओं को पिच्छी छोड़ने के विषय में आगम और आचार्य परम्परा क्या हैं ?

उत्तर : भगवती आराधना की हिन्दी टीका करते हुये पं. सदासुखजी ने पृ 63-64 पर आर्यिका के कर्त्तव्य का विचार लिखा है :- बहुरिजो आर्यिका रजस्वला (मासिक धर्म) होय तो तीन दिन पर्यन्त नीरस भोजन करे व एकांतरे भोजन करे व तीन उपवास करे। चौथे दिन स्नान करि इर समीचीन पंच परम गुरु का जाप करती शुद्ध होय है।

स्नान और वस्त्र प्रक्षालन आर्यिका के लिये लिखा है वह गृहस्थों के समान नहीं है। किन्तु अपने व अन्य के कमण्डलु के प्रासुक जल से यथा योग्य शरीर को धोना रक्त मिले हुये वस्त्र को शुद्ध करना चाहिये। यदि वह इतना भी न करे तो उसका निरंतराय आहार कैसे हो ? सामायिक आदि षट् कर्मों का पालन किस प्रकार बन सके ? गणिनी के साथ बैठना, गणिनी व अन्य आर्यिकाओं को स्पर्श करना, धर्मोपदेश करना, पढ़ना-पढ़ाना, जिनदर्शन करना, आचार्यादि के दर्शन करना, धर्म शास्त्र का

श्रवण करना आदि कार्य किस प्रकार बन सकेंगे ? वह स्नानादि न करे तो चार दिन तक वह जो मौन से एकान्त में गणिनी से अलग सामायिकादि षट्कार्यों के आचरण से रहित होती है। सो उसका रहना भी वही बन सकेगा। आर्यिका के साक्षात् महाव्रत है तो नहीं, न ही साक्षात् 28 मूलगुण हैं इसलिये उसको स्नानादि का दोष नहीं लगता। इसके सिवाय एक बात यह भी है कि वह जो स्नान करती है उसका प्रायश्चित लेकर शुद्ध होती है। आर्यिका जो स्नान करती है वह सुख के लिये नहीं करती, प्रायश्चित ग्रन्थ में लिखा है -

अजजाक चेल धवणे, उपवासो आउकाउ धोदण।
काउस्सग्गो केहिओ, पास गणीरेण पात्रादी ।।

अर्थात् यदि आर्यिका अप्रासुक जल से वस्त्र धोवे तो इसका प्रायश्चित एक उपवास है। यदि वह अपने पात्र, शरीर तथा वस्त्रों को प्रासुक जल से धोवे तो उसका प्रायश्चित एक कायोत्सर्ग है।

पिच्छी छोड़ने पर सात पैर चला जाये तो प्रायश्चित से शुद्ध होता है। पिच्छी से रहित होने पर गमनागमन करना, आहार विहार करना कैसे सभंव होगा ? परम पूज्य मुनि कुञ्जर समाधि सम्राट आचार्य आदिसागर महाराज (अंकलीकर), आचार्य शांतिसागरजी महाराज, आचार्य आदिसागरजी के पट्टाधीश आचार्य महावीरकीर्ति महाराज जी तथा इनके पट्टाधीश आचार्य सन्मति सागरजी, आचार्य देशभूषण जी महाराज, आचार्य वीरसागर महाराज, आचार्य शिवसागर महाराज, आचार्य विमल सागर महाराज, आचार्य धर्मसागर महाराज, आचार्य अजितसागर महाराज, आचार्य सुबल सागर महाराज, आचार्य कुन्थुसागर महाराज, आचार्य बाहुबली सागर महाराज, आदि आचार्य परम्परा में मासिक धर्म के समय पिच्छी का छोड़ना नहीं देखा सुना जाता है। पिच्छी संयम का चिन्ह है यह संयम रुप परिणाम उत्पन्न और दृढ़ करने में कारण हैं। सम्यक्त्व का लक्षण है। उसका त्याग करना संभव नहीं, क्योकिं षट्काय विराधना होने से पूर्ण व्रताविराधना का दोष उत्पन्न होता है। अतएव आर्यिका को रजस्वला होने पर पिच्छी त्याग नहीं करना चाहिये।

वर्तमान शताब्दि के दिगम्बर जैनाचार्य संघ

- गणिनी आ. ज्ञानमति माताजी
(प. पू. आ. वीरसागरजी महाराज की विदुषी शिष्या)

इस शताब्दि में चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज हुये हैं। इनके दीक्षा गुरु आ. देवेन्द्र कीर्ति मुनिराज थे। इनके पट्ट शिष्य आचार्य वीरसागरजी हुये हैं। इनके पट्टाचार्य शिवसागरजी एवं इनके पट्टाचार्य श्री धर्मसागरजी हुये हैं। वर्तमान में इनके पट्टाचार्य श्री अजितसागरजी विद्यमान हैं।

इस परम्परा में मुनियों की नवधा भक्ति पहले पड़गाहन प्रदक्षिणा, पुनः उच्चासन देकर पाद प्रक्षालन पुनः अष्ट द्रव्य से पूजा होती है फिर आहार दिया जाता है। इस परम्परा में ऐसे ही आर्यिकाओं की भी आहार के समय पड़गाहन, प्रदक्षिणा, पाद प्रक्षालन व अष्टद्रव्य से पूजा सहित नवधा भक्ति की जाती है।

क्षुल्लकों के गेरुआ चादर व कौपीन(लंगोटी) रहती है। क्षुल्लिकाओं के एक साड़ी एक चादर व धातु का कमण्डलु रहता है। दोनों के पास मयूर पंखों की ही पिच्छिका होती है। आहार के समय क्षुल्लक, क्षुल्लिकाओं का पड़गाहन (प्रदक्षिणा बिना) पाद प्रक्षालन व अर्घ चढ़ाकर पूजा करके नवधाभक्ति के बाद थाली में आहार कराया जाता है। कोई कोई अभी आज भी आ. श्री शांतिसागरजी से दीक्षित क्षुल्लिका अजितमतीजी विद्यमान हैं। उनकी चर्या ऐसे ही है। कदाचित् वहीं से कटोरा पात्र लेकर भी आहार करते हैं।

इसी परम्परा में आचार्य श्री शांतिसागरजी के प्रथम पट्टाधीश आचार्य वीर सागरजी की शिष्या मैं- गणिनी आर्यिका ज्ञानमती और गणिनी आर्यिका सुपार्श्वमतीजी अपने-अपने आर्यिका संघ सहित विद्यामान हैं। आर्यिका जिनमती, आ. आदिमती, आ. विशुद्धमतीजी आदि भी प्रभावनारत हैं।

आचार्य श्री शांतिसागरजी के एक शिष्य आचार्य पायसागरजी हुये हैं। उनके शिष्य आ. श्री जयकीर्ति जी हुये हैं। इनके शिष्य आचार्यरत्न श्री देशभूषणजी महाराज हुये हैं। इस परम्परा में भी सारी बातें वही हैं मात्र क्षुलक-क्षुल्लिकायें रेल, मोटर की सवारी करते रहे हैं।

आचार्य श्री शांतिसागरजी के शिष्यों में यह बंधन था। अपवाद रूप विशेष बीमारी आदि के कारण से उनकी शिष्या क्षु. अजितमतीजी भी रेल, मोटर में नहीं बैठती हैं किन्तु व्यक्तिगत कार से उन्हें श्रावक एक गाँव से दुसरे गाँव आदि ले जाते हैं।

चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री के एक शिष्य आचार्यकल्प श्री चन्द्रसागरजी महाराज हुये हैं। इन्होंने क्षुल्लकों को श्वेत वस्त्र दिया और ग्यारह प्रतिमाओं की सूचक ग्यारह लर वाला जनेऊ भी दिया है। तथा क्षुल्लक-क्षुल्लिकाओं को पात्र लेकर सात घर से भिक्षा लाकर भोजन करने की पद्धति भी डाली थी किन्तु उनकी यह भिक्षावृत्ति परम्परा तो आगे नहीं चल पाई है। आचार्य श्री सुधर्मसागरजी चारित्र चक्रवर्ती के ही शिष्य थे वे भी इसी परम्परा के समर्थक थे। आ. कल्पश्री चन्द्रसागरजी के शिष्य क्षुल्लक श्री भद्रसागरजी थे। जो कि गुरु की समाधि के बाद आ. श्री वीरसागरजी के संघ में ही आ गये थे। मुनि बनने पर उनका नाम धर्मसागरजी रखा गया था। ये ही इस परम्परा के तृतीय पट्टाधीश हुये हैं, इन्होंने क्षुल्लकों के गेरुये वस्त्र की परम्परा ही रखी है। इस परम्परा के साधु-साध्वी जनेऊधारी श्रावकों के हाथ से ही आहार लेते हैं।

आचार्य श्री वीरसागरजी के शिष्य एक क्षुल्लक थे वे संघ से पृथक् होकर दक्षिण चले गये। वहाँ अंकलीकर श्री आदिसागरजी महाराज से मुनि दिक्षा ले ली, आचार्य श्री महावीरकीर्तिजी के नाम से प्रसिद्ध हुये हैं। ये यद्यपि दक्षिण में क्षुल्लकों को गेरुए वस्त्र देने की ही परम्परा रही है। फिर भी आ. कल्प चन्द्रसागरजी और आचार्य श्री सुधर्मसागरजी की परंपरा के अनुसार इन्होंने अपने क्षुल्लक शिष्यों को ग्यारह लर का यज्ञोपवीत दिया, श्वेत कौपीन व चादर दिया। ये आचार्य श्री बिना जनेऊवालों से आहार तो लेते ही नहीं थे, उन्हें कमण्डलु तक उठाने नहीं देते थे। आज इनकी परम्परा में मुख्य आचार्य श्री विमलसागरजी, आ. श्री सन्मतिसागरजी, गणधराचार्य श्री कुन्थुसागरजी आदि संघ सहित विद्यमान है ! और गणिनी आर्यिका विजयमती भी धर्म प्रभावना कर रही हैं।

मात्र क्षुल्लकों के गेरुवे वस्त्र और श्वेत वस्त्र के अन्तर के सिवाय चारित्र चक्रवर्ती की और महावीरकीर्ति जी की परम्परा में और कोई अन्तर खास नहीं है।

इन दोनों परम्पराओं में क्षुल्लक-क्षुल्लिकाओं के आहार के समय अर्घ चढ़ाया जाता है। आ. श्री वीरसागरजी की परम्परा में तो इनका पाद प्रक्षालन भी किया जाता है और नवधा भक्ति मानी जाती है।

आचार्य श्री शांतिसागर नाम के एक आचार्य और हुये हैं, ये अपने गाँव के नाम छाणी से जाने जाते थे। ब्यावर में सन् 1934 के लगभग दोनों शांतिसागर आचार्यों का एक साथ चातुर्मास हुआ था। ये श्रावकों को तेरापंथ का उपदेश देते थे। हरे फल व फूल चढ़ाने का, पंचामृत अभिषेक का व स्त्रियों द्वारा जिनाभिषेक का समर्थन नहीं करते थे। बाद में आ. सूर्यसागर जी, मुनि श्री विमलसागरजी आदि भी इसी परंपरा के समर्थक हुये हैं। आचार्य श्री विमलसागरजी से दीक्षित श्री सुमतिसागरजी आचार्य और श्री निर्मलसागरजी आचार्य हैं। ये आचार्य भी तेरापंथ विचारधारा के पोषक हैं।

सज्जाति के समर्थक होने से ये आचार्य भी अंतर्जातीय, विजातीय और विधवा विवाह के समर्थक नहीं हैं। ऐसे सम्बन्ध वालों से आहार भी नहीं लेते हैं और कांजीपंथ के भी विरोधी हैं।

इनकी परम्परा में आर्यिकाओं का पड़गाहन, पाद प्रक्षालन होता है। पूजा अष्टद्रव्य से पृथक्-पृथक् न होकर सब मिलाकर अर्घ चढ़ाया जाता है। क्षुल्लकों को इनके यहाँ भी श्वेत वस्त्र देते हैं। अन्तर यही है कि ये जनेऊ नहीं देते हैं। क्षुल्लक-क्षुल्लिकाओं के आहार के समय पाद प्रक्षालन व अर्घ की परम्परा इनके यहाँ नहीं है। ये साधुवर्ग बिना जनेऊ वालों से भी आहार ले लेते हैं।

इन्हीं की परम्परा में आ. श्री निर्मलसागरजी के शिष्य मुनि श्री शांतिसागरजी (अलवर वाले) हैं। ये भी आचार्य कहलाते हैं। कुछ वर्षों से ये कांजी पंथ के समर्थक हो गये हैं और इन्होंने एक क्षुल्लक कुलभूषण तथा एक मुनि चंद्रसागरजी को दीक्षा दी हैं। ये भी कांजी पंथ का समर्थन करने लगे हैं जबकि उन पंथ वालों ने आज तक भी इन्हें नवधाभक्ति पूर्वक आहार नहीं दिया है।

आचार्यरत्न श्री देशभूषणजी महाराज के अनन्तर उपाध्याय श्री विद्यानन्दजी और श्री बाहुबली मुनि जी आचार्य बने हैं। पहले श्री विद्यानन्द मुनि श्री ने दि. जैन साहित्य में विकार नाम से कांजी पंथ के साहित्य के विरोध में अच्छी पुस्तक लिखी थी। इन आचार्य देषभूषण जी की परम्परा में भी क्षुल्लकों को गेरुवे वस्त्र देते हैं तथा आहार के लिये कटोरा एक पात्र देते हैं।

आचार्य श्री वीरसागरजी के प्रथम शिष्य आ. श्री शिवसागरजी से श्री ज्ञानसागरजी ने मुनि दीक्षा ली थी। आज उनके शिष्य आचार्य श्री विद्यासागर जी प्रसिद्ध हैं। मुनि श्री ज्ञानसागरजी ने भी अपने क्षुल्लकों को श्वेत वस्त्र दिये थे और जनेऊ नहीं दी थी। उसी परम्परा के अनुसार आ. विद्यासागर जी भी क्षुल्लक ऐलक को

श्वेत वस्त्र देते हैं। अभी दो वर्ष पूर्व इन्होंने आर्यिका दीक्षायें दी हैं। उनके यहाँ यह बिल्कुल नई बात हुई है कि आर्यिकाओं के आहार के समय पाद प्रक्षालन, पूजा एवं अर्घ की परम्परा ही नहीं है। क्षुल्लकों का भी अर्घ नहीं चढ़ाया जाता हैं।

आर्यिकाओं की नवधाभक्ति नहीं कराना, वर्तमान में सभी पुराने संघों में यह चर्चा का विषय बना हुआ है। जबकि मूलाचार आदि ग्रन्थों के अनुसार आर्यिकाओं की चर्या मुनिवत मानी गई है उनकी दीक्षा विधि भी मुनि की दीक्षा विधि से ही की जाती है। प्रायश्चित ग्रन्थ के अनुसार मुनि और आर्यिकाओं का प्रायश्चित भी समान है। क्षुल्लक-क्षुल्लिकाओं का उनसे आधा है इत्यादि।

इनके संघ के ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणियों में पूजा पद्धति में तेरापंथ की ही परम्परा देखी जाती है।

इस प्रकार वर्तमान के 100-150 वर्षों के मुनिसंघों में जो मोटा-मोटी भेद देखने में आया है मैंने उसे अति संक्षिप्त में यहाँ लिया है। विशेष जिज्ञासुओं को संघों में रहकर ही समझना चाहिये।

एत्मादपुर -

प्रातः नवम्बर-दिसम्बर की ठंड में कुहरा पड़ रहा था। रास्ते में ही बारिश आ गई। इतनी भयंकर ठण्ड में गीले वस्त्र पहिने हुये जैसे तैसे 7-8 मील का रास्ता पार कर हम लोग एत्मादपुर मंदिर में पहुँचे। श्रावकों ने अच्छी भक्ति की। वहाँ पर संघस्थ लोगों ने हम लोगों की साड़ियाँ धोकर रखीं थी। वे सूखी नहीं थी। अतः आहार के समय उन्हीं गीली साड़ियों को पहनकर आहार को उठना पड़ा।

कुछ बाईयाँ जो दर्शनार्थ आई थीं वे कहने लगीं

अरे ! मैं नई साड़ी मंगाये देती हूँ माताजी इन्हें बदल लो। कई घंटे गीली साड़ी पहनकर आप लोग बीमार पड़ जाओगी।

मैंने कहा - बाई ! नई साड़ियाँ भी तो धोकर सुखाना पड़ेगी। हम लोग नया कोरा वस्त्र बिना धोये नहीं पहनते हैं।

तब उन महिलाओं ने समझाना शुरु किया -

माताजी ! ऐसे ऐसे प्रसंगों के लिये तीसरी साड़ी रखना चाहिये।

मैंने कहा – शास्त्र में आर्यिकाओं के लिये तीसरी साड़ी का विधान नहीं है, दो ही साड़ीयाँ बतायी हैं । यथा-

वस्त्रयुग्म सुबीभत्स, लिंगप्रच्छादनाय च ।
आर्याणां संकल्पेन, तृतीये मूलमिष्यते ।।

आर्यिकाओं को दो साड़ी अपने शरीर को ढकने लिये ग्रहण करना होता है यदि तीसरी साड़ी रखती हैं तो प्रायश्चित का भागी माना गया है । इस नियम के अनुसार आर्यिकायें दो साड़ी रखती हैं फिर भी एक साथ में एक ही पहनती हैं, दूसरे दिन दूसरी बदल लेती हैं ।

यदि कदाचित् विशेष बीमारी आदि में कोई संघस्थ ब्रह्मचारिणी अपने पास एक नई साड़ी धोकर रखे और प्रसंगोपात्त बदला दे तो चल भी सकता है किन्तु यहाँ उन्मार्ग मार्ग नहीं है ।

हम सभी आर्यिकायें उस समय लगातार कई दिनों तक कुहरा, और, वर्षा, बूँदें, ठंडी हवा को झेलती हुई चलती रही । क्रम से फिरोजाबाद पहुँचे किन्तु कोई बीमार नहीं पड़ा । उस समय मेरी उम्र 28 वर्ष की थी । उस ठंडी में अयोध्या तक लगभग हम लोगों ने चलायी की है ।

कलकत्ता –

यहाँ (कलकत्ता) शहर में प्रातः और मध्याह्न दोनों समय मेरा उपदेश होता था उसमें बहुत भीड़ हो जाती थी । इस प्रवचन में यहाँ ठहरे हुये ऐलक सिद्धसागर जी भी आकर बैठ जाते थे । उन्हें मेरे बराबर ही ऊँचा आसान दिया जाता था । वे सुधारक लोगों की संगति से एक दिन उन लोगों के कहे अनुसार अष्टपाहुड ग्रन्थ को लाकर एक श्लोक दिखाते हुये बोले –

''माताजी ! इस आधार से आपको ऐलक को नमस्कार करना चाहिये । मैंने सोचा - ''यह अच्छा रहा, मेरी गुरु परम्परा में ऐलक व क्षुल्लक दोनों ही आर्यिकाओं से छोटे माने गये हैं और वे आर्यिकाओं को नमस्कार करते हैं किन्तु ये उल्टा ही बोल रहे हैं । अरे ! ये मुझे नमस्कार न करें तो न सही किन्तु करने का दुराग्रह क्यों कर रहे हैं ?'' खैर ! उनकी यह दुराग्रह वृत्ति बढ़ती ही गई और उनके साथ 4-5 महानुभाव जोर-जोर से बोलने में तुल गये, तब मैंने उपदेश के बाद शास्त्र दिखाकर

बड़े ही प्रेम से समाधान दिया -

देखो आर्यिकाओं की चर्या मुनि के समान हैं, मूलाचार में कहा हैं -

एसो अज्जाणं पि य समाचारो, जहाक्खिओ पुव्वं ।
सव्वम्हि अहोरत्ते विभासिदव्वो जहाजोग्गं ।।67।।

जैसी यहाँ मुनियों के लिये मूलगुण और समाचार विधि बताई गई है । वही सब यथायोग्य अहोरात्रि में आर्यिकाओं के लिये भी है । अतः ये उपचार से महाव्रती मानी गई है । सर्वत्र प्रथमानुयोग में इन्हें महाव्रती और संयतिका कहा है । आचार सार में भी कहा है -

देशव्रतान्वितैस्तासामारोप्यंते बुधै स्ततः ।
महाव्रतानि सज्जातिज्ञप्त्यर्थमुपचारतः ।।89।।

इनके उपचार से महाव्रत है किन्तु ऐलक के उपचार सें भी महाव्रत नहीं है । सागार धर्मामृत में कहा है -

कौपीनेऽपि समूर्च्छत्वात् नार्हत्यार्यो महाव्रतं ।
अपि भाक्तममूर्च्छत्वात् साटिकेऽप्यार्यिकार्हति ।।36।।

अहो ! आश्चर्य की बात है कि ऐलक लंगोटी में ममत्व परिणाम होने से उपचार से महाव्रती नहीं हो सकता है किन्तु आर्यिका साड़ी धारण करने पर भी ममत्व परिणाम रहित होने से उपचार से महाव्रती कहलाती है अर्थात् ऐलक लंगोटी त्याग कर सकता है, मुनि बन सकता है फिर भी ममत्व परिणाम आदि से उसे धारण किये हैं अतः उत्कृष्ट श्रावक ही हैं किन्तु आर्यिका तो साड़ी का त्याग करने में समर्थ नहीं है ।

दूसरी बात हमने यह बताई कि- "आज भी जो आचार्य शिवसागर जी, आ. महावीरकीर्ति जी, आ. देशभूषण जी आदि हैं उनसे इस विषय में समाधान मांगा लीजिये ।" लेकिन वे लोग सुनने को ही तैयार नहीं थे, बस आप इन ऐलक को नमस्कार करो ।" ऐसा दुराग्रह पकड़े हुये थे । मैंने पाहुड ग्रन्थ के उस श्लोक का भी अर्थ बताया कि -

एक्कं जिणस्स रुवं वीयं उक्किस्ससावयाणं तु ।
अवरद्वियाण तइयं चउत्थं पुण लिंगदंसणं णत्थि ।।18।।

एक जिनमुद्रा का नग्न दिगम्बर रुप, दूसरा उत्कृष्ट श्रावकों का और तीसरा आर्यिकाओं का । इस प्रकार जिनशासन में तीन लिंग कहे गये हैं । चौथा लिंग जिनशासन में नहीं है ।

इसमें पूज्यता का क्रम नहीं है प्रत्युत जैन आम्नाय में तीन हीं लिंग पूज्य हैं चौथा नहीं यह बतलाया गया है । दूसरी बात यह है कि ''सामान्य शास्त्रतो नूनं विशेषो बलवान् भवेत्'' यह नीति है कि सामान्य शास्त्र की अपेक्षा विशेष शास्त्र का कथन बलवान होता है । यहाँ यह पाहुड की गाथा सामान्य है सागार धर्मामृत का श्लोक विशेष है, इत्यादि ।

खैर ! जब यही चर्चा बार-बार ये लोग लाने लगे और सभा में हल्ला मचाना चाहते थे तभी झूमरमल बगड़ा आदि महानुभावों ने एक दिन इन्हें नीचे ही रोककर कहा -

''आप लोग माताजी द्वारा दिखाये गये प्रमाण मानने को तैयार हैं या नहीं ? यदि नहीं तो अब इसी प्रश्न को बार-बार यहाँ लाने की जरुरत नहीं है और यदि उनकी बात प्रमाण मानते हैं तो उन्होंने अनेक प्रमाण दिखा दिये हैं । अतः अब रोज-रोज व्यर्थ बकवास की जरुरत नहीं है ।'' इस प्रकार कड़ाई करने पर वे लोग शांत हुये ।

आर्यिकाओं की एवं ऐलक-क्षुल्लक की नवधाभक्ति कब ? कितनी ? और कैसे ?

आगम और आचार्य परम्परा के सन्दर्भ में कतिपय बिन्दुओं का समाधान

- आर्यिका विशुद्ध मती माताजी
(प.पू.आ. शिवसागरजी महाराज की विदुषी शिष्या)

प्रथम बिन्दु :

प्रश्न : नवधाभक्ति किनकी करना चाहिये ?

नवधाभक्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर : वीरमार्तण्ड चामुण्डराय कृत चारित्रसार पृष्ठ 26-

1. संयम -

मविनाशयन्नततीत्यतिथि - रथवा नास्य तिथि-रस्तीत्यतिथि - रनियतकाल - गमन - मत्यिर्थः । अतिथये संविभागोऽतिथि संविभागः, स चतुर्विधः भिक्षोपकरणौषध-प्रतिश्रयभेदात् ।

जो संयम का नाश न करते हुये विहार करे, उन्हें अतिथि कहतें हैं अथवा जिनकी कोई तिथि नियत न हो उन्हें अतिथि कहते हैं । ऐसे अतिथि को दान देना अतिथिसंविभाग व्रत कहलाता है । वह दान, भिक्षा (आहार), उपकरण, औषध और प्रतिश्रय (वसतिका) के भेद से चार प्रकार का है

इस उपर्युक्त लक्षणानुसार तो उद्दिष्ट त्यागी सभी संयमी और देशसंयमी अतिथि हैं अतः दान के पात्र हैं और चार प्रकार के दानों में विशेषकर आहार दान तो नवधाभक्ति पूर्वक ही दिया जाता है, अतः अर्थोत्पत्ति से यही सिद्ध होता है कि पात्र को यथायोग्य नवधाभक्ति पूर्वक ही दान देना चाहिये ।

2. आचार्य समंतभद्रस्वामी अपने रत्नकरण्डश्रावकाचार में लिखते हैं कि -

नवपुण्यैः प्रतिपत्तिः, सप्तगुण समाहितेन शुद्धेन ।
अपसूनारम्भाणा-मार्याणामिष्यते दानम् ।।113।।

इस श्लोक का अर्थ करते हुये पं. सदासुख जी लिखते हैं कि दान करना सो तीन प्रकार के पात्रनि कूँ करना । ऐसे पात्रदान करता दातार सप्त गुण सहित होय है । बहुरि पात्र कूँ दान देवे सो मुनी श्रावक का जैसा पद होय तिन परिमाण नवधाभक्ति कर देवे । नव प्रकार भक्ति के नाम -

1. संग्रह 2. उच्च स्थान 3. पादोदक 4. अर्चन 5. प्रणाम 6. मन शुद्धि 7. वचन शुद्धि 8. काय शुद्धि 9. एषणा शुद्धि । तिन में मुनीश्चरनि कूँ तथा क्षुल्लक कूँ तो तिष्ठ, तिष्ठ, तिष्ठ ऐसे तीन बार कहना... । अन्य हूँ श्रावकादि योग्य पात्र घर आवे तो आइये, पधारिये, विराजिये

इत्यादि आदर के वचन का कहना सो संग्रह (प्रतिग्रह) है । 2. बहुरि उच्च स्थान देना । 3. अर प्रासुक प्रमाण करि जल सो चरण धोवना । 4. जैसा अवसर जैसा पात्र ताके योग्य पूजन-स्तवन पूज्यपना के वचन कहना । 5. अर मुनि व श्रावक की योग्यता प्रमाण नमस्कार आदि करना ।

प्रश्न : नवधा भक्ति क्यों करना चाहिये ?

उत्तर : इसके उत्तर में पं. सदासुखजी कहते हैं कि जिनधर्मी की नवधाभक्ति ही तै परीक्षा होय है, जाकै नवधाभक्ति नांहि ताका हृदय में धर्म हूँ नाहीं, धर्म रहित के मुनीश्वर भोजन हू नाही करै हैं । अन्य हू धर्मात्मा पात्र गृहस्थादिक हैं, ते हू आदर बिना लोभी होय धर्म का निरादर कराय दानवृत्ति तै भोजनादि कदाचित् नाही ग्रहण करै है...।

निष्कर्ष : नवधाभक्ति के बिना दाता की परीक्षा नहीं हो सकती कि यह दाता जैन धर्मावलम्बी है, अतः मुनि, आर्यिका, ऐलक और क्षुल्लक ये सब उद्दिष्ट त्यागी धर्मात्मा जन यथायोग्य नवधाभक्ति होना चाहिये ।

प्रश्नः पं. सदासुख जी ने तो मुनि और क्षुल्लक की नवधाभक्ति कही है । आर्यिकाओं के लिये तो कुछ भी नहीं कहा, अतः उनकी नवधा भक्ति नहीं करना चाहिये ?

उत्तर : जब सदासुख जी ने मुनि-क्षुल्लक कह दिया तब उनके मध्य रहने वाले आर्यिका और ऐलक का ग्रहण स्वयमेव हो गया, क्योंकि ये दोनों क्षुल्लक से बड़े हैं।

पं. प्रवर आशाधर जी ने सागारधर्मामृत के आठवें अध्याय में कहा है कि -

कौपीनेऽपि समूर्च्छत्वान्नार्हत्यार्यो महाव्रतं ।
अपि भाक्त ममूर्च्छत्वात्, साटकेऽप्यार्तिकार्हति ।।36।।

अर्थ : आश्चर्य है कि ऐलक (क्षुल्लक) लंगोटी मात्र में ममत्व भाव रखने से उपचरित भी महाव्रत के योग्य नहीं है और आर्यिका साड़ी में भी ममत्व भाव न रखने से उपचरित महाव्रत के योग्य होती है ।।36।।

प्रश्न : उपचरित महाव्रती होते हुये भी इनके गुणस्थान तो पाँचवा ही होता है फिर ये मुनिराजों के सदृश नवधाभक्ति की पात्र कैसे हो सकती हैं ?

उत्तर : आचार्य कुन्दकुन्ददेव ने अपने मूलाचार ग्रन्थ के समाचाराधिकार में मुनि आर्यिकाओं की समाचार विधि कहकर अन्त में मुनिराजों के साथ-साथ आर्यिकाओं को भी जगत्पूज्य और यशस्वी कहा है। यथा-

एवं विधाणचरिये, चरितं जे साधवो य अज्जाओ ।
ते जग-पूज्जं कित्तिं, सुहं च लद्धूण सिज्झंति ।।196।।

अर्थ : उपर्युक्त विधान रुप चर्या का जो साधु और आर्यिकायें आचरण करते हैं, वे जगत् से पूजा, यश और सुख को प्राप्त करते हैं तथा उसी भव से एवं अगले भवों में मोक्ष प्राप्त करते हैं ।।196।।

आर्यिकाओं की दीक्षा को भी आचार्यों ने जैनेश्वरी दीक्षा कहा है।

यथा साहं दुःख-क्षयाकाङ्क्षा, दीक्षां जैनेश्वनरी भजे ।।65।।
(पर्व 105 पद्म पु.)

अग्नि परीक्षा के बाद सीता श्री रामचन्द्र जी से कहती है कि अब मैं दुःखों का क्षय करने की इच्छा से जैनेश्वरी दीक्षा धारण करती हूँ ।।65।।

यही कारण है कि इन आर्यिकाओं को चारों अनुयोगों में भगवती, श्रमणी, श्रेष्ठया, साध्वी, विरदीओ, समणीओ और सव्वविरदीओ कहा है।

इस प्रकार आचार्यों ने आर्यिकाओं को जब जगत्पूज्य और बलभद्र-नारायण से वंदित कहा है तब हमें उनकी नवधाभक्ति करने में इतना संकोच क्यों होता है ?

प्रश्न - नवधाभक्ति करने में संकोच नहीं है किन्तु मुनिराजों के सदृश नवधाभक्ति करने में संकोच है ?

उत्तर : जो सम्यग्दृष्टि हैं, उन्हें आचार्यों की वाणी पर विश्वास करना ही चाहिये । वसुनंदि आचार्य ने अपने श्रावकाचार में पात्र को अपने घर के द्वार पर देखकर नव प्रकार से ही नवधाभक्ति का विधान कहा है । मुनि आर्यिका का भेद नहीं किया है इससे सिद्ध होता है कि दोनों की नवधाभक्ति में भेद नहीं है । यथा-

पत्तं णिय-घरदारे, दट्ठूणण्णत्थ वा विमग्गित्ता ।
पडिगहणं कायव्वं, णमोत्थु, ठाहु त्ति भणिऊण ।।226।।
णेऊण णियय गेहं, णिरवज्जाणु तह उच्च ठाणम्मि ।
ठविऊण तओ चलणाणं, धोवणं होइ कायव्वं ।।227।।
पाओदयं पवित्तं, सिरम्मि काऊण अच्चणं कुज्जा ।
गंधक्खय-कुसुम-णेवज्ज-दीव-धूवेहिं य फलेहिं ।।228।।
पुप्फंजलि खिवित्ता, पयपुरओ वंदण तओ कुज्जा ।
चऊण अट्टरुद्दे, मणसुद्धी होइ कायव्वा ।।229।।
णिट्ठुर-कक्कस वयणाइ वज्जणं तं वियाण वचिसुद्धि ।
सव्वत्थ संपुडंगस्स होइ तह कायसुद्धि वि ।।230।।
चउदस - मल परिसुद्धं, जं दाण सो हिऊण जइणाए ।
संजमि-जणस्स दिज्जइ, सा णेया एषणासुद्धी ।।231।।

अर्थ : पात्र को अपने घर के द्वार पर देखकर अथवा अन्यत्र से विमार्गण कर ''नमस्कार हो, ठहरिए'' ऐसा कह प्रतिग्रह करना चाहिये ।।226।। पुनः अपने घर में ले जाकर निर्दोष तथा ऊँचे स्थान पर बैठाकर तदनन्तर उनके चरणों को धोना चाहिये ।।227।। पवित्र पादोदक को सिर में लगाकर पुनः गंध, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप और फलों से पूजन करना चाहिये ।।228।। तदन्तर चरणों के समीप पुष्पांजलि क्षेपण कर वंदना करें तथा आर्त-रौद्र ध्यान छोड़कर मन शुद्धि करना चाहिये ।।229।। निष्ठुर व कर्कश आदि वचनों का त्याग करने को वचन शुद्धि जानना चाहिये । सब ओर

संपुटित अर्थात् विनीत अंग रखने वाले दातार के काय शुद्धि होती है ।।230।। चौदह मल दोषों से रहित यत्न से शोधकर, संयमी जन को जो आहार दान दिया जाता है वह एषणा शुद्धि जाननी चाहिये ।।231।।

आचार्य वसुनन्दि का यह कथन कि ''पात्र को अपने घर के द्वार पर देखकर नवधा भक्ति करना'' देशामर्शक है । इस ''पात्र'' शब्द में मुनि-आर्यिका दोनों पात्र गर्भित हैं । इससे यह सिद्ध होता है कि मुनि और आर्यिका इन दोनों की नवधाभक्ति में कुछ विशेष अन्तर उन्हें इष्ट नहीं था ।

आचार्य कुन्दकुन्ददेव ने योगादिक आचरण को छोड़कर आर्यिकाओं का संम्पूर्ण समाचार मुनियों के समाचार सदृश ही कहा है । यथा-

एसो अज्जाणं पि य, समाचारो जहक्खिओ पुव्वं ।
सव्वम्हि अहोरत्ते, विभासिदव्वो जहा-जोग्गं ।।67।। मूला.

अर्थ : पूर्व में मुनियों के समाचार का जैसा वर्णन किया है, वैसा ही समाचार आर्यिकाओं का भी है । वृक्षमूल, आतापन योग एवं अभ्रावकाश योग को छोड़कर आर्यिकाओं की रात्रि दिन की यथायोग्य सर्व क्रियायें मुनिराजों की क्रियाओं के समान ही होती है ।।67।।

वीरनन्दी सिद्धान्त चक्रवर्तीने अपने आचारसार ग्रन्थ में भी मुनियों और आर्यिकाओं की समाचर्या समान ही कही है । यथा-

लज्जा-विनय-वैराग्य, सदाचारादि भूषिते ।
आर्याव्राति समाचारः, संयतेष्विव किन्त्विह ।।2/81।।

अर्थ : लज्जा, विनय, वैराग्य एवं सदाचारादि से विभूषित आर्यिकाओं के समूह में समाचार विधि संयतों (मुनिराजों) के समान ही है, किन्तु आतापन योगादि कुछ विधि आर्यिकाओं के नहीं है ।।81।।

सकलकीर्ति आचार्य ने अपने मूलाचार प्रदीप में भी यही कहा है । यथा-

अपमेव समाचारो, यथाख्यातस्तपस्विनाम् ।
तथैव संयतीनां च, यथायोग्यं विच्क्षणैः ।।42।।

जिस प्रकार मुनि-आर्यिका की समाचार विधि समान है, उसी प्रकार दीक्षा विधि भी समान है । दीक्षा प्रदान करते समय आचार्य परमेष्ठी मुनि व आर्यिका दोनों के लिये निम्नलिखित गाथा बोलकर ही व्रतारोपण करते हैं । यथा-

वदसमिदिंदिय रोधो, लोचावासय-मचेल-मण्हाणं ।
खिदिसयण-मदंतवणं, ठिदिभोयण-मेयभत्तं च ।।

अर्थ : पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पंचेन्द्रिय निरोध, षडावश्यक, लोच, नग्नत्व, अस्नान, अदन्तधावन, क्षितिशयन, खड़े खड़े भोजन और एक बार भोजन इन 28 मूलगुणों को "सम्यक्त्वपूर्वक, दृढ़व्रतं, सुव्रतं, समारूढ़ ते मे भवदु ।" इसको तीन बार बोलकर दीक्षार्थी को व्रत प्रदान करते हैं । इतना विशेष है कि आर्यिका दीक्षा देते समय आचार्य श्री यह समझा देते हैं कि नग्नत्व और खड़े होकर भोजन (मुनियों के) इन दो मूलगुणों के स्थान पर मात्र एक साड़ी से शरीर संवृत करना और बैठकर आहार लेना-यही मूलगुण जिनेन्द्रदेव ने आपके लिये कहे हैं ।

प्रश्न : जिनेन्द्र भगवान ने.... कहाँ कहा है ? इसका कोई प्रमाण है ?

उत्तर : आचार्य जयसेन देव कहते हैं कि-

टीका - तस्मात् कारणात् तत्प्रतिरुपं वस्त्रप्रावरण-सहित लिङ्ग चिन्हं तासां स्त्रीणां जिनवरैः सर्वज्ञैः निर्दिष्टं कथितम्..... ।।224-9।। प्रवचनसार

अर्थात् स्त्रियों को उसी भव से मोक्ष नहीं होता अतः सर्वज्ञ देव ने उन आर्यिकाओं का चिन्ह वस्त्र आच्छादन सहित कहा है.... ।

इस प्रकार दीक्षा-विधि और समाचार विधि के सदृश आचार्यों ने मुनि एवं आर्यिकाओं की प्रायश्चित-विधि भी समान ही कही है । यथा-

साधूनां यद्वदुद्दिष्ट-मेवमार्या-गणस्य च ।
दिनस्थान - त्रिकालीन, प्रायश्चितं समुच्यते ।।114।। प्रायश्चित चूलिका

अर्थ : शास्त्र में जैसा प्रायश्चित साधुओं को कहा गया है, वैसा ही आर्यिकाओं के लिये भी कहा गया है । विशेष इतना है कि दिन प्रतिमा, त्रिकालयोग (ग्रन्थान्तरों के अनुसार पर्याय छेद, मूलस्थान तथा परिहार) ये प्रायश्चित आर्यिकाओं को नहीं देने चाहिये ।।114।।

उपचार महाव्रती होने के कारण मोक्ष प्राप्ति रुप निर्जरा आर्यिकाओं के नहीं बनती है, किन्तु वे (सम्यक्त्वेन शुद्धाः) सम्यक्त्व से शुद्ध, (एकादशाङ्ग सूत्राध्ययनेनापि संयुक्ता) ग्यारह अंगों के ज्ञान से संयुक्त और (मासोपवास पक्षोपवासादि चरित्तं व चारित्रं) मास एवं पक्षादि के उपवास द्वारा घोर चारित्र का आचरण करने वाली होती है।

प्रश्न : आर्यिकाओं को ग्यारह अंगों का ज्ञान होता है ऐसा कहीं प्रमाण हैं ?

उत्तर : आर्ष ग्रन्थों नें आर्यिकाओं को ग्यारह अंगों का ज्ञान होने के कारण उपलब्ध है। यथा-

दुसंसार स्वभ्भावज्ञा, सपत्निभिः सितम्बरा ।
ब्राम्ही च सुन्दरी श्रित्वा प्रवव्राज सुलोचना ।।51।।
द्वादशाङ्गधरों जातः, क्षिप्रं मेघेश्वरो गणी ।
एकादशाङ्ग-भृज्जाता, साऽऽर्यिकाऽपि सुलोचना ।।52।। हरिवंश पु.

संसार के दुष्ट स्वभाव को जानने वाली सुलोचना ने अपनी सपत्नियों के साथ श्वेत वस्त्र धारण कर लिये और आर्यिका ब्राह्मी एवं सुन्दरी के पास दीक्षा ले ली। मेघेश्वर जयकुमार शीघ्र ही द्वादशाङ्ग के पाठी होकर भगवान आदिनाथ के गणधर बन गये तथा आर्यिका सुलोचना भी ग्यारह अंगों की धारक हो गई ।।51-52।।

इन सब उपर्युक्त प्रमाणों से सिद्ध हो जाता है कि अपनी पर्याय जन्य सर्वोत्कृष्ट सम्यग्दर्शन की विशुद्धि को, ग्यारह अंग रूप सम्यग्ज्ञान को और मासोपवासादि तप को धारण करने वाली होने से ही आचार्यों ने उनकी समाचर्या आदि मुनिराजों के सदृश कही है। अतः उनकी नवधाभक्ति भी उसी विधि से होना चाहिये।

प्रश्न : आपके संघ में आर्यिकाओं की एवं क्षुल्लकों की नवधाभक्ति किस विधि से होती है ?

उत्तर : परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य 108 शांतिसागरजी महाराज, चारित्र चूड़ामणी आचार्य 108 वीरसागरजी महाराज के दर्शन प्राप्त करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त नहीं हुआ। आपके प्रशिष्य एवं शिष्य, चारित्र शिरोमणी कर्मठ तपस्वी आचार्य 108 शिवसागरजी महाराज के संघ से अद्यावधि संघ में मुनिराजों एवं आर्यिकाओं की नवधाभक्ति इस प्रकार देखी है। यथा-

1. प्रदक्षिणा पूर्वक प्रतिग्रह 2. उच्चासन 3. पाद प्रक्षालन एवं पादोदक ग्रहण 4. अष्ट द्रव्य से पूजन 5. नमस्कार 6. मन शुद्धि 7. वचन शुद्धि 8. काय शुद्धि 9. आहार - जल शुद्ध है। आहार ग्रहण कीजिये।

इतना विशेष है यदि कोई श्रावक-श्राविका नवधाभक्ति करते समय पदोदक ग्रहण करना भूल जाये तो साधु-साध्वियाँ चौके से उठकर नहीं जाते।

प्रतिग्रह एवं नमस्कार करते समय मुनिराजों को नमोऽस्तु और आर्यिकाओं को वंदामि बोलते हैं।

क्षुल्लक-क्षुल्लिकाओं की नवधाभक्ति -

क्षुल्लक-क्षुल्लिका की नवधा भक्ति में प्रदक्षिणा नहीं देते। पैरों पर जल ऊपर से डाल दिया जाता है, पैर हाथ लगाकर नहीं धोते एवं पादोदक ग्रहण नहीं करे तथा उदक चंदन....... बोलकर मात्र अर्घ चढ़ाते हैं, पूजन नहीं करते।

विशेष : इस संघ में रेल, मोटर एवं प्लेन आदि सवारियों में बैठने वाले क्षुल्लक-क्षुल्लिका के साथ आहार नहीं करता और यदि बिना जाने साथ में आहार कर लिया तो प्रायश्चित लेना होता है।

चारित्र चक्रवर्ती तृतीय संस्करण - पृष्ठ 434 पर

परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य 108 श्री शान्तिसागर जी महाराज ने क्षुल्लक की चर्या और नवधाभक्ति के सम्बन्ध में कहा है कि ''क्षुल्लक पाँच घर से भोजन लाकर एक घर में बैठकर और वहाँ से जल माँग कर भोजन कर सकता है। क्षुल्लक की प्रदक्षिणा नहीं करना चाहिये, पाद प्रक्षालन आवश्यक नहीं है, गंधोदक नहीं लेना चाहिये और समुदाय रुप से अर्घ देना चाहिये। वह चार हाथ लम्बे दो वस्त्र रखे, दो लंगोट रखे। यदि माँगकर भोजन नहीं करता है तो दो रुमाल और बर्तन न रखें। बर्तन है तो रुमाल रखना चाहिये।''

नवधाभक्ति - नवधाभक्ति अभिमान-पोषण के हेतु नहीं है, वह धर्म रक्षण के लिये है, उससे जैनी की परीक्षा होती है। अन्य लोग धोखा नहीं दे सकते हैं।

द्वितीय बिन्दु : मासिक धर्म और आर्यिकायें

प्रायश्चित चूलिका में रजस्वला आर्यिकाओं के लिये लिखा है कि-

क्षान्त्सा पुष्पं प्रवश्यन्तया, ताद्देनात् स्याच्चतुर्दिनं ।
आचाम्लं नीरसाहारः, कर्त्तव्या चाथवा क्षमा ।।134।।

अर्थ : आर्यिका जब रजस्वला हो जाये तब उस दिन से लेकर चार दिन तक उपवास करे अथवा नीरस भोजन करे अथवा कांजिक भोजन करे ।।

तद तस्याः समुद्दिष्टा, मौनेनावश्यक क्रिया ।
व्रतारोपः प्रकर्तव्य, पश्चाच्च गुरु-सन्निधौ ।।135।।

अर्थ : रजस्वला के समय आर्यिका समता, स्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग इन छह आवश्यक क्रियाओं को मौन पूर्वक करे और शुद्ध हो जाने के पश्चात् गुरु के समीप जाकर व्रतग्रहण करे ।।

संघानुभूति प्रक्रिया :

इस विषय में संघ में जो देखा, सुना एवं अनुभव किया है, वह इस प्रकार है-

1. आर्त रौद्रध्यान का परित्याग, धर्मध्यान में लीन रहना ।
2. अपने शरीर की छाया देव, शास्त्र, गुरु एवं मंदिर आदि पर न पड़े इसका पूर्ण ध्यान रखना ।
3. तीन दिन तक किसी भी पुरुष वर्ग से संकेत आदि द्वारा बातचीत नहीं करना ।
4. तीन दिन तक अपने से ज्येष्ठ आर्यिकाओं के सामने नहीं निकलना ।
5. तीन दिन तक दरवाजे आदि की ओट में अथवा दूर बैठकर प्रतिक्रमण एवं स्वाध्याय आदि नहीं सुनना, अन्य दूसरा साहित्य भी नहीं पढ़ना ।
6. तीन दिन तक अन्य कोई दूसरी रजस्वला आर्यिका, ब्रह्मचारिणी अथवा अन्य कोई रजस्वला स्त्रियों के साथ नहीं रहना ।
7. तीन दिन दो रजस्वला आर्यिकायें एक ही स्थान पर, एक दूसरे को पीठ देकर या आमने-सामने या बराबरी से बैठकर आहार न करे ।
8. तीन दिन तक यथासंभव पुरुष वर्ग से आहार नहीं लेना ।

9. तीन दिन तक लघु आर्यिकाओं से प्रतिवंदामि नहीं करना ।
10. तीन दिन तक जिव्हा, ओष्ठ एवं अंगुलि आदि का सहारा लिये बिना ही षडावश्यक का पालन करना । शरीर अशुद्ध है अतः षडावश्यकों में शरीर का सहयोग अंश मात्र भी नहीं लेना । सर्व क्रियाएँ मन से ही करना ।
11. पिच्छिका साथ ही रखना किन्तु षडावश्यक करते समय पिच्छिका लेकर कृतिकर्म नहीं करना ।
12. तीन दिन संघ से समकक्ष विहार नहीं करना, संघ के विहार कर जाने के बाद अर्थात् संघ के पीछे-पीछे ही विहार करना चाहिये ।
13. शक्त्यानुसार उपवास या नीरस भोजन करना ।
14. पिच्छी कमण्डलु लेकर ही आहार को निकलना किन्तु प्रतिग्रह के समय प्रदक्षिणा नहीं लगवाना, पाद प्रक्षालन के समय थाली में पाद प्रक्षालन नहीं करना, उच्छिष्ट पतन के लिये जो बर्तन सामने रखा गया हो उसी पर पैर करके थोड़ासा जल डलवाना । पादोदक ग्रहण नहीं करना चाहिये और अष्ट द्रव्य मिलाकर अर्घ ही चढ़वाना चाहिये, पूजन नहीं करना चाहिये ।
15. आहार के बाद पिच्छि का अपने ही द्वारा ग्रहण कर लेना चाहिये और वह बर्तन भी अपने ही हाथ से साफ कर देना चाहिये ।
16. तीन दिन चौके में एवं रसोई घर के चंदोबा के नीचे आहार नहीं करना चाहिये ।
17. संघस्थ सर्व साधुओं के आहार चर्या में निकल जाने के कुछ समय बाद ही आहार चर्या को निकलना चाहिये ।
18. तीन दिन तक अन्य (बिना रजस्वला वाली) आर्यिका, ब्रह्मचारिणी एवं महिलाओं से अपना स्पर्श नहीं कराना चाहिये
19. किसी विशेष परिस्थिती में यदि आर्यिकाओं एवं ब्रह्मचारिणियों को रजस्वला आर्यिका का स्पर्श करना पड़े तो वे गुरु से प्रायश्चित ग्रहण करें ।
20. तीन दिन अखण्ड मौन रखना, चौथे दिन स्नान के बाद देव-शास्त्र या गुरु का (दूर से) दर्शन कर मौन खोलना, पश्चात् तीन दिन का प्रायश्चित लेना ।
21. चौथे दिन अन्य आर्यिकाओं को, ब्रह्मचारिणियों को एवं माला आदि का स्पर्श नहीं करना । अपना कमण्डलु भी किसी को स्पर्श नहीं करने देना, इसके पश्चात् भी जब तक पूर्ण रूपेण शारीरिक शुद्धि न हो, तब तक देव-शास्त्र-गुरु का स्पर्श नहीं करना चाहिये ।

श्रीमद् वीरनंदि सिद्धांत चक्रवर्ती ने अपने आचारसार ग्रन्थ के द्वितीयाधिकार में आर्यिकाओं के मासिक धर्म के विषय में कहा है कि-

ऋतौ स्नात्वा तु तुर्येहि, शुद्धयन्त्यरस-भुकत्यः ।
कृत्वा त्रिरात्रि-मेकान्तर वा सज्जप-संयुताः ।।90।।

अर्थ : मासिक धर्म के समय आर्यिकायें सज्जप युक्त तीन रात्रि व्यतीत करती हैं । नीरस आहार अथवा एकान्तर भोजन करती हैं पश्चात् चौथे दिन स्नान करके शुद्ध होती है ।

विशेष : रजस्वला आर्यिका एकान्त स्थान में अंतर्जल्प पूर्वक णमोकार मंत्र का जाप्य करते हुये तीन रात्रियाँ व्यतीत करती है । प्रतिदिन अथवा एकांतर से नीरस आहार ग्रहण करती हैं । चौथे दिन स्नान के बाद शुद्ध हो जाती है । "चौथे दिन स्नान कर शुद्ध हो जाती है" इसका अर्थ यही समझना चाहिये कि वे मौन आदि के बंधन से मुक्त हो जाती हैं । शास्त्र स्वाध्याय के योग्य शुद्धि तो अपने-अपने शरीर की यथायोग्य शुद्धि के ऊपर ही निर्भर रहेगी ।

प्रश्न - क्षुल्लिका रजस्वला अवस्था में पिच्छी रखती है या नहीं ?

उत्तर - इसका कोई स्पष्ट उल्लेख अभी तक मेरे देखने में नहीं आया । संघ में अवश्य देखा है कि क्षुल्लिका रजस्वला अवस्था में पिच्छि नहीं रखती है ।

प्रश्न - इसका क्या आधार हो सकता हैं ?

उत्तर - पं. आशाधर जी ने अपने सागार धर्मामृत के सातवें अध्याय में लिखा है कि "स्थानादिषु प्रतिलिखेद् मृदूपकरणेन सः ।।37।।"

अर्थात् वह क्षुल्लक प्राणियों को बाधा नहीं पहुँचाने वाले कोमल वस्त्रादिक उपकरण से स्थानादिक में शुद्धि करे... ।

इसी प्रकार लाटी संहिता के सातवें अधिकार में कहा है कि

वस्त्र-पिच्छ - कमण्डलुम् ।।63।।

अर्थात् वह क्षुल्लक वस्त्र की पिच्छिका और काष्ठ कमण्डलु रख सकता है ।

इन प्रमाणों से अनुमान होता है कि क्षुल्लक जब मृदु वस्त्र रख सकता है तब क्षुल्लिका भी वस्त्र रख सकती है । आज वस्त्र रखने की परम्परा दिखाई नहीं दे रही है,

किन्तु आगम विरुद्ध न होने से और क्षुल्लिका उत्कृष्ट श्राविका ही होने से तीन दिन वस्त्र रखने का विधान प्रचलित है।

तृतीय बिन्दु

प्रश्न : आर्यिकायें गुरु संघ में रह सकती है या नहीं ?

उत्तर : आर्यिकायें संघ में रह सकती है। यथा-

"मुन्यार्यिका - श्रावक - श्राविका - निवहः सङ्घः"

अर्थात् मुनि-आर्यिका, श्रावक एवं श्राविकाओं के समूह को संघ कहते हैं। संघ की यह परिभाषा गङ्गा के प्रवाह सदृश सदा से प्रवाहित होती हुई स्वयं सिद्ध कर रही है कि मुनिराजों के संघ में आर्यिकायें रह सकती हैं।

आचार्य कुन्दकुन्द (वट्टकेर) देव ने मूलाचार ग्रन्थ के समाचाराधिकार में और श्रीमद् वीरनन्दि सिद्धान्त चक्रवर्ती ने अपने आचारसार के द्वितीयाधिकार मे कहा है आर्यिकाओं का आचार्य कैसा होना चाहिये। यथा -

गंभीरो दुद्धरिसो मिदवादी अप्प-कोदुहल्लो य।
चिर-पव्वइढो गिहिदत्थो, अज्जाणं गणधरो होदि ।।184 मू. ।।

अर्थ : जो गम्भीर हैं, स्थिर चित्त हैं, मित बोलने वाले हैं, अधिक विस्मय नहीं करते हैं, चिर-दीक्षित हैं और तत्वों के ज्ञाता हैं ऐसे मुनि, आर्यिकाओं के आचार्य होते हैं।

संवृत्तोङ्गोऽति गम्भीरो, जिताखिल परीषहः ।
ज्ञान चारित्रवान सूरि रार्याणां मित-भाषणः ।।79।। आचारसार

अर्थ : इन्द्रिय विजयी, गम्भीर, परीषदंहजयी, मितभाषी, सम्यग्ज्ञानी और उत्कृष्ट चारित्र शील साधु ही आर्यिकाओं का आचार्य हो सकता है ।।79।।

इसी के बाद दोनों ग्रन्थों में अर्थात् गा. 185 और श्लोक 80 में लिखा है कि इन गुणों से रहित आचार्य यदि आर्यिकाओं का आचार्यत्व करता है तो वह जिनेन्द्र की आज्ञा का भंग, निन्दा और गच्छ विराधना आदि दोषों से युक्त होता है। इसी प्रसंग में यह भी लिखा है कि साधुजन आर्यिकाओं के स्थान पर जाकर प्रतिक्रमण, स्वाध्याय, भिक्षा, उपदेश एवं उठना, बैठना आदि न करें।

श्री इन्द्रनन्द्याचार्य प्रणीत नीतिसार समुच्चय में लिखा कि

मुनिराज आर्यिकाओं के साथ विहार न करें। यथा-

नार्यिकाभिस्समं मार्गे, गन्तव्यं यति सत्तमैः ।
तत्सङ्गमात् पुराऽभूवन्, यतयो दुःख भाजनम् ।।27।।

अर्थ : महामुनियों को आर्यिकाओं के साथ विहार नहीं करना चाहिये क्योंकि प्राचीनकाल में उन आर्यिकाओं के सहवास से मुनिजन अनेक दुखों के भाजन हुये हैं।

निष्कर्ष : आचार्यों के उपर्युक्त कथन सूर्य-प्रकाशवत् प्रमाणित कर रहे हैं कि आर्यिकायें संघ में रहती आई हैं क्योंकिं संघ में रहे बिना कोई उनका आचार्य कैसे बनेगा, स्वाध्याय एवं प्रतिक्रमण आदि करने का तथा साथ-साथ विहार करने का निषेध आदि भी कैसे बन सकेगा ?

संदर्भ ग्रंथ सूचि

अमित गति श्रावकाचार
आदि पुराण
आचारसार
इन्द्र नन्दि नीतिसार
उत्तर पुराण पर्व
कल्याणालोयणा
कातिकियानुप्रेक्षा
क्रियासार - आचार्य भद्रबाहु
गोम्मटसार जीवकाण्ड
गोम्मटसार जीवप्रबोधनी टीका
चंद्रप्रभ चरित
चारित्र सार
चारित्र पाहुड
चारित्रसार चारित्र धर्मप्रकाश
छहढाला
तत्त्वसार
तत्त्वार्थ राजवार्तिक
तिल्लोय पण्णत्ति
दर्शन पाहुड
दर्शन सार
दानशासन ग्रंथ
धवला जी
धर्म संग्रह श्रावकाचार
नियमसार तात्पर्य वृत्ति
परमात्म प्रकाश
पद्म पुराण
पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय
पुराणसार संग्रह
पुण्यास्त्रव कथाकोष
पंच संग्रह प्राकृत
पंचाध्यायी
प्रद्युम्न चरित्र
प्रवचन सार
प्रवचन सार/तात्पर्य वृत्ति
प्रतिष्ठा तिलक
प्रायश्चित्त चूलिका
प्रायश्चित्त संग्रह (छेद पिण्डम्)
प्रायश्चित्त सूत्र
बोध पाहुड
भगवती आराधना
भाव पाहुड
महापुराण पर्व
मंत्र लक्षण शास्त्र
मूलाचार प्रदीप
मूलाराधना
मूलाचार/आचारवृत्ति
मूलाचार
मोक्ष पाहुड
यति प्रतिक्रमण
यशोधर चरित्र

यशस्तिलक चम्पू

रयणसार

रत्नकरण्ड श्रावकाचार

रत्नकरण्ड श्रावकाचार वचनिका पं

वरांगचरित्र

वसुनन्दि श्रावकाचार

हरिवंश पुराण

शांतिनाथ पुराण

शील पाहुड

समयसार

समयसार तात्पर्य वृत्ति

सम्यक् चारित्र चिन्तामणी

समाधि भक्ति

सर्वार्थ सिद्धि ग्रंथ

सागार धर्मामृत

सुधर्म श्रावकाचार

सुदर्शन चरित्र

सूत्र पाहुड

सूत्र पाहुड टीका

श्रमण संघ संहिता

श्रावक धर्म प्रदीप

❋ ❋ ❋

उपसर्ग विजेता, परम पूज्य गणाचार्य श्री 108 विराग सागरजी महाराज द्वारा लिखित, सम्पादित एवं संकलित तथा श्री सम्यग्ज्ञान दिगम्बर जैन विराग विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित प्रवचन सत् साहित्य

सं.	नाम	मूल्य
	(संस्कृत टीकायें)	
1.	संस्कृत सर्वोदया टीका (वारसाणुवेक्खा) भाग 1-2	150
2.	संस्कृत रत्नत्रयवर्धिनी टीका (रयणसार) भाग 1-2	185
3.	संस्कृत श्रमणप्रबोधिनी टीका (लिंग पाहुड)	
4.	संस्कृत श्रमणसम्बोधिनी टीका (शीलपाहुड)	
5.	संस्कृत चूर्णिसूत्र (शास्त्रसार समुच्चय)	
	(शोध पूर्ण साहित्य)	
6.	शुद्धोपयोग	80
7.	सम्यग्दर्शन	80
8.	आगम चक्खु साहू	60
9.	सल्लेखना से समाधि	100
10.	संत साधना के प्रेरक प्रसंग	40
11.	परम दिगम्बर जैन मुनि (हिन्दी, मराठी, कन्नड़, तमिल, अंग्रेजी)	45
12.	सर्वोदयी दिगम्बर जैन धर्म	50
13.	तीर्थंकर दिव्य दर्शन	50
14.	तीर्थंकर दर्शन	
15.	व्यसन विचार	40
16.	फूल नहीं, हैं काँटे	
17.	वर्षायोग	20
18.	जिनेन्द्र दर्शन, जिनेन्द्र पूजन	30
19.	आध्यात्मिक शंका-समाधान	40
20.	आध्यात्मिक तत्त्व-चर्चा	50
21.	अठारह लिपियाँ	60

(चिंतन साहित्य)

22. चैतन्य चिन्तन भाग-1
23. चैतन्य चिन्तन भाग-2 25
24. चैतन्य चिन्तन भाग-3 25

25

(बालोपयोगी साहित्य)

25. बाल विज्ञान भाग-1 (हिन्दी, इंग्लिश, मराठी, कन्नड
26. बाल विज्ञान भाग-2 (हिन्दी, इंग्लिश) 25
27. बाल विज्ञान भाग-3 25
28. बाल विज्ञान भाग-4 25
29. कर्म विज्ञान भाग-1 (हिन्दी, इंग्लिश) 25
30. कर्म विज्ञान भाग-2 25
31. कर्म विज्ञान भाग-3 25
32. संस्कार सुरभि (हिन्दी, गुजराती, मराठी) 25
33. खेलना है तो खेलो 25

(कथा साहित्य)

34. नैतिक कथा मंजूषा भाग-1 40
35. नैतिक कथा मंजूषा भाग-2 40

(अनुवाद साहित्य)

36. वारसाणुवेक्खा
37. परमरत्नार्चना संग्रह 20
38. सामायिक पाठ (हिन्दी, गुजराती) 40

(पद्य साहित्य)

39. जल बिन्दु महाकाव्य
40. भावों के विशुद्ध क्षण 15
41. मुक्ताञ्जलि भाग-1 15
42. मुक्ताञ्जलि भाग-2 15
43. नव देवता निर्वाण क्षेत्र पूजा
44. स्तुति भावना
45. पाइय भत्ति संगहो 100

46. स्तोत्र भारती 40
47. छहढाला 40
48. तत्वार्थ सूत्र 40
49. द्रव्य संग्रह 40
50. इष्टोपदेश 40

(संकलित/सम्पादित साहित्य)

51. साधना से समाधि 20
52. विमल नित्य पाठावलि 130
53. आराधना 35
54. सुभाषित संग्रह 60
55. आप्त अर्चना
56. मानतुंग की अमर भक्ति (सचित्र भक्तामर) 100
57. साधना 10
58. अनुप्रेक्षा 10
59. जिनागम दीप 350
60. सम्मेद शिखर विधान
61. चारित्र शुद्धि व्रत 25
62. करुणामूर्ति संत 100
63. तपस्वी सम्राट 10
64. यज्ञोपवीत विधि
65. साधना के सोपान
66. पद्म पुराण प्रश्नोत्तरी

(एकांकी/नाटक साहित्य)

67. सत्यमित्र-सत्यदृष्टि
68. प्रद्युम्न हरण

(पूज्य आचार्य श्री पर आधारित साहित्य)

69. विरागाभिवंदन अभिनन्दन
70. निस्पृही संत भाग-1 60
71. निस्पृही संत भाग-2 70
72. विराग सेतु (महाकाव्य) (हिन्दी, गुजराती, प्राकृत) भाग-1 100

73. विराग सेतु (महाकाव्य) भाग-2
74. संत काव्य की परम्परा में आचार्य विरागसागर
75. कमल से महाकमल 65
76. घटनायें ये जीवन की
77. दिगम्बरत्व के चितेरे 80
78. विराग सिंधु की उर्मियाँ 150
79. विराग वाटिका 15
80. भक्ति की झंकार भाग-1,2,3 41
81. विराग काव्यांजलि 25
82. आचार्य श्री विरागसागर साहित्य दर्शन
83. विरागादर्श
84. आत्मानुशासक
85. विभूति भक्ति
86. जिनके आशीर्वाद से
87. गणाचार्य श्री विरागसागर मंडल विधान
88. गणाचार्य श्री विरागसागर विधान
89. विराग थुदि

(स्मारिका)

90. विरागानुभूति (लोहारिया, चातुर्मास 2010)
91. विराग प्रभावना (अजमेर चातुर्मास 2011)
92. स्वर्णिम विरागाञ्जलि (युगप्रतिक्रमण - यतिसम्मेलन एवं जयपुर चातुर्मास 2012)
93. विरागोत्सव (इंदौर चातुर्मास 2013)
94. विशाल अहिंसा पदयात्रा
95. युग प्रतिक्रमण - यति सम्मेलन करगुवाँजी झाँसी
96. श्री सम्मेदशिखरजी ऐतिहासिक वर्षायोग 2018
97. श्री विरागोदय तीर्थ महामहोत्सव 2023
98. लिंग पाहुड - शील पाहुड द्रव्य व शास्त्रसार समुच्चय चूर्णिसूत्र अनुशीलन

(प्रवचन साहित्य)

99. धर्म पीयूष 30
100. ऐसे चलो मिलेगी राह 40

101.	दूर नहीं है मंजिल	30
102.	उड़ रे पंछी	10
103.	तीर्थंकर वर्धमान	30
104.	पहले देव-पूजा फिर काम दूजा	30
105.	तीर्थंकर ऐसे बनो	100
106.	तट की ओर	10
107.	सिर्फ दो प्रवचन	10
108.	इष्टोपदेश (प्रवचन)	
109.	मानतुंग की अमरभक्ति	150
110.	कल्याणक महोत्सव	20
111.	दान तीर्थ	20
112.	धर्म के दश सोपान	20
113.	जीवों पर दया करो, शुद्ध शाकाहार करो	20
114.	बुराईयाँ ही जेल, अच्छाईयाँ ही मुक्ति	10
115.	प्रवचन वर्षा	25
116.	कर्तव्यमेव कर्तव्यं	25
117.	श्रद्धाप्रसून	25
118.	मोक्ष की राह	35
119.	विरागामृत-1	50
120.	विरागामृत-2	100
121.	समाधि तंत्र (प्रवचन)	100
122.	समयोचित शिक्षायें भाग-1	30
123.	समयोचित शिक्षायें भाग-2	30
124.	समयोचित शिक्षायें भाग-3	30
125.	विराग मंथन (हिन्दी, अंग्रेजी)	5
126.	रजत पुष्प	60
127.	कहानी सबसे सुहानी	50
128.	अक्षय निधि (हिन्दी, अंग्रेजी)	20
129.	संस्कार की लहरें	30
130.	चलो चलें प्रभु दर्शन को	40
131.	आध्यात्मिक धर्म प्रवचन	40

132.	घर-घर की कहानी	40
133.	वारसाणुवेक्खा प्रवचन	140
134.	पर्यूषण निधि	15
135.	पद्मनंदि पंचविंशतिः अधिकारः 1. धर्मोपदेशामृतम्	300
136.	पद्मनंदि पंचविंशतिः अधिकारः 2. दानोपदेशम्	60
137.	पद्मनंदि पंचविंशतिः अधिकार 3. अनित्य पंचाशतम्	70
138.	पद्मनंदि पंचविंशतिः अधिकार 4-5। एकत्व सप्तति तथा यतिभावनाष्टकम्	100
139.	पद्मनंदि पंचविंशतिः अधिकार 6. उपासक संस्कार	100
140.	पद्मनन्दि पंचविशतिः अधिकार 7. देशव्रतोद्योतनम्	100
141.	पद्मनंदी पंचविंशति अधिकार 8-9 सिद्धस्तुति एवं आलोचना	85
142.	आचार्य विराग सागर साहित्य दर्शन	10
143.	मेरी भावना प्रवचन	70
144.	फॉर यूथ प्रोब्रेस 1-2	30
145.	रत्नकरण्डक श्रावकाचार प्रवचन भाग-1	125
146.	सामायिक पाठ प्रवचन	100
147.	विराग संध्या	20
148.	विराग अर्चना	40
149.	स्वर्ण पुष्प	40
150.	षट्लेश्या प्रवचन अपनी-अपनी आभायें	60
151.	ऐसे बनायें घर को स्वर्ग	40
152.	क्यूँ इतना अभिमान है.	40
153.	सिद्धों का खजाना	40
154.	अपने नैतिक कर्तव्य	40
155.	श्रुतज्ञानवर्धक विधान	40
156.	अंग-अंग से झरता बोध	40

-: साहित्य प्राप्ति स्थान :-

1. श्री सम्यग्ज्ञान दिग. जैन विराग विद्यापीठ

कीर्ति स्तंभ, भिण्ड (म.प्र.)

सं.सू. - संजीव जैन शिक्षक - मो. 9826287046

2. श्री विरागोदय तीर्थ क्षेत्र

पथरिया, जिला - दमोह (म.प्र.)

सं.सू. - कपिल ज़ैन- मो. 9893753223

पुण्यार्जक

श्रीमती मालती जैन
श्री नेमिचंद जी जैन, सागर
(म.प्र.)

स्व. श्रीमान राजीव जैन पवैया,
धर्म पत्नी श्रीमती संगीता जैन पवैया
पुत्र - ईंजी, सिद्धार्थ जैन,
पुत्रवधु - नेहा जैन, पौत्र - मिवान जैन
दामाद - शशांक, पुत्री - श्रद्धा जैन
भिंड (म.प्र.)

श्री अशोककुमार - श्रीमती आशा जैन - आकांशा जैन, इन्दौर (म.प्र.)

श्री अरविन्दकुमार - श्रीमती पुष्पा जैन - अनिल, सुमन, सुनीता, भारती - जि. विदिशा, (म.प्र.)

- आर्यिकाओं को अशुद्धि के समय में पिच्छी नहीं छोडना चाहिए, अन्यथा वो आर्यिका नहीं रहेगी ।
  - पूज्य गणिनी आर्यिका विशुद्धमतिजी माताजी (एटा)
- आपने जो भी लिखा वह केवल रूढि परम्परा या तर्क से नहीं, किन्तु आगम आधार से लिखा है आगम तो आगम होता है जो सर्वमान्य होता है ।
  - पूज्य गणिनी आर्यिका स्याद्वादमति माताजी
- कोई माने या न माने पर आगम तो आगम ही रहेगा । आर्यिका नवधा भक्ति, पात्र भक्ति, यज्ञोपवीत हमारी आचार्य परम्परा आगम सम्मत हैं ।
  - पूज्य गणिनी आर्यिका सुव्रतामति माताजी
- यह पुस्तिका भले ही छोटी-सी है पर प्राचीनाचार्यो की वाणी का संकलन अद्भुत है । हर पहलू से हर विषय पर सारभूत तत्वों का उल्लेख देकर आचार्य श्री ने गागर में सागर भर दिया है ।
- आचार्य श्री का ज्ञान बहुत गहरा है। आपकी लेखनी से निःसृत सारे ग्रंथ आगम के परिप्रेक्ष्य में ही निबद्ध है। पूर्वापर विरोध रहित, प्रमाण और नयों की विवक्षापूर्वक है। हर विषय का प्रतिपादन आपके ग्रंथ में मिलता है।
  - पूज्य गणिनी आर्यिका १०१ विमलप्रभा माताजी
- पुस्तक पढकर के ऐसा लगा मानो आचार्य श्री विरागसागरजी ने संभ्रान्त लोगो के नेत्र ही खोल दिये हैं ।
  - पूज्य गणिनी आर्यिका ज्ञानमति माताजी
  (आचार्यश्री सुमतिसागरजी महामुनिराज की शिष्या)

पुराने पत्रों एवं चर्चाओं से साभार

संग्रहीत अभिमत

- आचार्य विरागसागरजी द्वारा लिखी गई आगम चक्खू साहू, आगम चक्खू ही है ।

  - परम पूज्य आचार्य विमलसागरजी

- आगम चक्खू साहू पुस्तक मे आर्यिका चर्या तथा पात्र भक्ति और यज्ञोपवीत आलेख आगम प्रमाणों से ओत-प्रोत है ।

  - परम पूज्य तपस्वी सम्राट आचार्य सन्मतिसागरजी

- चाहे मुनि हो या श्रावक सभी के लिए आगम तीजा नेत्र है आचार्य विरागसागरजी ने तो बडी मेहनत से पुस्तक लिखी है जो बहुत अच्छी है ।

  - परम पूज्य आचार्य सुमतिसागरजी

- आगम प्रमाणों को देखकर भी जो उसे न माने तो वह सम्यग्दृष्टि नहीं हो सकता ।

  - परम पूज्य गणधराचार्य कुंथुसागरजी

- आपने जो परिश्रम कर आर्यिका चर्या व पात्र भक्ति पुस्तक लेख, अज्ञान अंधकार में प्रकाश देगी ।

  - परम पूज्य आचार्य संभवसागरजी

- सभी संघ हैं, सभी की अपनी-अपनी परम्परायें, पद्धतियाँ है, उनमें विवाद, विसम्वाद नहीं करना चाहिए, सभी श्रावकों को अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिए ।

  - परम पूज्य आचार्य विद्यासागरजी

- आपने जो आगम चक्खू साहू पुस्तक में जो लेख लिखें हैं वे केवल प्रेरणादायी नहीं, किन्तु प्रामाणिक भी हैं और ऐसे लेखों की आज की आवश्यक मांग है ।

  - परम पूज्य आचार्य भरतसागरजी

- परम्पराएँ बदलती रहती है पर आगम नहीं बदलता, आगम को बदलने का अनुचित प्रयास की अपेक्षा, आगमिक चर्या को अपनाना ही श्रेष्ठ है ।

  - परम पूज्य आचार्य बाहुबलीसागरजी

- गणाचार्य विरागसागरजी ने गहन अध्ययन कर यह सिद्ध करके दिखा दिया कि हमारी प्राचीन परम्परा कपोल-कल्पित नहीं है किन्तु आगम सम्मत है ।

  - परम पूज्य आचार्य देवनंदीजी

- चाहे आचार्य आदिसागर जी अंकलीकर की परम्परा हो, चाहे आचार्य शान्तिसागर जी दक्षिण की परम्परा हो, चाहे आचार्य शान्तिसागर जी छाणी की परम्परा; आर्यिकाओं की नवधा भक्ति सभी में होती आई है ।

  - पूज्य गणिनी आर्यिका विजयमती माताजी

- मैं जानती हुं, आचार्य विरागसागरजी तो आगम के अथाह सागर से अमूल्य रत्न निकलते है, आर्यिका चर्या पुस्तक आगम सम्मत है।

  - पूज्य गणिनी आर्यिका ज्ञानमती माताजी

- आगम देखकर भी कोई आगम न माने, तर्क करें तब तो निश्चित ही उसका सम्यक्तव संदेहास्पद है ।

  - पूज्य गणिनी आर्यिका सुपार्श्वमति माताजी